• श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते •

※ श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ※

औदुम्बर-संहिता

प्रणेता :

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पाद पद्माश्रित

ऋषिवर श्रीऔदुम्बराचार्यः

* श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते *

※ श्रीनिम्बार्कमहामुनीद्राय नमः ※

औदुम्बर-संहिता

प्रणेता :

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पाद पद्माश्रित

ऋषिवर श्रीऔदुम्बराचार्यः

श्रीऔदुम्बरसंहिता की विषय सूची

क्र० सं० पृ० सं०

औदुम्बरसंहितायां प्रमाणोद्धृत ग्रन्थाः—

स्कन्दपुराण	बिष्णुधर्मोत्तर	पद्मपुराण
नारदीयपुराण	सौरधर्मोत्तर	मार्कण्डेयपुराण
ब्रह्मवैवर्त	स्मृति	विष्णुरहस्य
गरुडपुराण	तन्त्र	ब्रह्मपुराण
बाराहपुराण	सौरधर्म	वैष्णवतन्त्र
तत्वसार	अग्निपुराण	वायुपुराण
विष्णुपुराण	विष्णुस्मृति	महाभारत
सात्वततन्त्र	मत्स्यपुराण	कलिकापुराण

श्री विमल-कुण्ड, कामवन के भगवद्भागवत
सेवा परायण वर्तमान महन्त—
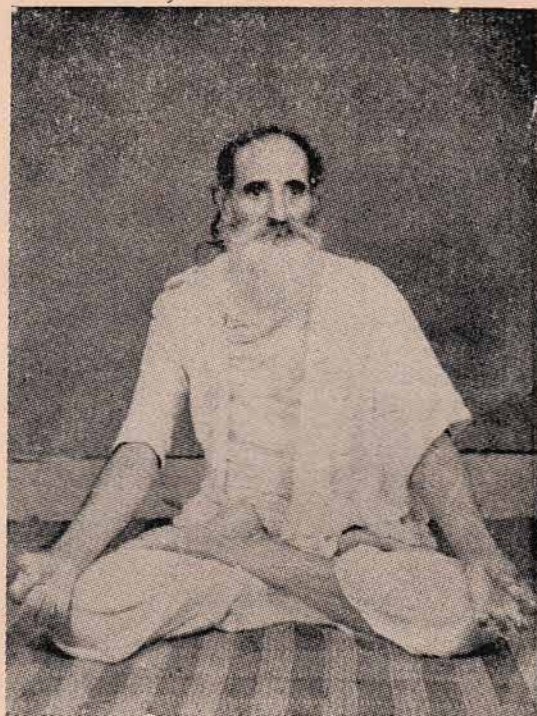
म० पंडित श्रीरामकृष्णदासजी
प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशक :

आगम	प्रह्लादसंहिता	अगस्त्यसंहिता
नृसिंहपुराण	शारदापुराण	त्रैलोक्यसम्मोहन तन्त्र
भागवत	प्रह्लाद पंचरात्र	विष्णु
वहवृच परिशिष्ट	वामनपुराण	काशीखण्ड
ब्रह्मसंहिता	श्रुति	नारदपंचरात्र

बृहद्गोतमीय तन्त्र ऋषियों के नाम—नारद, व्यास, हयग्रीव, कुमार, भृगु, गोभिल, प्राचीमाधव, कात्यायन, हारीत, वृद्ध-वशिष्ठ, वृहस्पति, याज्ञवल्क्य, वौद्धायन, सांख्यायन, पितामह ।

प्रकाशक का आत्म परिचय

महानुभावो !

यद्यपि विरक्त साधुओं को अपना परिचय नहीं देना चाहिये क्योंकि धर्मशास्त्रका आदेश है–विरक्त यति (साधु) अपने नाम आदि को प्रख्यात न करे :—

नाम गोत्रं च चरणं देशं वासं श्रुतं कुलम् ।
वयो विद्याश्च वृत्तिं च ख्यापयेन्नैव सद्यतिः ।

अर्थात् श्रेष्ठ यति अपना नाम गोत्र जाति देश आवास अध्ययन किया हुआ और कुल अवस्था विद्या और वृत्ति आजीविका इन सबको विख्यात न होने दे, तथापि कई एक सज्जनों के अनुरोध से अपना परिचय देना आवश्यक हो गया ।

जिला धौलपुर तहसील वाडी (राजस्थान) के सहेडी ग्राम में पाराशर गोत्रीय पं० श्रीकालूरामजी शर्मा सनाढ्य की धर्मपत्नी श्रीललितादेवीजी की कुक्षि से विक्रम सम्वत् १९६० के लगभग इस शरीर का जन्म हुआ। बचपन में ही माता और पिता दोनों का परमधाम वास हो गया। बड़े भ्राता का संरक्षण मिला जो अभी भी विद्यमान है। इस शरीर की लगभग बीस वर्ष की अवस्था थी, तभी घरसे चल पड़ा। पण्ढरपुर से महात्मा श्रीकेशवदासजी महाराज भ्रमण करते हुए भूपाल जिले के सांचेत ग्राम में आ गये थे, यह शरीर भी वहां जा पहुँचा, श्रीकेशवदासजी महाराज से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। फिर तीर्थाटन को चल दिया, जटा बढ़ गई, ३०-३५ वर्ष की अवस्था में विभूति धारण करने लगा। भ्रमण करता हुआ अवध (श्री-

अयोध्याजी) पहुँचा। जानकी घाट पर श्रीवल्लभाशरणजी महाराज के स्थान में रसोई की सेवा करने लगा। जानकी निवास और कुछ दिन बड़ी जगह में भी रहा, वहां सारस्वत चन्द्रिका, व्याकरण का अध्ययन आरम्भ किया। अयोध्या से चलकर श्रीवृन्दावनधाम पहुँचा यहाँ भारत के प्रसिद्ध नैय्यायिक पं० श्रीअमोलकरामजी से भागवत का अध्ययन किया, टटिया संस्थान में रहकर भजन साधन करता था, फिर श्रीकाठिया बाबा के स्थान में रसोई की सेवाबन्दगी और पठन-पाठन भी करता था।

विक्रम सम्वत् २००० में ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को अखिल भारतीय जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ पर वर्तमान निम्बार्काचार्य श्री श्रीजो महाराज का पट्टाभिषेक हुआ। उस समय आपकी केवल चौदह वर्ष की ही आयु थी, व्र० वि० चतुस्सम्प्रदायी श्रीमहन्त धनञ्जयदासजी महाराज काठिया बाबा के निरीक्षण में आपका वृन्दावन में पादार्पण हुआ, एकान्त दावानलकुण्ड पर निवास और अध्ययन की व्यवस्था की गई। श्रीकाठियाजी ने इस शरीर को आचार्य श्री की सेवा में नियुक्त कर दिया। दो-तीन वर्ष तक आचार्य श्री की सेवा में रहा। कामवन, विमलकुण्ड का गोपाल मन्दिर श्रीपरशुराम द्वारा के विद्वद्वर पंडित श्रीरघुवरदासजी महाराज द्वारा संस्थापित किया हुआ प्राचीन और सुप्रतिष्ठित माना जाता है। ठाकुर श्रीराधागोपालजी महाराजकी प्रतिमा पहले मौजा राम वास तहसील छोटा गोविन्दगढ़ में विराजमान थी। अलवर दरबार को आपने स्वप्न में आदेश दिया हमें कामवन में पहुँचाओ, तदनुसार अलवर नरेश ने मंदिर बनवाकर श्रीगोपालजीको यहां पधराया। अड़तीस बीघा जमीन भोगराग सेवा के लिये लगाई। उस समय जो सन्त सेवा करते थे उनका जब परमधाम वास हो गया तब दूसरे महात्मा उत्तरा-

धिकारी बने। उनके समय में विमलकुण्ड में जल इतना बढ़ा कि श्रीगोपाल मन्दिर भी जल में आकर ढह गया श्रीगोपालजी भी जल में निमग्न हो गये। श्रीगोपालजी ने भरतपुर नरेश को स्वप्न में आदेश दिया तब उन्होंने तलासी करवाई। श्रीठाकुर राधा-गोपालजी महाराज उन्हें मिल गये। भरतपुर नरेश ने उसी क्षण दूसरा मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीगोपालजी को पधराया और तीस बीघा जमीन भोगराग के लिये भेंट की ।

वि० सं० २००३ तक इस स्थान पर कई पीढ़ियां पूर्ण हो चुकी थीं उस समय यहां श्रीजगन्नाथदासजी महाराज महान्त विराजमान थे, वे बहुत वृद्ध थे अस्वस्थ विशेष हो गये, तब यहां के मुख्य सेवक खंडेलवाल गोविन्दराम बजाज ने नृसिंह मन्दिर के महन्त राधिकादासजी को वृन्दावन भेजा, उन्होंने श्री श्रीजी महाराज और काठिया बाबाजी से मेरे लिये अनुरोध किया, तब उनकी विशेष आज्ञा होने पर वैशाख शुक्ला ३ वि० सं० २००३ को यह शरीर यहां आया, महान्त श्रीजगन्नाथदासजी ने मेरे नाम इच्छा पत्र (वसीयत नामा) लिख दिया, तदनुसार मैं सेवा कार्य करने लगा, कुछ दिनों बाद श्रीजगन्नाथदासजी का परमधाम वास हो गया, उनके अन्त्येष्टी कार्यक्रमों के पश्चात् दाखिल खारिज के लिये केश चला, राधारमण मन्दिर के पुजारी लाड़िलीजी ने बहुत बाधा डाली, बरसाने वाले गो० राधावल्लभ-जी ने उन्हें विशेष योग दिया, किन्तु श्रीगोपाल प्रभु की कृपा से वि० सं० २००५ में सरकार से भी इस शरीर को सर्वाधिकार प्राप्त हो गया। इन तीन वर्षों में स्थानीय सेवक भक्तों की सहा-यता से ही भगवान् की पूजा सेवा भोगराग आदि का कार्य सम्पन्न होता रहा।

उसी वर्ष जमीनों की ऐन्यूटी के केवल १००) रु० बन्ध

गये। और अठारह बीघे जमीन खुदकास्त की रह गई। श्री-गोपालजी की दुकानों के सम्बन्ध में, डीग, भरतपुर आदि की अदालतों के अतिरिक्त जोधपुर तक जाना पड़ा, खर्चा चलना कठिन हो गया, कथावार्ता द्वारा जो कुछ अर्जन होता उसी से भगवत् सेवा और स्थान का जीर्णोद्धार कराया गया। इन्द्रोली, कनवाड़ा, वूड़मुरी और कामवन के दीक्षित भक्तों का योगदान सराहनीय रहा। भाद्रपद शुक्ला २ को काठिया बाबा की व्रज-यात्रा में समागत सन्तों को एक दिन के लिये रसोई दी जाती है। जन्माष्टमी, जलझूलनी (भा० शु० ११), आमल की एकादशी और होरी (फाल्गुन शु० ५) को यहां विशेष उत्सव होते हैं।

मन्दिरों की जीर्ण-शीर्ण अवस्था हो गई थी, जितना जैसा बना जीर्णोद्धार करवाया गया, अब भी कुछ जीर्णोद्धार की आवश्यकता है ही, समय-समय पर अन्याऽन्य खर्च भी स्थानों पर आये और आते भी रहते हैं, उन सबको भी श्रीगोपालजी ने ही पूर्ण किया। वि० सं० २००६ में अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज का कामवन में पादार्पण हुआ, स्थान श्रीगोपाल मन्दिर में ही विराजना हुआ, बड़े समा-रोह से नगर भ्रमण (सवारी जुलूस) हुआ, श्रीनृसिंह मन्दिर और नागरिकों की ओर से भी बड़ा स्वागत समारोह हुआ। महाराज श्री को स्थान की सुचारु रूप से व्यवस्था देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर २१ वर्ष के पश्चात् वि० सं० २०२७ में व्रज चौरासी कोश की यात्रा करते हुए अनेक महन्त सन्त और विशाल जनसमूह के साथ कामवन में ३ दिन का मुकाम हुआ तब भी श्रीगोपाल मन्दिर में आचार्य श्री की पधरावनी (चरण पूजा) हुई।

अब हमारी सत्तर वर्ष की (वृद्ध) अवस्था है, भावी

व्यवस्था के लिये मैं कई दिनों से प्रयत्नशील हूँ, किन्तु अभी तक कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं मिल रहा है, अतः आचार्यचरण और सम्प्रदाय के कर्णधारों से मेरा यही अनुरोध है कि इधर सभी का ध्यान रहे ।

मैं इस स्थान के प्रबन्ध में लगा रहने के कारण अपने गुरु स्थान भी दर्शनार्थ नहीं जा सकता, पण्ढरपुर का स्थान इस समय श्री श्रीजी महाराज के संरक्षण में है, वहां की परम्परा इस प्रकार है—श्रीस्वभूराम देवाचार्यजी महाराज की परम्परा में बाबा श्रीभजनदासजी महाराज एक वीत राग त्यागी महात्मा थे, उनके शिष्य श्रीहीरादासजी, फिर क्रमशः श्रीगणेशदासजी, श्रीत्रिवेणीदासजी, श्रीदेवीदासजी, और छठी पीढ़ी में श्रीप्रयाग-दासजी हुए उनके (श्रीप्रयागदासजी) एक शिष्य श्रीभरतदासजी पण्ढरपुर स्थान श्रीभजनदास मठ पर रहे और दूसरे श्रीकेशव-दासजी महाराज भ्रमण में रहे, वे बड़े सिद्ध तपस्वी थे, उनसे दास (इस प्रकाशक) को दीक्षा प्राप्त हुई और भरतदासजी के शिष्य श्रीरामानुजदासजी को पण्ढरपुर स्थान श्रीभजनदास मठ की महन्ताई प्राप्त हुई। उनका ८०-८५ वर्ष की अवस्था में इसी वर्ष परमधाम वास हो चुका है।

इस प्रकार इस शरीर का यह संक्षिप्त परिचय है।

सभी सन्तों का चरण सेवक
महन्त रामकृष्णदास

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराजानां चरणाश्रित—कामवनीय पं० कन्हैयालाल शर्मणा समुद्धृतम् ।

कामवन-वैभवम्

यस्मिन् व्रजे समवतीर्य व्रजेन्द्र चन्द्र,
श्रीनन्दनन्दन विलास परा च राधा ।
काम्यग्वने सुवितते यमुनोपकूले,
रासे समुद्धतशरं स्ववशे चकार ॥

श्रीराधिका विलसिता व्रजखंडचन्द्रे,
कृष्णाभिधे विहितरासमधिष्ठितञ्च ।
कन्दर्प कोटिशर मूर्च्छित मात्मलीनम्,
गोपीशमात्मशरणं समजीवयत्सा ॥

काम्यग्वने कृष्णपदाङ्कितं गिरिम्,
वेणुं क्वणन् विष्णुरलञ्चकार ।
पादायितं पीठ दलेन संयुतम्,
दृष्ट्वा न को मानव एति विस्मृतिम् ॥

दुर्गं दुर्गममिन्दिरादरमयं, तुंगं विशालोदरम् ।
भूगर्भस्थमनेकभव्यभवनं, आलोक्यते दर्शकैः ॥
स्थूलस्तम्भमनेकचित्ररचितं, कामालयं पावनं ।
यस्यांके शिशुवत्सुखेन वसतिः, काम्यक्वनं शोभनम् ।

भक्तैर्यस्य हरीतिमा नवछटा, आलोक्यते पावनी ।
मत्ता वानर वानरा परिक्रमन्त्यत्यन्त मोदम्भराः ॥
देवस्थान सुरम्य रम्य विमलं नीरं सरः शीतलम् ।
यत्रास्ते प्रियतीर्थराजममलं, काम्यक् वनं शोभनम् ॥

राजानौ सुखदौ सुचन्द्र मदनौ, दिव्यौ सुधा सागरौ।
भक्तानां वरदौ सुरेश्वर वरौ, त्रैलोक्य शोभाकरौ॥
भक्तैर्नित्य सुसेवितौ सुरसिकौ, गोपालवाला वुभौ।
राजेते तदिहास्ति विश्वमुकुटं, काम्यक वनं शोभनम्॥
वृन्दा शोभित मन्दिरं सुखमयं कामेश्वरं ईश्वरम्।
द्वीपाधिष्ठित रामनाम सहितं, श्रीमद् पद शोभितम्॥
एकस्यां दिशि राजितं सुखप्रदं, रामेश्वराधीश्वरम्।
दृष्ट्वा यंच सुखायते जनमनः, काम्यक् वनं शोभनम्॥
श्रुत्वा यशः व्रजभुवो दिवि देव—संघाः।
नृत्यन्ति प्रेमभरिताः परितः मदेन॥
गायन्ति श्याममुख सौरभ रम्य गीतम्।
धन्याःस्म कामवन रेणु पुनीत देहाः॥
श्यामाः पिका अनुक्वणन्ति रसाम्रवेणुम्।
गत्वा कदम्बमभिनृत्यति ग्वालसंघः॥
आस्तीर्णपिच्छ कलकंठ मयूर मत्ता।
नृत्यन्ति श्याममुखसौरभ दत्त चित्ताः॥
श्यामा सुधाकर मुखी हसिताननेयम्।
राधा सखी सुरसिका, सुखदा विशाखा॥
प्रेमेंगित प्रणयिनं घनश्याम श्यामं।
रन्तुं समाह्वयति प्रेम परिप्लुताक्षा॥
यश्यामहं प्रतिजनं घनश्याम रूपं।
आलोकये प्रति सखि, प्रिय राधिकेयम्॥
ज्ञानेन मां किमुत विभ्रम मा ददाति।
सर्वत्र रूप रस सार सुधाधरस्य॥

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य
श्री श्रीजी, श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का—
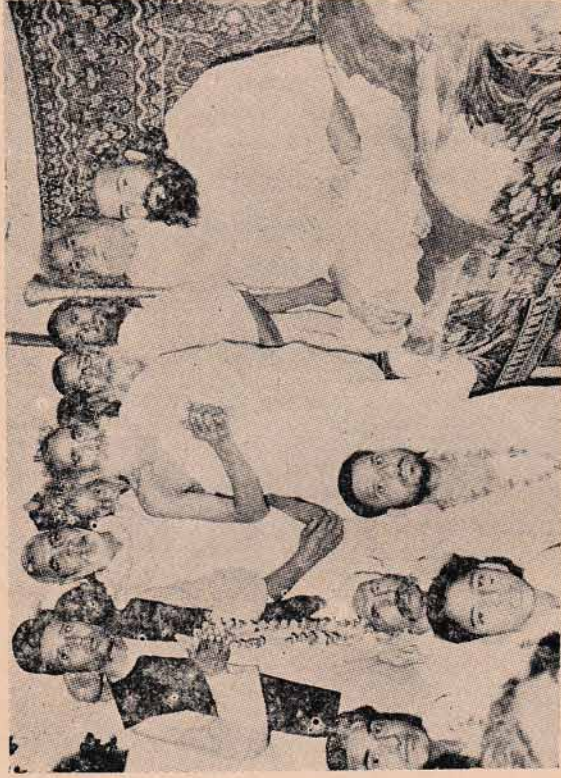
वि० सं० २०२७ के फाल्गुन मास में ८४ कोश व्रज-यात्रा करते समय, विमल कुण्डस्थ श्री गोपाल-मन्दिर में पदार्पण ।

कामवन का महत्व

•

यह व्रज चौरासी के अन्दर एक प्रसिद्ध प्राचीन दर्शनीय स्थल है, पुराणों में तो इसका महत्व विशदरूप से मिलता ही है महाभारतके वन पर्व में भी विस्तारपूर्वक लिखा गया है, पाण्डवों ने जब धौम्य लौमश आदि ऋषियों के निर्देशानुसार भारत के तीर्थों में भ्रमण किया था उसी प्रसंग में काम्यक वन का उल्लेख है। वाराहपुराण में भी व्रज के स्थलों में इसका वर्णन है।

गर्गसंहिता में इसका वर्णन इस प्रकार से मिलता है— सिन्धु देश में चम्पका नगरी का एक विमल नाम नरेश हुआ है उसके ६० हजार रानियां थीं किन्तु एक के भी पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ। एक समय वहां याज्ञवल्क्य ऋषि गये, राजा को उदास देखा पूछने पर राजा ने अपना दुःख प्रकट किया। ऋषि ने कहा—इस जन्म में तुम्हारे कन्या ही कन्या होंगी पुत्र नहीं हो सकता। राजा ने पितृ ऋण से मुक्त होने का उपाय पूछा तब याज्ञवल्क्य ने कहा–उन कन्याओं को तुम श्रीकृष्ण के अर्पण कर देना। राजा विमल ने पूछा श्रीकृष्ण का अवतार कब होगा ? ऋषि ने कहा—इस द्वापर युग के एक सौ पन्द्रह वर्ष अवशिष्ट रहेंगे तब भाद्रपद कृष्णा ८ रोहिणी नक्षत्र हर्षण योग, ववकर्ण को अर्धरात्रि के समय श्रीकृष्ण का अवतार होगा।*

---

* द्वापरस्य युगस्याऽस्य तव राज्यान्महाभुज ?।
अवशिष्टे वर्षशते तथा पञ्चदशे नृप ?।

प्रतीक्षा करते-करते जब वह समय आया तब राजा ने अपने एक दूत को मथुरा भेजा उसने पता लगाया तो मथुरा वासियों से ज्ञात हुआ—वसुदेवजी के कई पुत्र हुए किन्तु उन सबको कंस ने मार डाला, दूत ने जब लौटकर राजा विमल को यह समाचार सुनाया तो वह बड़ा दु:खी हुआ, उसी समय दिग्विजय करते हुए भीष्मजी वहां आ गये, विमल ने उनसे पूछा तो उन्होंने ध्यान धरकर बतलाया, हे राजन् ! भगवान् राघवेन्द्र रामचन्द्रजी से वरदान प्राप्त अयोध्या वासिनी स्त्रियां ही तुम्हारी रानियों के उदरों से कन्या रूप में प्रकट होंगी, उन्हें तू अवश्य ही श्रीकृष्ण के अर्पित करेगा। कन्यायें उत्पन्न होकर व्याहने योग्य हो गईं। जब दुवारा दूत मथुरा पहुँचा तो उन्हें यमुनातट पर श्रीकृष्ण के दर्शन हुए, दूत ने विमल राजा की प्रार्थना निवेदित की, भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे स्वीकृति देदी, दूत ने चम्पकापुरी में आकर खबर दी, राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण भी आकाशमार्ग से थोड़े ही समय के अनन्तर वहां जा पहुँचे। राजा ने स्तुति करते हुए अपनी समस्त कन्यायें श्रीकृष्ण को व्याह दीं। श्रीकृष्ण ने राजा से वर मांगने के लिये कहा, तब चरणों में गिरकर राजा ने श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त लगे रहने का वर मांगा। भगवान् ने तथाऽस्तु कहा। राजा ने आत्मा आत्मीय सब कुछ श्रीकृष्ण के अर्पण कर दिया, भगवान् ने उसे मुक्त कर दिया।

तस्मिन्वर्षे यदुकुले मथुरायां यदोः पुरे।
भाद्रे बुधे कृष्णपक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे।
ववेऽष्टम्यामर्धरात्रे नक्षत्रेश महोदये।
अन्धकारावृते काले देवक्यां शौरि मन्दिरे।
(गर्गसंहिता माधुर्य्य खण्ड, अ० ५ श्लोक १७-२०)

विवाहित उन समस्त राजकुमारियों को भगवान् ने काम-वन के उत्तम महलों में रक्खा और उतने ही रूप धारण करके उन्हें सुख दिया। जब उनके साथ रासक्रीडा की तब आनन्द-आह्लाद से समुत्पन्न अश्रु विन्दुओं का एक सरोवर बन गया, वहीं आगे चलकर विमलकुण्ड के नाम से प्रख्यात हुआ। इस उत्तम तीर्थ के जो दर्शन करते हैं, इसके जल का आचमन, मार्जन प्रोक्षण स्नान पान करते हैं उनके सुमेरु पर्वत के समान महान् पाप भी भस्म हो जाते हैं और वह भक्त, मानव गोलोक-धाम में चला जाता है।*

एक ऐसी भी कथा है-कि वृद्धावस्था में बाबा श्रीनन्दजी और श्रीयशोदा माताजीने भगवान्‌से एकबार तीर्थयात्रा करनेकी अभिलाषा प्रकट की, तब भगवान् ने कहा—बाबा, सब तीर्थ आपके लिये यहां बुला लेते हैं। भगवान् की प्रेरणा से भारत वसुन्धरा के सभी तीर्थ यहाँ आये अपने-अपने नाम बोलते गये और इसी तीर्थराज विमलकुण्ड में सब समा गये। आज भी यहां बद्री, केदार, रामेश्वर, बूढ़े बद्री, आदिबद्री विद्यमान् हैं। भग-वान् श्रीकृष्ण के क्रीडा स्थलों में—चरण पहाड़ी, भोजन थाली, फिसलनी शिला, दोहनी मोहनी कुण्ड, सुरभी (श्री) कुण्ड (जहां गोविन्दाभिषेक हुआ था)। जहां इन्द्र ने आकर क्षमा याचना की

---

* रासे विमल पुत्रीणामानन्दजलविन्दुभिः।
च्युतैः विमलकुण्डोऽभूत् तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
दृष्ट्वा पीत्वा च संस्नात्वा पूजयित्वा नृपेश्वर ?।
छित्वा मेरु समं पापं गोलोकं याति मानवः।
अयोध्यावासिनीनान्तु कथां यः शृणुयान्नरः।
स व्रजेद्धाम परमं गोलोकं योगि-दुर्लभम्।
(गर्ग० माधुर्य खण्ड, अ० ७ श्लोक २८-३०)

थी, वह स्थल इन्द्रोली है। श्यामसुन्दर के कर्ण छेदन का स्थान यहां कनवाडा है। चरण पहाड़ी के पास ही लुकलुक कुण्ड है जहां श्रीकृष्ण लुकलुक मींचनी का खेल खेले थे। व्योमासुर की गुफा और चामर (चामुण्डा) देवी का स्थल भी यहां है। यहां का जसमत खेडा यशोदाजी का निवास स्थल माना जाता है।

वर्तमान दर्शनीय मन्दिरोंमें यहां श्रीगोकुलचन्द्रमाजी, श्रीमदनमोहनजी, श्रीगोविन्ददेवजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीवृन्दादेवी, श्रीराधावल्लभजी, श्रीकामेश्वर महादेव (गोपीश्वर, भूतेश्वर, चकलेश्वर और कामेश्वर व्रजमें ये चार शिव प्रतिमा) प्रसिद्ध हैं।

कामवन बहुत वर्षों तक देशी नरेशों के शासन में रहा। आज से ३०० वर्ष पूर्व यहां कुशवाहा (कछवाये) नरेशों का शासन था। किशनगढ़ के राठौर राजा राजसिंहजी की रानी चतुरकुंवरी इसी कामवन की राजकन्या थीं, जिनके उदर से महाराजा सांवन्तसिंह (नागरीदासजी) जैसा भक्त नरेश प्रकट हुआ था। यहां के चौरासी खम्भों का साही दरबार शासकों द्वारा ही बनवाया गया था।

यहां वैसे तो सदा सर्वदा प्रदक्षिणा होती रहती है, उनमें भाद्रपद कृष्णा १० की पञ्चकोशी और कार्तिक शुक्ला ९ (अक्षयनवमी) की सप्तकोशी इन दो परिक्रमाओं में जनसमूह अधिक रहता है।

विमलकुण्ड तीर्थराज के चारों घाटों पर चारों सम्प्रदाय के वैष्णवोंके पुराने मठ मन्दिर हैं—पूर्वीघाट (गउघाट) पर श्रीलछमनजो मन्दिर (श्रीरामानन्दीय) पश्चिम घाट पर श्रीराधागोपालजी और श्रीमुरलीमनोहरजी (श्रीनिम्बार्कीय)। उत्तर घाट पर श्रीकावडियाजी मन्दिर (विष्णुस्वामी), दक्षिण घाट पर श्रीमदनगोपालजी (गौड़ीय)।

यहां के विरक्तों में विद्वद्वर श्रीरघुवरदासजी (गोपाल मन्दिर विमल कुण्ड) और गोस्वामी वर्ग में श्रीदेवकीनन्दनजी महाराज आदि विशिष्ट विभूति हो गये हैं। ब्राह्मण-समाज में भी बहुत से विख्यात विद्वान हो चुके हैं। वर्तमान में कई एक भागवती और व्याकरण आदि शास्त्रों के आचार्य विद्यमान हैं। ऊँचे-ऊँचे टीलों पर और ऊबड खावड भूमि पर बसी हुई यहां की आवादी भी यहां की प्राचीनता को अभिव्यक्त कर रही है। समय-समय पर देशों की स्थिति बदलती रहती है, हजारों वर्ष पूर्व काम्यक् वन की सुषुमा कुछ और ही रही होगी। पाण्डवों ने जब हस्तिनापुर से आकर काम्यक् वन में वास किया था, तब यह वन बड़ा गहन और परम रम्य था, पाण्डवों के साथ धौम्य आदि ऋषि भी आये थे। (महाभारत वन पर्व अ० ३ का अन्तिम श्लोक)। जव पाण्डवों के पास विदुर आये तो उन्हें लौटाकर ले जाने के लिये धृतराष्ट्र ने संजय को भेजा था, वे शीघ्र ही यहां आ पहुँचे थे। युधिष्ठिर आदि पाण्डव हस्तिनापुर से गंगा यमुना आदि में स्नान करके कुरुक्षेत्र होते हुए वहां से पश्चिम दिशा की ओर चलते-चलते मरुजोमल देश वाले काम्यक् वन पहुँचे थे। म० भा० वनपर्व अ० ५।

अर्जुन अन्यत्र एकान्त में तपश्चर्या करने को यहां से ही गया था। म० व० प० अ० ८० और ८१ में ऐसे उल्लेख मिलते हैं। यहां का जल वायु भी स्वास्थ्यप्रद है।

●

प्रकाशकीय

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीआद्यनिम्बार्काचार्यजी ने समस्त शास्त्रों का निष्कर्ष स्वरूप वेदान्तकामधेनु (दशश्लोकी) वेदान्त पारिजात सौरभ (ब्रह्मसूत्रों की वृत्ति) रहस्य षोडशी, प्रपन्न कल्पवल्ली, प्रातः स्तवराज, प्रपत्ति चिन्तामणि, सदाचार प्रकाश, आदि बहुत से ग्रन्थों का प्रणयन किया था, उनमें बहुत थोड़े ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे हैं। बहुत लुप्त हो गये। सदाचार प्रकाश और प्रपत्ति चिन्तामणि का (वेदान्तरत्न मंजूषा आदि ग्रन्थों में) नामोल्लेख मात्र मिलता है। बहुत कुछ छानवीन करने पर भी अभी तक उनकी उपलब्धि नहीं हो सकी है। हां, सदाचार प्रकाश के आधार पर ही सम्भवतः संकलित विक्रम सम्वत् १७८५ का लिखा हुआ "सदाचार सार संग्रह" नामक एक ग्रन्थ जहां तहां उपलब्ध होता है।

श्रीनिम्बार्काचार्य के साक्षात् शिष्यों में ही एक औदुम्बराचार्य हुए हैं, उन्होंने एक "औदुम्बर संहिता" नामक ग्रन्थ का संकलन किया था। इसमें पुराण, महाभारत, वाल्मीकीय रामायण और अन्याऽन्य स्मृति (धर्मशास्त्र) आदि के प्रमाणानुसार साधना करने की एक पद्धति लिखी है, इसमें भगवान् श्रीराधाकृष्ण की नित्य पूजा उपासना, उनके बारह महीनों के उत्सव महोत्सव तथा एकादशी महाद्वादशियों के व्रत और वैष्णवों के विशेष पञ्चसंस्कार आदि का संक्षिप्त होते हुए भी सुन्दर सुचारु रूप में वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ की भी प्रतियां बहुत कम

ही स्थलों पर मिलती थी, अतः इसके भी लुप्त होने की आशंका स्वाभाविक थी।

इस दास की कई दिनों से यह इच्छा हो रही थी कि किसी एक छोटी मोटी पुस्तक का प्रकाशन करवाकर साहित्य प्रकाशनात्मक सम्प्रदाय की कुछ सेवा करूँ। एकदिन मैंने श्रीजी मन्दिर के माननीय अधिकारी विद्वद्वर श्रीव्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थजीके समक्ष मैंने अपना मनोरथ प्रकट किया, तब उन्होंने उक्त दोनों ग्रन्थों में से किसी एक को प्रकाशित करवा देने की अनुमति प्रदान की। मैंने इसे देखा और कुछ सज्जनों से विचार विमर्श किया, तो सभी ने कहा जब तक भाषा टीका न हो तब तक इन ग्रन्थों से सर्वसाधारण जनता का उतना हित नहीं हो सकता जितना कि होना चाहिये। यह मेरे को भी उचित ही प्रतीत हुआ, अतः मैंने श्रीअधिकारीजी महाराज से औदुम्बर संहिता की भाषा टीका करने के लिये प्रार्थना की, उन्होंने अवकाश न होते हुए भी मेरी प्रार्थना स्वीकार करली, और विक्रम संवत् २०२६ की श्रीनिम्बार्क जयन्ती (कार्तिक शु० १५) के शुभ दिन ही भाषा टीका करना आरम्भ कर दिया।

मैंने इसके प्रकाशनार्थ अर्थसंग्रह करना प्रारम्भ किया, सर्वप्रथम भक्तवर वसन्तलालजी खण्डेलवाल के सुपुत्र यादराम मुनीम से कहा गया तो उन्होंने प्रेम से इस कार्य में अपनी शक्ति अनुसार आर्थिक योग प्रदान किया। उसके अनन्तर कुछ श्री-गोपालजी के भंडार से भी जुटाया गया, किन्तु वह सब पर्याप्त नहीं था, अनुवाद भी हो गया और प्रेस कापी होकर मुद्रण कार्य भी आरम्भ हो गया, किन्तु चिन्ता यही निरन्तर लगी रही, यह प्रकाशन पूर्ण कैसे होगा। फिर से श्रीअधिकारीजी महाराज से अपनी आपत्ति सुनाई, तब आपने सोच-विचार करके धर्मप्राण

भक्तिमती उस देवी से अनुरोध किया जिस नाम का सुयश महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ में गौरव पूर्वक उल्लेख मिलता है मदालसा नाम वाली सती साध्वी देवी ने जैसा पुण्यार्जन किया था, उसी प्रकार आज मदालसा देवी लोहिया की धार्मिक प्रवृत्ति है ।

यह परिवार ही परमार्थ परायण है, भक्तवर श्रीकन्हैयालालजी व्रजलालजी चूरू वालों का सुयश चारों ओर फैल रहा है, चूरू में आपके द्वारा संस्थापित एक सुन्दर कालेज चल रहा है जिसमें बालकों को शिक्षा मिल रही है । कलकत्ते में लोहियों का "लोहिया मातृ सेवा सदन" जनाना अस्पताल एक प्रसिद्ध जनसेवी संस्था है । आपके यहां के धर्मादा फण्ड से कई एक मठ-मन्दिर और पारमार्थिक सेवायें चल रही हैं, भक्तिमती श्रीमदालसा देवी लोहिया ने अपने पतिदेव श्रीनन्दकिशोरजी लोहिया की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये श्री श्रीजी मन्दिर वृन्दावन में कई एक कमरे धर्मार्थ बनवाये और कई स्थलों का जीर्णोद्धार करवाया, श्रीनिम्बार्क ग्राम सेवा मण्डल को निम्बग्राम में जल सेवा के लिये पर्य्याप्त एवं पूर्ण योगदान किया है, अखिल भारतीय जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के मन्दिर प्रांगण को आपने आच्छादित करवाया ।

आपके पिता श्रीचौथमलजी पौद्दार एवं भ्राता चम्पालाल जी तथा उनके पूर्वज भी बड़े पुण्यात्मा थे, नागपुर आदि में इस परिवार को विशाल धर्मशालायें हैं, जिनसे बहुत बड़ा लोकोपकार हो रहा है । भक्तिमती श्रीमदालसा देवीजी की माता और सासूजी ने भी वृन्दावन में धर्मार्थ कमरों का निर्माण करवाया है जिनमें समय-समय पर आकर यात्रो ठहरते हैं । कई एक पुस्तकें भी प्रकाशित करवाकर अमूल्यरूप से आपने धर्मार्थ वित-

श्रीऔदुम्बर-संहिता श्रीनिम्बार्क विक्रान्ति आदि के
अनुवादक तथा सम्पादक विद्वद्वर—
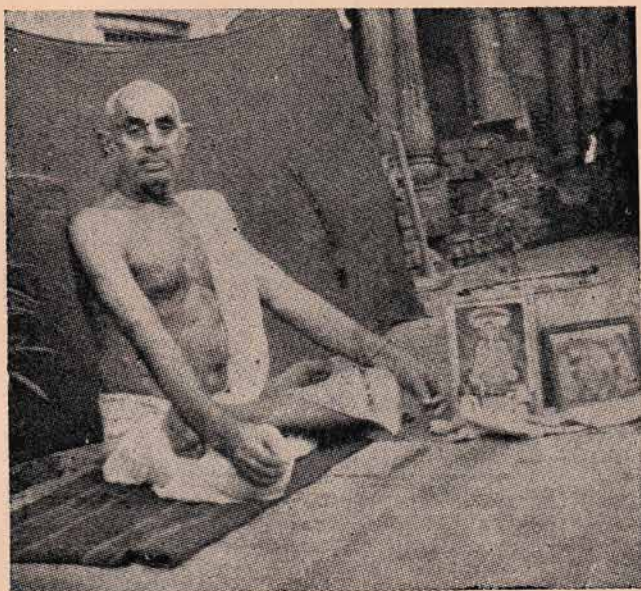
श्रीव्रजवल्लभशरण, वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ
अधिकारी श्रीजी मन्दिर, वृन्दावन ।

रण किया है। इस दुर्लभ पुस्तक में भी आपने यथेष्ट आर्थिक योग देकर धार्मिक जगत् का महान् उपकार किया है। यदि आपका आर्थिकयोग न मिलता तो इस पुस्तकका प्रकाशित होना कठिन था, यदि इसका प्रकाशन न होता तो पता नहीं भविष्य में इसका अस्तित्व रहता या नहीं।

आपके सुपुत्र चिरञ्जीवी श्रीकृष्णकुमार जिनका सम्बन्ध भक्तवर ग्वालदासजी द्रक्षा की सुपौत्री से हुआ है, इन दोनों की भी धार्मिक प्रवृत्ति अनुकरणीय है। ललित कुसुम मञ्जु करुणा सभी सुताओं की भी धार्मिक भावनायें अपने कुल की परम्परा के ही अनुसार हैं। श्रीसर्वेश्वर श्रीराधागोपालजी महाराज के चरणकमलों में हमारी यही अभ्यर्थना है—इस लोहिया भक्त परिवार को सब प्रकार उन्नत स्वस्थ एवं समृद्धिशाली बनाये रक्खें और ऐसी ही धार्मिक प्रवृत्ति बनी रहे जिससे कि भविष्य में भी अधिक से अधिक लोकोपकार होता रहे। "लोकोपकाराय सतां विभूतयः" वास्तव में यह उक्ति इस कुल में चरितार्थ हो रही है।

आभार प्रदर्शन—

इस प्रकाशन के प्रेरक अधिकारी श्रीव्रजवल्लभशरणजी का सहयोग मुझे सर्वाधिक प्राप्त हुआ, मैं आपके उपकार से चिर ऋणी रहूँगा। भक्तिमती मदालसा देवी लोहिया और चि० यादराम मुनीम कामवन आदि ने आर्थिक योग दिया है, श्रीमदालसा देवी लोहिया के मुनीम भक्तवर भीषमचन्दजी जोशी ने पत्र व्यवहारादि द्वारा प्रशंसनीय सहयोग दिया, मूल की प्रेस कापी तय्यार की श्रीगोविन्दशरणजी ब्रजरेणु ने—इन सभी का

मैं आभारी हूँ। साथ ही साथ श्रीसर्वेश्वर प्रेस वृन्दावन के प्रोपा-इटर श्रीवृन्दावनचन्द्र चटर्जी के उपकार को भी मैं भुला नहीं सकता, जिन्होंने आगे पीछे जैसे तैसे मुद्रण कार्य को पूर्ण कर ही दिया।

यद्यपि हमारी इच्छा थी कि यह प्रकाशन बहुत सुन्दर ढङ्ग का हो और इसमें कामवन की महिमा भी विशदरूप से रहे, किन्तु प्रयत्न करने पर भी वैसा नहीं हो सका। कामवन माहा-त्म्यकी पुस्तकका तो कामवन में रहते हुए भी सम्पादकों को दर्शन तक नहीं हो सके। ऐसी स्थिति में प्रेमी पाठकों के करकमलों में जो कुछ अर्पित किया जा रहा है, उसी से सभी पाठक सन्तुष्ट होंगे, हमें तो इस दुर्लभ ग्रन्थ के भेंट कर देने का महान् सन्तोष है,यदि पाठकजन इसे प्रेम से पढ़कर लाभ उठायेंगे तो हम अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे।

सभी भक्तजनों का शुभाकांक्षी

निम्बार्कीय महन्त पं० रामकृष्णदास

विमलकुण्ड कामवन।

भूमिका

●

श्री औदुम्बर संहिता के प्रणेता हैं श्री औदुम्बराचार्य, उनकी जीवनी के सम्बन्ध में जितना जो कुछ पता मिलता है वह उनके ही रचे हुए श्रीनिम्बार्क-विक्रान्ति ग्रन्थ के निम्नाङ्कित पदों में प्राप्त होता है :—

यत्स्पृष्ट आत्मीय सखो बभूव औदुम्बरो जन्तुरिवात्मरूपः ।
कृष्णस्य यद्वत्कृकलाससर्पौ गन्धर्वमुख्यावति चित्र रूपौ ॥

(श्रीनिम्बार्क विक्रान्ति श्लोक ९०)

औदुम्बराचार्य कहते हैं—जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों के स्पर्श होते ही एक गिरगिट राजा नृग के रूप में और नन्द जी को ग्रसनेवाला सर्प गन्धर्व रूप में प्रकट हो गया था। उसी प्रकार हे सुदर्शनावतार गुरुवर्य्य श्रीनिम्बार्क-भगवान् आपके चरण कमलों के स्पर्शमात्र से यह औदुम्बर जन्तु आपके समान आकृतिवाला मानव बन गया।* इससे यह निश्चित है कि औदुम्बर नामक एक ऋषि भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य का कृपापात्र था, और उनकी कृपा से ही यह औदुम्बराचार्य समस्त शास्त्रों में पारंगत हुआ था।

---

* निम्बार्क विक्रान्ति में श्रीऔदुम्बराचार्य ने इस प्रसंग को विशदरूप से लिखा है। जब भगवान श्रीनिम्बर्काचार्य भ्रमण करते हुए दक्षिण पद्मनाभ स्थल में पहुँचे। तब वहाँ के कुछ विद्रोहीजनों ने आपसे ईर्षा की, शास्त्रार्थ करने का अनुरोध किया। ये प्रभु की आराधना कर रहे थे उसी क्षण ऊपर से

श्रीऔदुम्बराचार्य का प्रादुर्भाव समय भी इस घटना के अनुसार श्रीनिम्बार्काचार्य के समसामयिक ही माना जाता है। अभी तक किसी ने आपकी जीवनी और समय आदि के सम्बन्ध में कुछ अन्वेषण नहीं किया है। उनकी कृतियों में एक श्रीनिम्बार्क विक्रान्ति और दूसरी यह औदुम्बर संहिता है। निम्बार्क विक्रान्ति में श्रीनिम्बार्काचार्य की जीवनी के कुछ चमत्कारों का आपने वर्णन किया है और औदुम्बर संहिता में इस सम्प्रदाय के सज्जन भक्तों के करने योग्य भगवान् की सेवा-पूजा आराधना, एकादशी, महाद्वादशी, जन्मअष्टमी, रामनवमी आदि भगवज्जयन्ति महोत्सवों का विधान, वैष्णवों के संस्कार आदि का विवेचन पुराण, महाभारत, रामायण, पंचरात्र आदि आर्ष ग्रन्थों के वचनों का संकलन करके किया गया है, अतः यह ग्रन्थ श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का धर्म शास्त्रीय ग्रन्थ कहलाता है। इससे पूर्व इस प्रकार का ग्रन्थ श्रीनिम्बार्काचार्य कृत "सदाचार प्रकाश था, जिसका उल्लेख वेदान्तरत्न मञ्जूषा आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। वर्तमान में उपलब्ध ऐसे ग्रन्थों में" वैष्णवधर्म सुरद्रुमञ्जरी, सद्धर्म सूचनिका, श्रीनिम्बार्क व्रत निर्णय, स्वधर्मामृत सिन्धु आदि कई एक ग्रन्थ हैं, किन्तु उन सबमें प्राचीनता इसी की है। प्रायः सभी ग्रन्थों में इस संहिता के वचन और औदुम्बराचार्य का नामोल्लेख मिलता है।

गूलर का एक फल निम्बार्क भगवान् के चरणों पर गिरा और चरणों के स्पर्श होते ही मानवाकृति में खड़ा होकर उन सब विपक्षियों से शास्त्रार्थ करने लगा, वे सब निरस्त हो गये। प्रभु की लीला पर जिन्हें विश्वास न हो वे इस आख्यान से आश्चर्य-चकित हो सकते हैं, और इस श्लोक का अर्थ दूसरा भी कर सकते हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों में सबसे विस्तृत "श्रीशुकसुधी कृत स्वधर्मामृतसिन्धु है, उसका प्रणयन विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त और बीसवीं शदी का आरम्भकाल सुनिश्चित है। श्रीशुकसुधी का परमधामवास विक्रम सम्वत् १९२६ में हुआ था। वे मथुरा स्थित श्रीपरशुराम द्वारा में रहते थे। उनके पश्चात् उनके शिष्य श्रीभगवानदासजी वहाँ के स्थानापन्न रहे थे। उनके पश्चात् उनके शिष्य श्रीठाकुरदासजी रहे। श्रीजी मन्दिर वृन्दावन के वि० सम्वत् १९२९, १९३० की रोकड़ बही खातों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं। सुना जाता है श्रीशुकसुधी की जन्मभूमि मथुरा ही थी। यहाँ के गौड़ द्विजवंश को आपने अलंकृत किया था, वे बड़े विद्वान् और त्यागी थे।

श्रीधनीराम कृत—श्रीनिम्बार्क व्रत ज्योत्स्ना (निम्बार्क व्रत निर्णय) स्वधर्मामृतसिन्धु से सूक्ष्म और प्राचीन है, वह औदुम्बर संहिता के अनुसार है, किन्तु कई स्थल औदुम्बर संहिता से विस्तृत हैं। उसमें औदुम्बराचार्य का केवल आचार्य नाम से उल्लेख करके इनके वचन उद्‌धृत किये गये हैं। माघ मास के प्रकरण में "अर्धोदय का विवेचन है। वहाँ निर्णयामृत मदनरत्न, श्रीरामचन्द्र भट्ट, श्रीनारायण भट्ट आदि के नामोल्लेखों से ज्ञात होता है वह ग्रन्थ श्रीनारायण भट्ट (वि० सं० १६००) के पश्चात् और विक्रम सम्वत् १८०० के मध्यकाल में संकलित किया गया होगा।

"श्रीसङ्कर्षणदेव कृत, वैष्णव धर्म सुरद्रुम मञ्जरी कुछ अंशों में इसी ढंग का है, वस्तुतः वह वैष्णव धर्म और भगवान् विष्णु श्रीकृष्ण का परत्वदर्शक है, इसमें एकादशी जन्म-अष्टमी वामनद्वादशी श्रीनृसिंह जयन्ती आदि बहुत थोड़े उत्सव-महोत्सवों का ही उल्लेख हुआ है। इस ग्रन्थ में एकादशी आदि उपवास

करने योग्य तिथियों के वेध—के प्रकरण में—"निम्बार्को-भगवान्येषां" इस श्लोक के प्रसङ्ग में "भट्टोजी दीक्षित का और उनकी कृति "तिथि निर्णय का नामोल्लेख है। एकादशी वेध के विषय में मुहुर्त चिन्तामणि का और कालनिर्णय-दीपिका का नामोल्लेख है। वैष्णवों के पञ्चसंस्कारों का वर्णन थोड़ा बहुत इन सभी ग्रन्थों में है, उनके सम्बन्ध का यह श्लोक "तापं पुण्ड्रं तथा माम मन्त्रो यागश्च पंचमः। अमी हि प ञ्च संस्काराः परमैकान्त–हेतवः। औदुम्बरसंहिता आदि ग्रन्थों में है किन्तु वैष्णवधर्म सुद्रुम मंजरी में वह नहीं है। उसमें वैष्णवों के वाह्यचिह्नों में तुलसी की माला कण्ठी धारण करना,ताप और पुण्ड्र की चर्चा तो है किन्तु औदुम्बर सहिता में तुलसी की कंठी धारण करने या न करने का विशेष विवेचन नहीं है।

सम्भव है औदुम्बर संहिता के प्रणयनकाल में, कंठी के सम्बन्धमें विशेष विवेचनकी आवश्यकता न होगी। उसकी रचना के पश्चात् ही कुछ सज्जनों ने कण्ठी सदा न धारण करने पर बल दिया, उसके विपरीत अन्य पक्षवालों ने विधि निषेध वाक्यों का समन्वय किया। उत्तरोत्तर ग्रन्थों में यह चर्चा विशेष रूप से होने लगी।

औदुम्बर संहिता में आरोपण सेचन, धारण आदि नव प्रकार से तुलसी की आराधना का विधान है। अतः तुलसी काष्ठ की कण्ठी माला का धारण करना कराना वैष्णवों में एक सर्व साधारण नियम होने के कारण औदुम्बर संहिता के प्रणयन-काल में तुलसी की कण्ठी सदा धारण रखने का जब प्रतिवाद ही नहीं था तब उसके धारण करने न करने के विवेचन की उस समय अपेक्षा ही न रही होगी, सम्भवतः इसी कारण औदुम्बर संहिता में उसकी विशेष चर्चा न की गई।

वैष्णव धर्म सुरद्रुम मंजरी आदि की अपेक्षा इसकी प्राचीनता का एक हेतु यह भी है—इसमें पुराण उपपुराणों के अतिरिक्त किसी ऐसे ग्रन्थ का नामोल्लेख नहीं हुआ जो विक्रम की छठी-सातवीं शती से अर्वाचीन माना जाता हो इसमें जिन ग्रन्थों का और व्यक्तियों का नामोल्लेख है। उनका उल्लेख विषय सूची के साथ प्रकाशित है। उनमें एक नाम तत्वसार एवं तत्वगुण सार भी है, किन्तु वह किसी आधुनिक व्यक्ति का रचा हुआ नहीं। वह पुराण उप पुराणों के ही अन्तर्गत है।

पुराणों के अनेकों प्रभेद हैं :—जैसे महापुराण, उपपुराण, अति पुराण और पुराण, इन सबकी संख्या अठारह २ मानते हैं, किन्तु इन ७२ के अतिरिक्त भी पुराण उपपुराण और हैं, इन्हीं पुराण उपपुराणों में एक तत्त्वसार एवं तत्त्वगुणसार है। इस सम्बन्ध में "कल्याण" मासिक-पत्र में कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित पं० जानकीनाथ शर्मा का लिखा हुआ "पुराण उपपुराणों की संख्या और उनकी सुरक्षा समस्या" शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

कुछ सज्जन औदुम्बर संहिता को अर्वाचीन सिद्ध करने के लिये, तर्क देते हैं कि यदि—"यह संहिता प्राचीन है तो ऋषि-मुनियों के स्मृति आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख होना चाहिये।" इस तर्क के निराकरण—में हम इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं—"किसी ग्रन्थ की अर्वाचीनता सिद्ध करने के लिये केवल यह एक ही हेतु अकाट्य नहीं हो सकता, जब तक किसी अर्वाचीन ग्रन्थ या ग्रन्थकार का नामोल्लेख या उसके वचन न मिलैं तबतक वह अर्वाचीन सिद्ध नहीं हो सकता। अस्तु

श्रीऔदुम्बराचार्य की शैली अपने ही ढङ्ग की है, पुराणों के वचनों का उद्धरण देकर अपने भावों को भी उसके साथ पद्यात्मक रूप से ही सम्बन्धित कर दिया है। इस सम्प्रदाय में

अन्यान्य लेखकों ने भी इस परम्परा-सम्प्राप्त पद्धति का संरक्षण किया है। श्रीनारायण देवाचार्यजी द्वारा प्रणीत आचार्य चरित्र में, यही पद्धति अपनायी गई है।

औदुम्बर संहिता में श्रीराधाकृष्ण युगल की आराधना पर बल दिया गया है, वह श्रीसनत्कुमारों के सनत्कुमारीय गुण रहस्य, सनत्कुमार संहिता, नारदीय पुराण आदि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों और उपदेशों के अनुसार है। इसके पठन-पाठन से वैष्णव साधकों का बड़ा हित होगा। महन्त पं० रामकृष्णदासजी के अनुरोध से इसकी संक्षिप्त भाषा टीका की गई है, समयाभाव से कई स्थलों का विशद वर्णन नहीं किया जा सका है। जहाँ-तहाँ त्रुटियों का रहना स्वाभाविक है, यदि विद्वज्जन उन्हें व्यक्त करेंगे तो आगामी संस्करण में उनका सुधार हो सकता है।

—श्रीव्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थ

युगल मूर्ति

* श्रीराधासर्वेश्वरो जयति *

* श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः *

अथ औदुम्बरसंहिता प्रारम्भः ।

श्रीमन्तौ राधिकाकृष्णौ कांक्षितौ प्रणमाम्यहम् ।
यावाश्रित्य गदिष्यामि व्रतपञ्चक-निर्णयम् ॥ १ ॥
चतुर्नारदनिम्बार्कान् पारम्पर्य्यान् गुरून्निजान् ।
नत्वा तन्मतमादृत्य व्रतपञ्चकमुच्यते ॥ २ ॥

श्रीहंसादिमहोदयान् गुरुवरान्नाचार्यपादान् सदा,
नत्वा निम्बदिवाकरानुगकृतामौदुम्बरीं संहिताम् ।
गुप्तांलुप्तभयात् प्रकाशन परैःश्रीरामकृष्णाभिधैः
भाषार्थं ह्यनुरोधितेन च मया साऽऽरभ्यते वल्लभा ।
रसयुग गगन नयनमित-विक्रमाब्दे कार्तिकपूर्णिमायां
श्रीनिम्बार्क जयन्ती पर्वदिवसे हि समारब्धा ॥

श्रीऔदुम्बराचार्य स्वेष्टनमनपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं—मैं अपने इष्ट श्रीराधा-कृण को प्रणाम करता हूँ उन्हीं के चरणों का आश्रय लेकर व्रतपंचक निर्णय कहूँगा ॥ १ ॥

श्रीहंसनारायण के शिष्य चारों श्रीसनकादि, तथा श्रीनारद, और श्रीनिम्बार्क इन सब परम्परागत श्रीगुरुवरों को नमन करके उनके अभिमतानुसार इस व्रत पञ्चक का संकलन किया जा रहा है ॥ २ ॥

श्रीनिवासाचार्यवर्य्यो निम्बादित्यमुखाम्बुजात् ।
नित्यकृत्यं निशम्याद्धा नैमित्तिकं सुपृष्टवान् ।। ३ ।।
नित्यकृत्यमवर्णय्योऽहर्निङ्विभाग— पञ्चके ।
पक्षादि वर्ष पर्य्यन्तं नैमित्तिकं वद प्रभो ।। ४ ।।
एवमामन्त्रितो हार्द्द निम्बादित्य उवाच तम् ।
श्रीनिवासानुग सम्यक् पृष्टं ते सकलोचितम् ।। ५ ।।
सम्पादयितुमिष्टं ते प्रवक्ष्ये व्रतपञ्चकम् ।
पक्षादिवर्षपर्यन्तं कालं निर्णष्यते यतः ।।
नैमित्तिकं करणीयं पञ्चव्रतपरायणैः ।। ६ ।।
एकादशी कृष्णमहोत्सवव्रतं
स्वैतिह्यसंस्कारविधिव्रतं तथा ।

श्रीनिम्बार्काचार्य के मुख से नित्यकृत्यों का विधान सुनकरके श्रीनिवासाचार्य ने नैमित्तिक कर्मों के जानने की जिज्ञासा प्रकट की ।। ३ ।।

श्रीनिवासाचार्य ने प्रार्थना की—हे प्रभो ? आपने दिन-रात के पांचोंकालों के नित्यकृत्यों का वर्णन किया, अब पक्ष मास वर्ष आदि में करने योग्य नैमित्तिक कृत्यों का वर्णन कीजिये ।। ४ ।।

इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीनिम्बार्काचार्य ने कहा—हे अनुग ? श्रीनिवास ? तुमने सभी लोगों के उपयोगी प्रश्न किया है ।। ५ ।।

तुम्हारे अभीष्ट रूप व्रतपञ्चक को मैं तुम्हें बतला देता हूँ जिससे कि पक्ष से लेकर वर्ष पर्य्यन्त कृत्यों का निर्णय हो सकेगा । पञ्चव्रत परायणों को नैमित्तिक कृत्य अवश्य करने ही चाहियें ।। ६ ।।

एकादशी भगवत् महोत्सव, स्वैतिह्यसंस्कारविधि, अंघ्रि-

अङ्घ्रिप्रसादव्रतमेकभावतः
श्रीराधिकाकृष्णयुगार्च्चनव्रतम् ॥ ७ ॥
सत्याङ्गहृद्वागविहिंसनव्रतं
सन्तो वदन्ति व्रतपञ्चकं त्विदम् ।
एकादशी कृष्णमहोत्सवव्रतं
तत्रैकमाहुश्च समन्वयव्रतम् ॥ ८॥
एकादशी कृष्णमहोत्सवो भवेद्
यावत्तु तावद्व्युपवासमाचरेत् ।
स्वैतिह्यसंस्कारविधिव्रतं व्यति-
रेकव्रतं सन्त उशन्ति वेदिनः ॥ ९ ॥
स्वैतिह्यसंस्कारविधिर्न धार्यते
तावन्न कुर्यात्तमृतेऽसतीः क्रियाः ।
अङ्घ्रिप्रसादव्रतमीशितुर्व्यति-
रेकव्रतं यावदवाप्यते न च ॥ १० ॥

प्रसाद, एकभाव से श्रीराधाकृष्णयुगल का अर्चन ॥ ७ ॥

और सत्याङ्गहृद्वाक् अविहिंसन, इन सब को सज्जन-जन व्रतपञ्चक कहते हैं। इनमें एकादशी और भगवत्महोत्सव ये दोनों समन्वित एक व्रत में गिने जाते है ॥ ८ ॥

जबतक एकादशी और भगवत्महोत्सव हों तबतक साधक को उपवास रखना चाहिये। स्वैतिह्य संस्कार विधिरूप व्रत को विद्वान् सन्त व्यतिरेक व्रत भी कहते हैं ॥ ९ ॥

जबतक स्वैतिह्य संस्कार विधि न अपनाई जाय तबतक किसी भी सत्कर्म करने का अधिकार नहीं प्राप्त होना, क्योंकि इस व्यतिरिक व्रत (स्वैतिह्यसंस्कार विधि) के विना भगवत्कृपा का भाजन नहीं बन सकता ॥ १० ॥

अङ्घ्रिप्रसादो न तु तावदद्यते
ह्यङ्घ्रिप्रसादव्यतिरिक्तमुक्तितम् ।
श्रीराधिकाकृष्णयुगार्चनव्रतं
प्राहुश्च सन्तो व्यतिरेकतो व्रतम् ॥ ११ ॥
श्रीराधिकाकृष्णयुगार्चनं न च
लभ्येत तावद्व्यतिरिच्य नार्च्चयेत् ।
सत्याङ्गहृद्वागविहिंसनव्रतं
प्राहुश्च सन्तो व्यतिरेकतो व्रतम् ॥
सत्याङ्गहृद्वागविहिंसनं विना
कुर्यान्न किञ्चिद्वहुदोषविश्रुतेः ॥ १२ ॥
तत्र चैकादशीकृष्णमहोत्सवव्रतं द्विधा ।
पाक्षिक वार्षिकभेदात्कुर्वन्ति सर्ववैष्णवाः ॥ १३ ॥
तत्र त्वेकादशीव्रतं शोधयित्वा दिनत्रयम् ।
कुर्वन्ति कारयन्ति च वैष्णवाः कृष्णसन्निभाः ॥ १४ ॥

भगवत्कृपा के बिना मुक्ति (भगवद्भावापत्तिः) नहीं मिलती, श्रीराधाकृष्णयुगल का अर्चन व्यतिरेक (स्वैतिह्यसंस्कार विधि) पूर्वक ही करना चाहिये । यह सज्जनों का कथन है ॥ ११ ॥

जबतक श्रीराधाकृष्णयुगलार्चन न हो तबतक सत्यांग हृद्-वाक् अविहिंसन नहीं हो सकता, तात्पर्य यह है कि स्वैतिह्य संस्कार विधि प्रमुख है, सर्व प्रथम इसे अपनाना चाहिये इसके बिना चाहे कैसा भी सत्कर्म हो उससे अभीष्ट फल प्राप्त होना कठिन है ॥ १२ ॥

एकादशी कृष्णमहोत्सव पाक्षिक वार्षिक भेद से दो प्रकार के होते है, जिन्हें सभी वैष्णव करते है ॥ १३ ॥

उनमें १०-११-१२ इन तीनों तिथियों का संशोधन करके

तथा स्कान्दे--

य एवं मुनिशार्दुल शोधयित्वा दिनत्रयम् ।
करोति कारयत्याशु जानीहि सोऽच्युतः स्वयम् ॥
अत एव विवेच्यन्ते दशम्यादिषु सन्धयः ॥ १५ ॥

विष्णुधर्मोत्तरे भगवांस्तथा—

दशम्यामसुरा जाता एकादश्यां सुरास्तथा ।
यत्तु जन्मदिनं यस्य तत्तस्यैवानुवर्द्धनम् ॥ १६ ॥
दशम्यामर्द्धरात्रं स्यादसुरोत्पत्तिकारणम् ।
अतो जन्मदिनं येषां विख्यातास्ते निशाचराः ॥ १७ ॥
दिवोद्भुताः सुराः सर्वे सौम्याःसत्त्वगुणान्विताः ।
अतस्तु दशमीवेध एकादश्यां निषिध्यते ॥ १८ ॥

वैष्णव भगवद्भक्त एकादशी व्रत करते कराते है ॥ १४ ॥

स्कन्दपुराण में कहा है—हे मुनि शार्दुल ? जो १०-११-१२ इन तीनों तिथियों का विचार करके जो एकादशी व्रत करता कराता है उसे स्वयं अच्युत समझना चाहिये, इसीलिये दशमी आदि में सन्धियों की विवेचना की जाती है ॥ १५ ॥

विष्णुधर्मोत्तर में भगवान् की ऐसी उक्ति मिलती है—दशमी में असुरों की और एकादशी में देवों की उत्पत्ति हुई है, जिसका जो जन्म दिन होता है उसकी उसी दिन अनुवृद्धि होती है ॥ १६ ॥

दशमी में भी अर्धरात्र का समय असुरों की उत्पत्ति का कारण है, अतः उस समय जिनकी अभिव्यक्ति हुई वे निशाचर नाम से विख्यात हुए ॥ १७ ॥

सौम्य सत्व गुण युक्त देवता एकादशी के दिन में हुए, इसीलिये एकादशी में दशमी का वेध निषिद्ध माना जाता है ॥ १८ ॥

तत्र च दशमीवेधश्चतुर्विधः सुनिश्चितः ।
गन्धः संगः शलो वेधो वेधा लोकेषु विश्रुताः ॥ १८ ॥
स्पर्शादौ चतुरो वेधान् वर्जयेद्वैष्णवो नरः ।
स्पर्शः पञ्चचत्वारिंशः संगः पञ्चाशता मतः ॥ २० ॥
पञ्चपञ्चाशता शल्यो वेधः षष्ट्यंशता मतः ।
स्पर्शे तु घटिका पञ्च पञ्चसंगे तथैव च ॥ २१ ॥
शल्ये पञ्च तथा वेधे पञ्च वेधश्चतुर्विधः ।
गन्धिनी संगीनी शल्या विद्धा चैकादशी तथा ॥ २२ ॥
चतुवर्गा सुरदात्री चतुर्धा वेधहेतुतः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं न कर्त्तव्या कदाचन ।। २३ ।।

गन्ध, संग, शल्य ओर वेध-इन भेदों से दशमी का वेध चार प्रकार का माना जाता है । जो लोक में भी विख्यात है ।। १९ ।।

वैष्णवों को चाहिये कि गन्ध (स्पर्श) आदि चारों वेधों को त्याग दे । दशमी यदि ४५ घटी से अधिक हो तो वह गन्ध एवं स्पर्श कहलाता है । ५० घंटी से अधिक हो तो, वह संग कहलाता है ।। २० ।।

दशमी ५५ घटी से अधिक हो तो शल्य और ६० घंटी या उससे कुछ अधिक हो तो वह वेध कहलाता है । ५-५ घटिकाओं के अन्तर से स्पर्श आदि चारों वेध माने गये हैं ।। २१ ।।

इन वेधों के कारण ही एकादशी की गन्धिनी, संगिनी, शल्या और विद्धा ये चार दूषित संज्ञायें हैं ।। २२ ।।

चारों वेधों से युक्त एकादशी धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों वर्गों को नष्ट कर देती है, यह ध्रूव सत्य है । अतः विद्धा एकादशी को उपवास कभी भी नहीं करना चाहिये ।। २३ ।।

गन्धिनी धर्महीना स्यादर्थहीना च संगिनी ।
कामविध्वंसिनी शल्या विद्धा मोक्षविनाशिनी ।। २४ ।।

एकादशी यदा पुत्र ! चतुर्वेधविवर्जिता ।
प्रकर्त्तव्या प्रयत्नेन चतुर्वर्गफलप्रदा ।। २५ ।।

सस्पर्शा कुलनाशाय ससंगा धर्मनाशिनी ।
सशल्या निष्फला प्रोक्ता सवेधा नरकं नयेत् ।। २६ ।।

एवं ज्ञात्वा चतुर्दोषा वर्जिता मत्परायणैः ।
मद्व्रतं वेधरहितं कृतं च कारितं मुने ।। २७ ।।

कलौ प्राप्ते मुनिश्रेष्ठ महावेधं चतुर्विधम् ।
साहंकारा न पश्यन्ति आसुरं भावमाश्रिताः ।। २८ ।।

गन्धिनी से धर्म नष्ट हो जाता है, संगिनी से अर्थ, शल्या से काम और विद्धा से मोक्ष विनष्ट हो जाता है ।। २४ ।।

स्कन्दपुराण में कहा है –हे पुत्र ! जब चारों वेधों से रहित एकादशी हो तब वह एकादशी चतुवर्ग फल प्रदान करती है ।। २५ ।।

स्पर्शयुक्त एकादशी कुल को नष्ट कर देती है, सङ्गयुक्त ११ धर्म को, शल्य युक्ता फल को नाश कर देती है और वेध युक्त एकादशी नरक में गिरा देती है ।। २६ ।।

हे मुने ! मेरे आश्रित जनों ने इस प्रकार जान करके चारों दोषों से वर्जित वेध रहित एकादशी का ही व्रत किया है और करवाया है ।। २७।।

कलियुग में आसुर भाव वाले अहंकारी जन महावेध का विचार नहीं करेंगे ।। २८ ।।

स्पर्शादिचतुरोदोषान् न पश्यन्ति नराधमाः।
अज्ञानतिमिरान्धास्ते शुक्रमायविमोहिताः ॥ २९ ॥
सवेधं तु दिनम्मूढा कुर्वन्ति कारयन्ति ये।
शुक्राचार्यकुलोद्भूता ज्ञेयास्ते मम वैरिणः ॥ ३० ॥
पाद्ये---
त्रिस्पृशा दशमीयुक्ता कार्या नैकादशी तिथिः।
हन्ति पुत्रांश्च गोत्रञ्च पुण्यं जन्मशतोद्भवम् ॥ ३१ ॥
तत्र पितामह—
दिनत्रये तु सम्प्राप्ते नोपोष्या दशमीयुता।
यदीच्छेत्पुत्रपोत्रांश्च ऋद्धिसम्पदमात्मनः ॥ ३२ ॥
कौर्मे —
दशमीशेषसंयुक्तां न कुर्वीत कदाचन।

अज्ञान तिमिर से अन्धे शुक्र की माया से विमोहित जो अधम नर होंगे वे इत चारों दोषों का विचार नहीं करेंगे ।। २९ ।।

जो मूर्ख विद्धा एकादशी के दिन व्रत करते कराते हैं उन्हें शुक्राचार्य कुल में उत्पन्न समझना चाहिये, वे मेरे शत्रु है ।। ३०।।

पद्मपुराण में कहा है कि त्रिस्पर्शामहाद्वादशी ११-१२-१३ के योग से शुभ फलप्रद हुआ करती है, दशमी एकादशी के योग वाली विद्धात्रिस्पर्शा तो पुत्र पौत्र और सैंकड़ों जन्मों के सञ्चित पुण्य को नष्ठ कर देती है ।। ३१ ।।

पद्मपुराण में ही पितामह ने कहा है—यदि पुत्र पौत्र और अपनी धन सम्पत्ति की वृद्धि चाहे तो दशमीयुक्त त्रिस्पर्शा का व्रत न करै ।। ३२ ।।

यही बात कूर्मपुराण में कही गई है—दशमीयुक्त त्रिस्पर्शा न करै। पद्मपुराण में भागीरथी ने दशमीयुक्त त्रिस्पर्शा वर्णन

पाद्मे भागीरथी—
त्रिस्पृशा सा भवेद्देव न वेद्मि वद मे प्रभो ! ॥ ३३ ॥
प्राचीमाधव उवाच—
आसुरी त्रिस्पृशा देवि या त्वया परिकीर्तिता ।
वर्जनीया प्रयत्नेन यथा नारी रजस्वला ॥ ३४ ॥
एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमी संगता नहि ॥ ३५ ॥
नारदीये—
दशम्यैकादशी विद्धा परतो द्वादशी न चेत् ।
द्वादशी तु तदोपोष्या त्रयोदश्यां तु पारणाम् ॥ ३६ ॥
पाद्मे पितामहः—
कस्मात्कृष्ण तवासाध्यो दानवेन्द्रो महाबलः ।

करके कहा है कि—हे प्रभो ! इसके अतिरिक्त किसी त्रिस्पर्श का मुझे ज्ञान नहीं, कृपा करके आप बतलाइये ॥ ३३ ॥

तब प्राची-माधव ने कहा—तुमने जो त्रिस्पर्शा बतलाई है हे देवि ! वह तो आसुरी त्रिस्पर्शा है । अतः वह रजस्वला स्त्री के समान त्याज्य है ॥ ३४ ॥

जिस दिन एकादशी में द्वादशी आ जाय और द्वादशी की रात्रि के अन्ततक त्रयोदशी का स्पर्श हो जाय वही त्रिस्पर्शा मानी जाती है । दशमी योग से त्रिस्पर्शा नहीं होती ॥ ३५ ॥

नारदीय पुराण में भी स्पष्ट किया है—जो एकादशी दशमी से विद्धा हो, द्वादशी से युक्त न हो तो एकादशी को व्रत न करे, द्वादशी के दिन व्रत करके त्रयोदशी को पारण करना चाहिये ॥ ३६ ॥

पद्मपुराण में भी पितामह ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा है--

भस्मतां याति हेमाक्षस्तव दृष्ट्याऽवलोकितः ॥ ३७ ॥
श्रीभगवानुवाच—
शुक्रेण मोहिता विप्रा दैत्यानां कारणेन तु।
पुष्ट्यर्थं दशमीविद्धं कुर्वन्ति हरिवासरम् ॥ ३८ ॥
वासरं दशमीविद्धं दैत्यानां पुष्टिवर्द्धनम्।
महीप ! नास्ति सन्देहः सत्यं सत्यं पितामह ॥ ३९ ॥
यावद्दशमीसंयुक्तं करिष्यन्ति दिनं मम।
तावद्रक्षांसि दैत्याश्च भविष्यन्ति बलाधिकाः ॥ ४० ॥
दशमीवेधसंयुक्तं ये कुर्वन्ति दिनं मम।
तत्फलं दैत्यजातीनां सुरैर्दत्तं पितामह ॥ ४१ ॥
तेन पुण्येन दुर्बाधो हिरण्याक्षो महासुरः।

हे प्रभो ! आपकी दृष्टि पड़ते ही जो भस्म हो सकता था वह हिरण्याक्ष दैत्य आप से पराजित क्यों नहीं हो रहा है ॥ ३७ ॥

भगवान् ने कहा—शुक्र की माया से मोहित बहुत से ब्राह्मण दैत्यों की पुष्टि के लिये आजकल दशमी-विद्धा एकादशी का व्रत कर रहे हैं ॥ ३८ ॥

हे पितामह! दशमीविद्धा एकादशी का व्रत ये निस्संदेह दैत्यों की पुष्टि करता है, यह पूर्ण सत्य है ॥ ३९ ॥

जब तक दशमीविद्धा एकादशी का व्रत करते रहेंगे, तबतक राक्षसों का बल बढता ही जायगा ॥ ४० ॥

क्योंकि दशमीविद्धा एकादशी व्रत का फल देवताओं द्वारा दैत्यों को दिया जा चुका है ॥ ४१ ॥

हे पितामह ! इसी कारण से महाअसुर हिरण्याक्ष दुर्बाध्य होगया है, युद्ध में इन्द्र को जीतकर उसने देवताओं के राज्य को

निर्जित्य वासवं संख्ये हृतं राज्यं दिवौकसाम् ॥ ४२ ॥
शुक्रेण मोहिताः सर्वे दैत्यानां विजयाय वै ।
श्रुतो विद्धं प्रकुर्वन्ति वासरं मम संज्ञकम् ॥ ४३ ॥
मार्कण्ड गच्छ भद्रं ते भूर्लोके हि ममाज्ञया ।
दशमीवेधविषये मायां शुक्रस्य नाशय ॥ ४४ ॥
उदरं स्पृश्य वै प्रोक्तं मया द्वादशिनिश्चयम् ।
पुरा एकार्णवे प्रोक्तं कथयस्व नृणां भुवि ॥ ४५ ॥
अरुणोदयकाले तु वेधं दृष्ट्वा चतुर्विधम् ।
तद्दिनं ये प्रकुर्वन्ति यावदाभूतनारकाः ॥ ४६ ॥
कृते तु मद्दिने विद्धे सन्तानस्य च संक्षयः ।
सप्तजन्मानि नश्यन्ति धर्मस्य च धनस्य च ॥ ४७ ॥

हड़प लिया है ॥ ४२ ॥

शुक्र माया मोहित जो दशमीविद्धा एकादशी का व्रत करते हैं उसी से दैत्यों का विजय होरहा है ॥ ४३ ॥

हे मार्कण्ड मेरी आज्ञा से तुम भूलोक में जाओ, वहां दशमी वेध के विषय में शुक्र की माया को निवारण करो ॥ ४४ ॥

पहले प्रलय में उदर को स्पर्श करके द्वादशी मिश्रित एकादशी व्रत करने का निश्चित विधान मैंने बतलाया था । यही बात तुम सब मनुष्यों से कहना ॥ ४५ ॥

चारों प्रकार में से कोईसा भी वेध अरुणोदय काल में हो और फिर उसी दिन जो एकादशी का व्रत करते हैं वे प्रलय पर्य्यन्त नरक में निवास करते हैं ॥ ४६ ॥

विद्धा एकादशी के दिन व्रत करने से सन्तान का क्षय होता है,और सात जन्मों तक धर्म और धन का क्षय होता है ॥ ४७ ॥

श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डो मुनिसत्तमः।
सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं यत्र यज्ञ पुमान्हरिः ॥ ४८ ॥
मार्कण्डवचनं श्रुत्वा मुनयो नैमिषालयः।
शुक्रमायाविनिर्मुक्ता विस्मयं परमं गताः ॥ ४९ ॥
उज्जयिन्यां समायाता नानादेशाद्द्विजोत्तमाः।
अवलोक्य पुराणानि दशमीवेधदूषिता ॥ ५० ॥
निषिद्धा द्वादशी लोके माया शुक्रस्य नाशिता।
निषिद्धं दशमीविद्धं पारणं तु चतुर्विधम् ॥ ५१ ॥
निषिद्धा हीनशल्याऽपि नन्दाया वृद्धिगामिनो।
इन्द्रद्युम्नाय कथितं महाभागवताय वै ॥ ५२ ॥

भगवान् के वचनों को सुनकर मुनिश्रेष्ट मार्कण्डेय नैमिषारण्य में पहुंचे जहां पर भगवान् यज्ञ पुरुष रूप में विराजमान थे ॥ ४८ ॥

नैमिषारण्य के मुनियों ने मार्कण्ड के वचनों को सुनकर बड़ा आश्चर्यमाना, वे शुक्र की माया से मुक्त हो गये ॥ ४ ॥

एकबार नाना देशों से आये हुए विचारशील ब्राह्मण इकट्ठे हुए, पुराणों को देखा और दशमीविद्धा एकादशी का निषेध किया। द्वादशी विद्धा एकादशी का समर्थन करके शुक्र की माया का खण्डन किया और चार प्रकार के पारणों का दिग् दर्शन कराया ॥ ५०–५१ ॥

महाभागवत इन्द्रद्युम्न से ऋषियों ने कहा कि वृद्धिगामिनी नन्दा (एकादशी) यदि वृद्धिगामिनी और हीन शल्या अर्थात् दशमी का स्पर्श मात्र भी हो तो उसे निषिद्ध समझें ॥ ५२ ॥

गत्वाऽऽश्रमेषु सर्वेषु कथिते वनवासिनाम् ।
हित्वा शुक्रस्य वाक्यानि मार्कण्डवचनाज्जनैः ॥ ५३ ॥
त्यक्ता दशमीसंयुक्ता विप्राद्यैः पुण्यकाङ्क्षिभिः ।
पूर्णविधकुठारेण द्वादशीपादपं नरः ।
छेदयन्ति च ये पापाः कल्पान्ते नारका हि ते ॥ ५४ ॥

सौरधर्मोत्तरेषु—

एकादशी सदोपोष्या द्वादशी वाऽथवा पुनः ।
विमिश्रा वाऽपि कर्त्तव्या न दशमीयुता क्वचित् ॥ ५५ ॥

दशमीशेषसंयुक्तां यः करोति सुमन्दधीः ।
एकादशीफलं तस्य न स्यात् द्वादशवार्षिकम् ॥ ५६ ॥

सभी आश्रमों में जा जाकर इसी प्रकार सभी वनवासियों को समझाया, तब मार्कण्डेय के वचनों से वे शुक्र माया से मुक्त हुए ॥ ५३ ॥

पुण्यकांक्षी ब्राह्मणों ने दशमीविद्धा एकादशी का त्याग किया, अतः जो मनुष्य पूर्णा (दशमी) के वेधरूपी कुठार से द्वादशीरूप कल्पवृक्ष का छेदन करते हैं वे कल्प पर्य्यन्त नरक में वास करते हैं ॥ ५४ ॥

सौर धर्मोत्तर में भी कहा है कि—एकादशी का व्रत सदा करे किन्तु वह द्वादशी मिश्रित होनी चाहिये, दशमी से संयुक्त नहीं ॥ ५५ ॥

ब्रह्मवैवर्त में भी ऐसा ही उल्लेख है—जो मूर्ख दशमी से युक्त एकादशी को व्रत करते हैं उन्हें बारह वर्ष तक भी एकादशी ब्रत का फल नहीं मिल सकता ॥ ५६ ॥

यैः कृता दशमीविद्धाऽविद्यामोहेन मानवैः ।
ते गता नरकं घोरं युगान्येकोनसप्ततिम् ॥ ५७ ॥

मार्कण्डेये मार्कण्डः—

एकादशीनिर्णये भूप मूढमत्र जगत्रयम् ।
अत्र मूढा महीपाल विद्वांसो ये नराः सुराः ॥
शुक्रप्रसारितया च माययाऽसुरकारणात् ॥ ५८ ॥

भविष्ये—

पूर्णाविद्धामुपोषेत नन्दां वेदबलादपि ।
को वेदवचनात्तात गां सवेगां निहन्ति वै ॥ ५९ ॥
दशमीशेषसंयुक्तामाश्रयेत्को व्रत व्रती ।
तस्मादेकादशी त्याज्या दशमीपलसंयुता ॥ ६० ॥

जिन्होंने अविद्या से मोहित होकर दशमी विद्धा एकादशी का व्रत किया उन्हें उन्हत्तर युगों तक घोर नरक भोगना पड़ेगा ॥ ५७ ॥

माकण्डेय पुराण में मार्कण्ड ने कहा है कि—हे महीराज़ ! शुक्र द्वारा प्रसारित माया से बड़े बड़े विद्वान् सुर-नर सभी एकादशी निर्णय के सम्बन्ध में मूढ़ होरहे हैं ॥ ५८ ॥

कदाचित् कोई वेद के वचनों के आधार से पूर्णा (दशमी) से विद्धा नन्दा (एकादशी) का व्रत करे तो वह भी ठीक नहीं, क्योंकि वेद के कहने से वेगवती गउ का भी कोई वध कर सकता है क्या ॥ ५९ ॥

अतः दशमी के शेषभाग युक्त एकादशी का व्रत कौन बुद्धिमान् करेगा ? क्योंकि एक पल भी दशमी का वेध त्याज्य है ॥ ६० ॥

उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ।
योऽन्यथा कुरुते मोहान्नाशनं प्राप्यतेऽशुभात् ।। ६१ ।।

स्कान्दे—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वविद्धां विवर्जयेत् ।
विद्धामेकादशीं मोहाद्दशमीवेधसंयुताम् ॥ ६२ ॥
विवदन्कारयन्कुर्वन् स्वधर्मविमुखो बलात् ।
न नरः सुखमाधत्ते इहलोके परत्र च ॥ ६३ ॥

स्मृतौ मैत्रेयो धृतराष्ट्रं प्रति—

यदर्थस्ते वियोगोऽभूत् पुत्राणां भार्यया सह ।
पूर्वं त्वया सभार्येण दशमीशेषसंयुता ॥ ६४ ॥
कृता चैकादशी राजंस्तस्येदं कर्मणः फलम् ।
तस्मादेकादशीयुक्ता दशम्या नरसत्तम ॥ ६५ ॥

इसलिये शुद्ध दादशी में ब्रत करके त्रयोदशी के दिन पारण कर सकता है । इससे विपरीत अर्थात् दशमी विद्धा एकादशी ब्रत करनेवाला पाप का भागी बनकर नष्ट हो जाता है ।।६१।।

यही आशय स्कन्द पुराण में व्यक्त हुआ है—किसी भी प्रकार से पूर्व विद्धा एकादशी का व्रत न करे, जो व्यक्ति मूर्खता या मोह के कारण करता है या कोई विवाद पूर्वक बल से करवावें तो वह स्वधर्म विमुख व्यक्ति न इस लोक में सुख पा सकता न परलोक में सुख पाता है ।। ६२–६३ ।।

मैत्रेय ने धृतराष्ट्र को बतलाया था कि—हे राजन् ! तुमने पहले कभी दशमी विद्धा एकादशी का व्रत किया है, इसी कारण तुम स्त्री और पुत्रों से वियुक्त हुए हो । इसलिये दशमी विद्धा एकादशी का ब्रत नहीं करना चाहिये । एकादशी के समान ही

न कर्त्तव्या प्रयत्नेन निष्फला द्वादशी यदि ।
यथा चैकादशी राजन् द्वादशी च तथा नृणाम् ॥
सम्पन्ना तत्फला प्रोक्ता व्रतेऽस्मिन् चक्रपाणिनः ॥ ६६ ॥

वाल्मीकिं प्रति सीताऽऽह—

न चाहं स्वैरिणी भार्या न चाहमपतिव्रता ।
न चेह कलुषं येन किम्पापं त्वन्यजन्मनि ॥ ६७ ॥
रामपत्न्या वचः श्रुत्वा वाल्मीकिः ऋषिपुंगवः ।
चिरं ध्यात्वा महाराज तामुवाचेदृशं वचः ॥ ६८ ॥
दशम्यैकादशींयुक्तां समुपोष्य जनार्दनः ।
अभ्यर्चितस्त्वया देवि तस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ६९ ॥
वशिष्ठस्तामुवाचेदं पृष्टो मान्धातृभार्यया ।

द्वादशी फल देती है, अतः एकादशी शुद्ध न मिले तो शुद्ध द्वादशी में भी व्रत कर सकते हैं ॥ ६४।६५।६६ ॥

सीता जी ने वाल्मीकि जी से पूछा—हे ऋषिराजन् मैं स्वच्छन्द नहीं हूँ, मैंने कोई भी पाप नहीं किया, अपितु पूर्णरूप से पतिव्रत धर्म का पालन किया है फिर मुझे इतना दुःख क्यों भोगना पड़ा ? क्या कोई पूर्व-जन्म में मैंने पाप किया था ॥६७॥

सीता जी के वचनों को सुनकर ऋषि श्रेष्ठ वाल्मीकि जी ने ध्यान लगाकर पता लगाया, और सीता जी को बतलाया ॥६८॥

हे देवि तुमने कोई पाप नहीं किया किन्तु दशमी विद्धा एकादशी व्रत करके तुमने भगवान् की अर्चा की उसी का यह परिणाम तुम्हें मिला है ॥ ६९ ॥

मान्धाता की रानी के पूछने पर वशिष्ठ जी ने भी यही बत-

दशम्यैकादशी देवी पुरा चोपोषिता त्वया ॥ ७० ॥
तेन ते कर्मणा चेह भर्तृभिःसुतबान्धवैः ।
वियोगः समनुप्राप्तः सत्यं विद्धि पतिव्रते ॥ ७१ ॥
यानि कानीह पापानि त्रैलोक्ये सम्भवन्ति हि ।
तेषां स्थानं दशम्यां वै सहितैकादशी मता ॥
सप्तजन्मकृतं पुण्यं नश्यते नात्र संशयः ॥ ७२ ॥
नारदः—
दशम्यनुगता यत्र तिथिरेकादशी भवेत् ।
तत्रापत्यविनाशः स्यात् परेत्य नरकं व्रजेत् ॥ ७३ ॥
दशम्या चैव विद्धायांमेकादश्यामुपोषितः ।
तस्यायुः क्षीयते नित्यं नारदोऽहं ब्रवीमिवः ॥
सन्ततिश्च विनश्यये सत्यं सत्यं न वान्यथा ॥ ७४ ॥

लाया था—पहले तुमने दशमी विद्धा एकादशी का व्रत किया था ॥ ७० ॥

उसी कारण से पति-पुत्र बन्धु-बान्धवों से तुम वियुक्त हुई हो । हे पतिव्रते ! मेरे इन वचनों को तुम सत्य मानो ॥ ७१ ॥

त्रिलोकी में जो कुछ पाप हैं वे सब दशमी में रहते हैं, अतः उससे युक्त एकादशी का व्रत भी मनुष्यों के सात जन्मों के पुण्य को नष्ट कर देता है इस में कोई सन्देह नहीं है ॥ ७२ ॥

नारद जी का कथन है—दशमी विद्धा एकादशी सन्तान का नाश करती है और उस दिन उपवास करने वाला मृत्यु के बाद नरक में जाता है ॥ ७३ ॥

मैं (नारद) सत्य कहता हूँ दशमी विद्धा एकादशी के दिन उपवास करने वाले की आयु क्षीण होती है और पुत्रपौत्रादि सन्तति का विनाश होजाता है ॥ ७४ ॥

विष्णु रहस्ये—

दशमीशेषसंयुक्तामुपोष्यैकादशी किल ।
संवत्सरकृतेनेह नरो धर्मेण मुच्यते ॥ ७५ ॥
दशमीशेषसंयुक्ता गान्धार्या समुपोषिता ।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

दशमीविद्धोपवासे प्रायश्चित्तनिरूपणात् ।
उपष्या द्वादशीकार्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥ ७७ ॥
क्षत्रैर्वैश्यैस्तथा शूद्रैः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥
गंगोदकस्य पूर्णस्य यथा त्याज्यं घटं भवेत् ॥ ७८ ॥
सुराबिन्दुसमायुक्तं तत्सर्वं मद्यतां ब्रजेत् ॥
हालाहलं विषं राद्धं कः पिवेन्मूढ़धीर्नरः ॥ ७९ ॥

विष्णु रहस्य में कहा गया है—दशमी विद्धा एकादशी को ब्रत करने वाला एक वर्ष में धर्महीन हो जाता है ॥ ७५ ॥

गान्धारी ने ऐसा (दशमी विद्धा एकादशी का) ब्रत किया तो उसके सौ पुत्र नष्ट होगये थे । इसलिये दशमी विद्धा एकादशी त्याज्य मानी गई है ॥ ७६ ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है—दशमी विद्धा एकादशी ब्रत करने वाले क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को चाहिये कि वह द्वादशी के दिन ब्रत रखें और त्रयोदशी को पारण करें तो उसका प्रायश्चित होजाता है। अधिक क्या सुनायें गङ्गाजल से भरा हुआ घड़ा एक बिन्दु मदिरा के पड़ने पर त्याज्य होजाता है ॥ ७७–७८ ॥

मदिरा की एक बिन्दु से घड़े का समस्त जल मदिरा के समान त्याज्य होजाता है तब ऐसा कौन मूर्ख है जो—हलाहल विष

दशमीशेषसंयुक्तां क उपोष्यति सद्व्रती ॥
एवं ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दशमीशेषसंयुता ।
वर्जिता मुनिभिः सर्वैर्वासुदेवमभिप्सुभिः ॥ ८० ॥
नारदीये—
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गंगाम्भ इव संत्यजेत् ।
श्वदता पञ्चगव्यञ्च दशम्या दूषितं व्रतम् ॥ ८२ ॥
स्कान्दे—
द्वापरान्ते तु गान्धारी कुरुवंशविवर्द्धिनी ।
करिष्यति च सेनानीर्मूढ़ भावाच्छिखिध्वजः ॥ ८२ ॥
तेन पुत्रशतं तस्या नाशमेष्यत्यसंशयः ।
अरुणोदयवेलायां विद्धा काचिदुपोषिता ॥ ८३ ॥

से सम्मिश्रित जल को भी पीयेगा ॥ ७६ ॥

इसी प्रकार दशमी युक्त एकादशी का व्रंत कौन करेगा। भगवत् प्राप्ति की इच्छावाले ऋषि-मुनियों ने इन सब बातों पर विचार करके ही दशमी विद्धा एकादशी का त्याग किया है ॥ ८० ॥

नारदीय पुराण का वचन है—मदिरा की बिन्दु से सम्मिश्रित गङ्गाजल और कुत्ते का बिगाड़ा हुआ पञ्चगव्य जिस प्रकार त्याज्य है उसी प्रकार दशमी से विद्धा एकादशी त्याज्य है ॥८१॥

स्कन्दपुराण में कहा है—द्वापर के अन्त में कुरुवंश को बढ़ाने वाली गान्धारी अज्ञतावश शिखीध्वज को सेनानी और दशमी विद्धा एकादशी का उपवास करेगी ॥ ८२ ॥

उसी से उसके सौ पुत्रों का नाश होगा। उसने अरुणोदय के समय दशमी से विद्धा किसी एकादशी को उपवास किया था ॥ ८३ ॥

तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥
ये कारयन्ति कुर्वन्ति द्वादशीं दशमीयुताम् ॥ ८४ ॥
शुद्धये तन्मुखं वीक्ष्य सूर्यदर्शनमाचरेत् ।
नमो नारायणायेति जपेद्धि द्वादशाक्षरम् ॥ ८५ ॥
व्यासः—
द्वादशी दशमीयुक्ता यत्र शास्त्रे प्रतिष्ठिता ।
नैतच्छास्त्रमहं मन्ये यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥ ८६ ॥
पाद्मे गौतमः—
वासरं वासुदेवस्य सवेधं कुर्वतो नरान् ।
निवारयेत भूपालः शास्त्रदृष्ट्या प्रयत्नतः ॥ ८७ ॥

गान्धारी के सौ पुत्र नष्ट होगये, इसलिये दशमी विद्धा एकादशी को व्रत न करे। जो दशमी विद्धा एकादशी का व्रत करते और कराते हैं–उनका मुख नहीं देखें ॥ ८४ ॥

कदाचित् उसका मुख दीख जाय तो उस पाप की शुद्धि के लिये सूर्य का दर्शन करके ॐ नमो नारायणाय अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये ॥ ८५ ॥

व्यास जी की घोषणा है––जिस शास्त्र या ग्रन्थ में दशमी युक्त एकादशी को व्रत रखने का विधान हो उसको सत्-शास्त्र नहीं मानना चाहिये। चाहे वह ब्रह्माजी का ही वाक्य क्यों न हो ॥ ८६ ॥

पद्मपुराण में गौतम जी का वचन है––हे भूपाल ? दशमी विद्धा एकादशी को व्रत करने वालों को प्रयत्न पूर्वक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा रोक देना चाहिये ॥ ८७ ॥

जिस राजा के राज्य में विद्धा विष्णुवासर (एकादशी) का

सवेधं वासरं विष्णोर्यस्मिन् राष्ट्रे प्रवर्तते ।
लिप्यते तेन पापेन राजा भवति नारकी ॥ ८८ ॥

वेधं चतुर्विधं त्यक्त्वा समुपोष्य हरेर्दिनं ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य नरकाद्व्रजते दिवम् ॥ ८९ ॥

अत्रेदं तत्त्वमाज्ञेयं सारग्राहकवैष्णवैः ।
वेधो यद्यपि जतुर्धा विंश दोषो निषिध्यते ॥ ९० ॥

चत्वारिंशद्घटिकाया दशम्याः परतो बुधैः ।
सर्वत्र सर्वथा सर्वैः स्वीक्रियते तथापि मे ॥ ॥ ९१ ॥

घटीचतुष्टये ह्याद्ये न तु वेधः कथञ्चन ।
अर्द्धरात्रावलम्बाय किञ्चित् कलिनिवृत्तये ॥ ९२ ॥

व्रत होता हो उसका पाप राजा को लगता है। उस पाप से राजा नरकगामी होजाता है ॥ ८८ ॥

फिर जब चारों प्रकार के वेधों से रहित शुद्ध एकादशी को उपवास करे तब उसका और उसके कुलवाले करोड़ों व्यक्तियों का नरक से उद्धार हो सकता है ॥ ८९ ॥

सारग्राही वैष्णवों को इस सम्बन्ध में यह तत्व जान लेना चाहिये-चारों प्रकार के वेधों में २० (बीस) दोष होते हैं,इसीलिये वह निषिद्ध माना जाता है ॥ ९० ॥

यद्यपि चालीस घड़ी दशमी हो तो दूसरे दिन सभी वैष्णव सब प्रकार से सर्वत्र एकादशी व्रत कर लेते हैं तथापि इस सम्बन्ध में हमें कुछ विचारणीय प्रतीत होता है ॥ ९१ ॥

अर्धरात्र के अवलम्बन एवं कलिदोष की निवृत्ति के लिये आदि की चार घड़ियों में कोई वेध नहीं माना जाता ॥ ९२ ॥

तद्वैष्णवमतान्तरार्कार्षितेन न चान्यथा ।
यत्तद्दोषचतुष्टयमकिञ्चित्करं मनाक् ॥ ९३ ॥
अथावशिष्टवैष्णव मतान्तरं समीयते ।
तत्रारुणोदयवेधमते निषेध उच्यते ॥ ९४ ॥

पाद्मे—

अरुणोदयवेलायां दशमी यदि संगता ।
अत्रोपोष्या द्वादशी स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥ ९५ ॥

भविष्ये—

अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते ।
साविद्धैकादशी तत्र पापमूलमुपोषणम् ॥ ९६ ॥
अरुणोदयवेलायां दशागंधो भवेद्यदि ।
दुष्टं तत्तु प्रयत्नेन वर्जनीयं नराधिप ॥ ९७ ॥

वे चार दोष अकिञ्चित कर हैं (विशेष हानिप्रद नहीं) यह अन्य वैष्णवों का मतान्तर है ।। ९३ ।।

अब अवशिष्ट वैष्णवमतों की समीक्षा की जाती है, उनमें अरुणोदय वेध निषिद्ध किया गया है ।। ९४ ।।

पद्मपुराण में कहा है—यदि एकादशी (११) के अरुणोदय समय दशमी हो तो द्वादशी के दिन एकादशी का व्रत और त्रयोदशी को पारण करे ।। ९५ ।।

भविष्य पुराण में कहा है–अरुणोदय के समय दशमी हो तो उस विद्धा एकादशी के दिन व्रत करने से पाप होता है ।। ९६ ।।

अरुणोदय के समय दशमी की गंध भी हो तो वह एकादशी को दूषित कर देती है ।। ९७ ।।

दशमीशेषसंयुक्तं यदि स्यादरुणोदये।
वैष्णवेन न कर्त्तव्यं तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥ ९८ ॥
गारुड़े—
दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥ ९९ ॥
स्कान्दे—
अरुणोदयवेलायां दशमी यदि दृश्यते।
पापमूलं सदा ज्ञेया एकादश्युपवासिनाम् ॥ १०० ॥
अर्द्धरात्रवेधमते निषेध वचनानि च ॥
स्मृतौ—
कर्त्तव्यं नैव वैष्णवैस्तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥ १०१ ॥
हयग्रीवः—
निशीथसमयं त्यक्त्वा दशमी स्यात्ततः परा।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥ १०२ ॥
कुमारा—
महानिशमतिहाय दशमी परगामिनी।

अरुणोदय के समय दशमी का पल-भर भी योग हो तो उस दिन वैष्णवों को व्रत नहीं करना चाहिये ॥ ९८ ॥

इसी आशय के ये वचन गरुड़ पुराण और स्कन्द पुराण के हैं ॥ ९९।१०० ॥

अब अर्धरात्र वेध के निषेद्धक वाक्य देखिये—स्मृति वचन—अर्धरात्र से ऊपर यदि दशमी हो तो उस दिन वैष्णव भक्त व्रत न करे ॥ १०१ ॥

यही आशय हयग्रीव वचन का है ॥ १०२ ॥

सनत्कुमारों ने कहा है कि अर्द्धरात्रि के पश्चात् यदि दशमी

तत्र व्रतं तु वैष्णवा न कुर्वन्त्यस्मदाश्रयाः ॥ १०३ ॥

नारदः—

निशामध्यंय परित्यज्य दशमी चेत्परंगता।
तत्र नोपवसेत्साधुर्वैष्णवपदवींगतः ॥
अत्र वैष्णवमतयोर्विवादोस्ति मिथः सताम् ॥ १०४ ॥

तथा ब्रह्मवैवर्ते--

अर्द्धरात्रे तु केषाञ्चिद्दशम्या वेध इष्यते।
अरुणोदयवेलायां नावकाशो विचारणे ॥ १०५ ॥
कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः।
नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामारात्रिरिष्यते ॥ १०६ ॥

हो तो उस दिन हमारे अनुयायी वैष्णव व्रत नहीं करते ॥१०३॥

श्रीनारदजी ने भी यही कहा है कि--अर्धरात्रि से ऊपर यदि दशमी हो तो वैष्णव साधुओं को व्रत नहीं करना चाहिये ॥ १०४ ॥

अब दो वैष्णवों के परस्पर विरोधी-मत दिखाते हैं— ब्रह्म वैवर्त पुराण में लिखा है—जिनके मत में अर्धरात्र वेध का निषेध है उनके मत में अरुणोदय वेध के विचार करने की आवश्यकता ही नहीं रहती ॥ १०५ ॥

जो भगवत्प्रिय आचार्य हैं वे कपाल वेध (अर्धरात्रि वेध) मानते हैं, यह मत हमारा न हो ऐसा नहीं समझना चाहिये अपितु हमारा भी यही मत है। क्योंकि रात्रि यद्यपि चार प्रहर की मानी जाती है तथापि रात्रि के प्रथम प्रहर का आधा भाग और अन्तिम प्रहर का आधा भाग पूर्व और पर दिन के अन्दर समझे जाते हैं, अवशिष्ट तीन प्रहर रात्रि मानना ठीक है ॥ १०६ ॥

इत्यरुणोदयवेधे तथार्द्धरात्रवेधके ।
मतद्वयेन चान्योऽन्यं विरुद्धं वदतां सताम् ॥ १०७ ॥
अग्रपश्चाद्विभेदेन ह्येकादशीव्रतद्वयम् ।
जायते तत्र सन्देहो जनानामुपवत्स्यताम् ॥ १०८ ॥
तत्र साक्ष्यं निरुप्यते पक्षपातो न कश्चन ।
आप्तैर्यत्स्थापितं कार्यं तद्वैष्णवमतद्वये ॥ १०९ ॥

तथा स्कान्दे हरि—

द्वयोर्विवदतोः श्रुत्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।
पारणं तु त्रयोदश्यामेष शास्त्रविनिश्चयः ॥ ११० ॥

मार्कण्डेये भगवान्—

विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम् ।

इस प्रकार अरुणोदय और अर्धरात्र इन दोनों वेधो में परस्पर विरोध मानते हैं ।। १०७ ।।

वेध के भेद से ही आगे पीछे दो दिन एकादशी का व्रत होता है । इससे उपबास करने वाले सज्जनों के चित्त में सन्देह होजाता है ।। १०८ ।।

उन दोनों वैष्णव मतों में पक्ष पात छोड़ कर उस साक्ष्य का निरूपण करना चाहिये जिस की आप्तपुरुषों ने संस्थापना की है, उसीके अनुसार दोनों वैष्णवमतों में व्रत करना चाहिये ।। १०९ ।।

स्कन्द पुराण में भगवान् का वचन है—दो व्यक्ति विवाद करैं तो द्वादशी को एकादशी का व्रत करके त्रयोदशी को पारण करना चाहिये । ऐसा शास्त्र का निर्णय है ।। ११० ।।

पारणं हि त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकी मुने ॥१११॥
अमत्वा त्वैश्वरीमाज्ञाँ निरयं यान्ति मानिनः ।
पाद्मे भीष्मं प्रति कृष्णो ह्यवन्त्याँ वचसा सताम् ॥११२॥
आज्ञाँ भागवतीं विप्रा हेतुं कृत्वा न लङ्घयेत् ।
लङ्घनाद्याति निरयं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥११३॥
वह्वागमविरोधेषु ब्राह्मणेषु विवादिषु ।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥११४॥
कुमाराः—
आज्ञेयमैश्वरी विप्रा यामृते न शिवं भवेत् ।
विवादेषु च सर्वेषु विहायैकादशीन्तदा ॥
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥११५॥

हे मुने ! त्रयोदशी को पारणा करने की मेरी आज्ञा है ।।१११।।

ईश्वर की आज्ञा न मानने वाले अभिमानी नरक में जाते हैं । भीष्मजी को भगवान श्रीकृष्ण ने उज्जैन में कहा था, ये सज्जनों के वचन हैं ।।११२।।

हे विप्रो ! भगवान की आज्ञा का किसी भी हेतु से उल्लंघन न करे। जो उल्लंघन करता है व चौदह इन्द्रों की अवधि तक नरक में गिरा रहता है ।।११३।।

शास्त्रीय वाक्य और ब्राह्मणों में जब कभी विरोध हो तो शुद्ध द्वादशी के दिन एकादशी का व्रत करके त्रयोदशी को पारणा करना चाहिये ।।११४।।

ऐसे ही कुमारों के वाक्य हैं—किसी प्रकार का विवाद हो तो द्वादशी को व्रत करके त्रयोदशी को पारणा करे, ऐसी भगवान् की आज्ञा है, इसके विपरीत करने में कल्याण नहीं है ।।११५।।

नारदीये नारदः—

बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥११६॥

पाद्मे—

उदयात्प्राक् त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशी यदा।
सन्दिग्धैकादशी वाऽथ वर्ज्येत धर्मकाङ्क्षिभिः ॥११७॥
पुत्रराज्यसमृद्धयर्थं द्वादश्यामुपवासयेत्।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥११८॥
सन्मतद्वयविवादे साक्षिणो हरिवल्लभाः।
निशार्द्धवेधनिषेधा ब्रह्मवैवर्त्तसूचिताः ॥११६॥
व्यक्तिगता इह कृष्णकुमारनारदादयः।
हरिश्च हरिप्रियाश्च कुमारनारदादयः ॥१२०॥

नारदीय पुराण में ऐसे ही वाक्य नारदजी के हैं—अनेक वाक्यों का जहां विरोध हो तो द्वादशी को व्रत और त्रयोदशी को पारणा करना ।।११६।।

पद्मपुराण में कहा गया है—उदय से पहले तीन घड़ी तक एकादशी व्याप्त न हो, अथवा एकादशी संदिग्ध हो तो धार्मिक उस दिन व्रत न करें ।।११७।।

पुत्र राज्य समृद्धि के लिये द्वादशी को व्रत करे और त्रयोदशी को पारणा करे तो सौ यज्ञों के समान फल मिलता है ।।११८।।

दो सन्मतों में विवाद होने पर हरि के प्रिय वैष्णवों की सम्मति लेना चाहिये। ब्रह्मवैवर्त में जो अर्धरात्र वेध के निषेध वाक्य मिलते हैं ।।११६।।

उन्हें व्यक्तिगत वाक्य समझने चाहियें। वास्तव में श्रीहंस सनक नारद आदि, हरि और हरिप्रिय सनत्कुमार और नारदादि

अर्द्धरात्रे दशावेधं कपालवेधसंज्ञिकम् ।
मन्यन्ते सर्वशास्त्राणामित्यभिप्राय ऊहितः ॥१२१॥
एवं वैष्णवमतयोः पक्षयोरुभयोरपि ।
नैव स्पृशेद्यथा वेध एकादशीं तथोच्चरेत् ॥१२२॥
नैतन्मम मतमिति व्यासेन यदपन्हुतम् ।
तन्नारदोपदेशादौ सद्धर्महार्द मोहतः ॥१२३॥
सद्धर्महार्द विज्ञाने हृदि सन्दग्धेरसम्भवात् ।
नारदहार्दविज्ञानात्तदुपदेशतः परम् ॥१२५॥
श्लाघितं मामकं मतं भाविष्योत्तरके तथा ।
सर्वाप्यौदयिकी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे ॥१२६॥

अर्धरात्रि में दशमी के वेध को कपालवेध की संज्ञा देते हैं, और उसे समस्त शास्त्रों का निष्कर्ष बतलाते हैं ॥१२०-१२१॥

इस प्रकार वैष्णवों के दोनों मतों में एकादशी बिद्धा न रहे ऐसी युक्ति बतलाई जाय ॥१२२॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण में जो व्यासजी की ऐसी उक्ति है कि यह मेरा मत नहीं है, वह अपन्हुति शक्ति, श्रीनारदजी के उपदेश आदि में सद्धर्म तत्व के मोह से समझी जाय ॥१२३॥

सद्धर्म मत का विज्ञान हो जाने पर हृदय में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं रहता है। श्रीनारदजी के अभिप्राय को समझ लेने पर एवं उनके उपदेश प्राप्त होने पर (व्यासजी ने) कहा है– ॥१२४-१२५॥

यह (कपालवेध) मत प्रशंसनीय है। यह भाव भविष्योत्तर में प्रकट किया है—व्रत के सम्बन्ध में, तिथि उदय व्यापिनी लेनी चाहिये ॥१२६॥

निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थप्रदायकः ।
पुराणस्मृतिवचनैः सम्यगर्थावभासकैः ।
विरोधं क्रियते हित्वा हरिवासरनिर्णयः ॥१२७॥

विष्णुधर्मोत्तरे कृष्णस्तथा—
द्वादश्यैकादशीयोगे विख्यातो हरिवासरः ।
एकादश्यन्तपादेन द्वादश्याः पूर्वमेव हि ।
हरिवासरमित्याहुर्भोजनं न समाचरेत् ॥१२८॥

कुमाराः—
पादमेकं चतुर्थं वा द्वादश्येकादशी मुने ।
क्रमाद्वदन्ति मुनयो हरिवासरनिर्णयम् ॥१२९॥

स्मृतौ नारदः—
द्वादश्येकादशी मिथः पूर्वोत्तरस्वपादतः ।
संगते क्रमतो ज्ञेयो हरिवासर निश्चयः ॥
एकादशी त्रिधा प्रोक्ता पूर्णा विद्धोभया तथा ॥१३०॥

जिनके भगवान निम्बार्क वांछित फल दाता हैं उनके मत में सम्यक् अर्थ अवभाषित करने वाले पुराण और स्मृतियों के वचन में विरोध का परिहार करके हरिवासर का निर्णय किया जाता है ॥१२७॥

विष्णुधर्मोत्तर में भगवान श्रीकृष्ण के ये वाक्य हैं— द्वादशी और एकादशी के योग होने पर एकादशी का अन्तिम और द्वादशी का आरम्भिक भाग हरिवासर कहलाता है—उस समय भोजन नहीं करना चाहिये ॥१२८॥

इसी आशय का वाक्य सनत्कुमारों का है ॥१२९॥

स्मृति में नारदजी ने भी कहा है--द्वादशी और एकादशी का क्रमशः पूर्व और उत्तरपाद मिल जाय उसे हरिवासर

तत्र सम्पूर्णा स्कान्दे—

प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादुदयाद्रवेः ।
सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासर वर्जिताः ॥१३१॥

सम्पूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ।
साशुद्धैव द्विधा प्रोक्ता साधिक्यातद्विनापरा ॥१३२॥

एकादश्याश्च द्वादश्या उभयोस्त्रिविधं तु तत् ।
त्रिविधेऽपि तदाधिक्ये शुद्धां पूर्णां विहायताम् ।
एकादशीं विदधीत द्वादश्यां समुपोषणम् ॥१३३॥

तत्रैकादश्याधिक्ये नारदः—

सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादशी वृद्धिगामिनी ।
द्वादश्यां लङ्घनं कार्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१३४॥

कहते हैं। एकादशी तीन प्रकार की होती हैं–एक पूर्णा दूसरी विद्धा और तीसरी उभयात्मिका ॥१३०॥

स्कन्दपुराण में सम्पूर्णा के लक्षण इस प्रकार हैं—हरिवासर को छोड़कर प्रतिपदा आदि सभी तिथियां सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक हों तो वे सम्पूर्णा कहलाती हैं ॥१३१॥

गृहस्थी को सम्पूर्णा एकादशी में ही व्रत करना चाहिये। वह शुद्ध एकादशी साधिक्या अनसाधिक्या भेद से दो प्रकार की होती है। उन दोनों के भी एकादशी और द्वादशी के आधिक्य से तीन भेद हो जाते हैं। तीनों प्रकार के आधिक्यों में भी द्वादशी का व्रत श्रेष्ठ है ॥१३२-१३३॥

एकादशी आधिक्य का उदाहरण नारदजी ने इस प्रकार बतलाया है—जब एकादशी सम्पूर्ण हो और द्वादशी बढ़ जाय तो द्वादशी को व्रत करके त्रयोदशी तिथि में पारणा करें ॥१३४॥

स्मृतौ—

एकादशी यदापूर्णा परतः पुनरेव सा।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१३५॥

भविष्ये द्वादश्याधिक्ये व्यासः—

एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत्।
उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥१३६॥

मार्कण्डेये—

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१३७॥

भविष्ये—

एकादशी अहोरात्रं द्वादशी च कलाधिका।
त्रयोदश्यां तदा प्रातरुपोष्या द्वादशी तदा ॥१३८॥

स्मृति का भी ऐसा ही आदेश है—जब एकादशी पूर्ण हो और फिर सूर्योदय के पश्चात् भी वही हो तो उस दिन व्रत करने वाले को सैकड़ों यज्ञों के समान फल मिलता है ॥१३५॥

द्वादशी आधिक्य का उदाहरण भविष्यपुराण में व्यास वाक्यों द्वारा दिया गया है—जब एकादशी लुप्त हो जाय और उसके पश्चात् दूसरे दिन द्वादशी हो तो परमगति चाहने वाले भक्त को द्वादशी में ही व्रत करना चाहिये ॥१३६॥

मार्कण्डेयपुराण में कहा गया है—जब एकादशी सम्पूर्ण हो फिर प्रभात काल में भी एकादशी ही हो तो उस दिन व्रत करने से सैकड़ों यज्ञों का फल होता है। पारणा फिर त्रयोदशी को करना चाहिये ॥१३७॥

भविष्यपुराण में लिखा है—दिन-रात एकादशी हो और द्वादशी भी इतनी अधिक हो जो त्रयोदशी के प्रातःकाल तक

स्कान्दे—

एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी दिनम् ।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ॥१३९॥

तन्त्रे कुमाराः—

सम्पूर्णैकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि ।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥
न भवे वसते जन्तुरित्याह भगवान् हरिः ॥१४०॥

उभयाधिक्ये भृगुः—

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।
सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि ॥१४१॥

रहे, ऐसी स्थिति में भी द्वादशी के दिन व्रत करके त्रयोदशी के दिन पारणा करना चाहिये ।।१३८।।

स्कन्दपुराण में कहा है—एकादशी यदि पूर्ण हो और आगे द्वादशी हो तो एकादशी छोड़कर द्वादशी में व्रत करना चाहिये ।।१३९।।

तन्त्र में सनत्कुमारों के भी ऐसे ही वचन हैं—सम्पूर्ण एकादशी के पश्चात् द्वादशी हो तो शुद्ध द्वादशी में व्रत करके त्रयोदशी में पारणा करने वाला संसार से मुक्त हो जाता है, ऐसी भगवान की उक्ति है ।।१४०।।

उभयाधिक्य के सम्बन्ध में भृगु के वाक्य हैं—सम्पूर्णा एकादशी हो फिर प्रभातकाल में भी वही हो और पश्चात् द्वादशी आजाय तो उसी (द्वादशी) में व्रत करें ।।१४१।।

विद्धा स्कान्दे—

एकादशी यदा विद्धा परतोऽपि न वर्द्धते।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१४२॥
उद्‌र्ध्वं हरिदिनं न स्याद्‌द्वादशीं ग्राहयेत्ततः।
द्वादश्यामुपवासोऽत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१४३॥

उभया भाविष्ये—

आदित्योदयवेलायाः प्राङ् मुहूर्त्तत्रयान्विता।
एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धा च परिकीर्त्तिता ॥१४४॥
पूर्णां विद्धामुपोष्येत नंदां वेदबलादपि।
को वेदवचनात्तात गोसवे गां निहन्ति वै ॥१४५॥

पाद्मे—

आदित्योदयवेलाया समारभ्याऽष्ट नाडिकाः।
सम्पूर्णैकादशी नाम त्याज्या धर्मफलेप्सुभिः ॥१४६॥

विद्धा के सम्बन्ध में स्कन्दपुराण में कहा है—जब एकादशी विद्धा हो और दूसरे दिन न बढै तो द्वादशी में व्रत करके त्रयोदशी में पारणा करें ।।१४२।।

इसी भाव का अग्रिम श्लोक है ।।१४३।।

उभयाधिक्य सम्बन्धी भविष्यपुराण की उक्ति है—सूर्योदय से पूर्व तीन मुहुर्त (घडी) तक दशमी हो तो वह एकादशी सम्पूर्णा और विद्धा कहलाती है ।।१४४।।

कदाचित् कोई शास्त्रीय वाक्य भी मिले तब भी दशमी विद्धा एकादशी का व्रत नहीं करे, क्योंकि वेदवाक्य बल पर भी गोसव में क्या कोई गोवध कर सकता है ।।१४५।।

पद्मपुराण में कहा है—सूर्योदय से लेकर (द्वादशी को) आठ घडी तक एकादशी हो तो (पूर्व दिन वाली एकादशी)

विद्धा चेत्यत्र शेषः ॥

यच्च मार्कण्डेये मतान्तरमुपन्यस्तम्—

सम्पूर्णैकादशी यत्र परतः पुनरेव सा ।
पूर्वामुपवसेत्कामी निःकामा तु परा भवेत् ॥१४७॥

निःकामस्तु गृही कुर्यादुत्तरैकादशीं सदा ।
प्रातर्भवतु वामा वा द्वादशी तु द्विजोत्तमेति ॥१४८॥

तत्तु वैष्णवाविषयं बहुवाक्यविरोधतः ॥

तथा कुमाराः—

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रातरेव पुनश्च सा ।
पूर्वां त्यक्त्वोत्तरां कुर्यात्काम्यकामश्च वैष्णवः ॥१४९॥

सम्पूर्णा एवं विद्धा मानी जाती है, धार्मिकों द्वारा वह त्याज्य है ॥१४६॥

मार्कण्डेयपुराण में जो मतान्तर की बात कही है—जब एकादशी सम्पूर्णा हो और दूसरे दिन द्वादशी में भी वह कुछ रहे तो सकामी को पूर्वदिन और निष्काम उपासकोंको दूसरे दिन व्रत करना चाहिये ॥१४७॥

गृहस्थ भी यदि निष्काम हो तो उत्तर दिन वाली एकादशी के दिन व्रत करे, हे द्विजोत्तम उस व्रत के दिन प्रातः द्वादशी का मेल हो या मत हो । इस प्रकार के वाक्य अवैष्णव विषयक समझने चाहिये ॥१४८॥

इस आशय का स्पष्टीकरण सनत्कुमारों ने किया है—एकादशी सम्पूर्ण हो और दूसरे दिन भी वह हो तो चाहे निष्काम भाव वाला हो चाहे सकाम, वैष्णव को पूर्व दिन को त्यागकर दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये ॥१४९॥

वैष्णवलक्षणं स्कान्दे—
परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।
नैकादशीं त्यजेद्यस्तु तस्य दीक्षास्तिवैष्णवी ॥१५०॥
विष्णुरहस्ये—
परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।
सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ॥१५१॥
येन स वैष्णव इत्यर्थः ॥
एकादशीदिनक्षयेऽप्युपवासो निषिध्यते ॥
दिनक्षयलक्षणं कौर्मे—
द्वितिथ्यं तावेकवारे यस्मिन्स स्याद्दिनक्षयः ।
दिनक्षये तु सम्प्राप्ते उपोष्या द्वादशी भवेत् ॥१५२॥
पाद्मे—
एकादशीदिनक्षये ह्युपवासं करोति यः ।
तस्य पुत्रा विनश्यन्ति मद्यायां पिण्डदो यथा ॥१५३॥

स्कन्दपुराण में वैष्णवों के लक्षण—चाहे कैसा भी हर्ष हो या विपत्ति हो जो एकादशी के व्रत को न छोड़े वही वैष्णव कहलाता है ॥१५०॥

यही भाव विष्णु रहस्य का है—चाहे कैसी भी आपत्ति हो मृतकसूतक में भी द्वादशी व्रत को न छोड़े वही वैष्णव है ॥१५१॥

एकादशी का दिन क्षय हो तो उस दिन उपवास निषिद्ध है–दिन क्षय के लक्षण कूर्मपुराण में इस प्रकार हैं—एक ही बार में दो तिथियां हो जायें तो वह क्षय दिन कहलाता है। एकादशी का दिन क्षय होने पर द्वादशी के दिन ही व्रत करना चाहिये ॥१५२॥

पद्मपुराण में भी यही बात कही गई है—जिस प्रकार

व्यासः—

एकादशीदिने क्षीणे उपवसेत्तु चेद्गृही।
अन्नाभावे निरुद्धो वा संकल्पाद्विशेषतः ॥१५४॥
धर्महानिश्च भवति सन्ततिर्नश्यति ध्रुवम्।
तस्यायुः क्षीयते नित्यं संवत्सरमिति श्रुतिः ॥१५५॥

गोभिलः—

एकादश्यां यदा ब्रह्मन् दिनक्षये तिथिर्भवेत्।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्।
तत्र क्रतुशतंपुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१५६॥

पाद्मे कृष्णः—

मद्दिनक्षय उपोष्य यावदाहूत नारकी ॥१५७॥

मघा में पिण्डदान करने से पुत्रों का विनाश होता है उसी प्रकार एकादशी के क्षय दिन में व्रत रखने से पुत्र नष्ट हो जाते हैं ॥१५३॥

व्यासजी के ऐसे ही वचन हैं—संकल्प करके अथवा अन्न के अभाव से जो गृहस्थ क्षीण एकादशी के दिवस व्रत करता है, उसके धर्म का ह्रास हो जाता है आयु क्षीण हो जाती है और सन्तान नष्ट हो जाती है ॥१५५॥

गोभिल की भी ऐसी ही उक्ति है—हे ब्रह्मन् ! जिस दिन में एकादशी तिथिका क्षय हो तो उस एकादशी को व्रत न करके द्वादशी में व्रत करके त्रयोदशी को पारणा करे तो सैकड़ों यज्ञों के समान फल प्राप्त होता है ॥१५६॥

पद्मपुराण में श्रीकृष्ण ने यही कहा है—क्षय दिन वाली एकादशी को व्रत करने वाला प्रलय पर्यन्त नर्क भोगता है ॥१५७॥

नारदीये कृष्णः—

क्षये वा यदि वृद्धौ सम्प्राप्ते वा दिनक्षये।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१५८॥
अथ तु महाद्वादश्योह्यष्टौ तन्नित्यता तथा।

पाद्मे—

न करिष्यन्ति ये लोके द्वादश्योष्टौ ममाज्ञया।
तेषां यमपुरे वासो शावदाभूतसम्प्लवम् ॥१५९॥

ब्रह्मवैवर्त्ते तन्नामानि—

उन्मीलिनी वञ्जुलिनी त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धिनी।
जया च विजया चैव जयंती पापनाशिनी।
द्वादश्यष्टौ महापुण्याः सर्वपापहरा द्विज ॥१६०॥

नारदीयपुराण में भी भगवान श्रीकृष्ण के ऐसे ही वचन हैं। क्षय या वृद्धि वाले मास में यदि एकादशी का क्षय हो तो शुद्ध द्वादशी को व्रत करके त्रयोदशी को पारणा करे। अब आठ महाद्वादशियों और उनकी नित्यता के सम्बन्ध में प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं ।।१५८।।

पद्मपुराण में कहा गया है—जो मेरी आज्ञा (स्मृति वचनों) के अनुसार आठों महाद्वादशियों को उपवास नहीं करते हैं वे प्रलय पर्यन्त नरक भोगते हैं ।।१५९।।

ब्रह्मवैवर्त में उन महाद्वादशियों के ये नाम दिये गये हैं—उन्मीलनी, वञ्जुलिनी, त्रिस्पृशा पक्ष वर्धिनी, जया विजया जयन्ती और पाप नाशिनी ये आठों महाद्वादशी पुण्यवर्द्धिनी एवं सर्व पापहारिणी हैं ।।१६०।।

उन्मीलिनीलक्षणं पाद्मे—

एकादशी तु सम्पूर्णा वर्द्धते पुनरेव सा।
द्वादशी च न वर्द्धेत कथितोन्मीलिनीति सा ॥१६१॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

एकादशी तु सम्पूर्णा वर्द्धते पुनरेव सा।
उन्मीलिनी भृगुश्रेष्ठ कथिता पापनाशिनी ॥१६२॥

पापानांन्नशकत्वेनोन्मीलिनीति निरुप्यते ।
दशमीवेधराहित्येनैकादशी प्रदैधते ॥१६३॥

न द्वादशी तु विदिता सोन्मीलिनी भवेत्तदा।
शुद्धाऽप्येकादशी त्याज्या द्वादश्यां समुपोषणम् ॥१६४॥

स्मृतौ तथा—

एकादशी यदा पूर्णा परतः पुनरेव सा।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१६५॥

पद्मपुराण में उन्मीलिनी के लक्षण इस प्रकार मिलते हैं—एकादशी पूर्ण होकर बढ़ जाय अर्थात् ६० घटिका से अधिक हो उसके पश्चात् भाविनी द्वादशी उन्मीलनी महाद्वादशी कहलाती है ।।१६१।।

ऐसे ही लक्षण ब्रह्मवैवर्त में मिलते हैं। पापों को नष्ट कर देने के कारण भी इसे उन्मीलनी कहते हैं। दशमी का वेध न भी हो और एकादशी बढ़ जाय द्वादशी न बढ़े तो यह द्वादशी उन्मीलनी कहलाती है। ऐसा योग होने पर शुद्ध एकादशी को भी छोड़कर द्वादशी के दिन ही व्रत करना चाहिये ।।१६२-१६३ १६४।।

स्मृति के भी ऐसे ही वचन हैं ।।१६५।।

नारदीये—

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
अत्रोपोष्या द्वितीया तु पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥१६६॥

विष्णुरहस्ये—

एकादशीकलामात्रा येन द्वादश्युपोषिता।
तुल्यं क्रतुशतेन स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१६७॥

भविष्ये व्यासः—

सर्वाऽप्यौदयिकी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थ प्रदायकः ॥१६८॥

ओदयिकीः—द्वादश्याद्यु दयस्पर्शिनीत्यनुसन्धेयम्,
ऐतिह्य मतार्थोपयोगित्वादस्यानुसन्धानस्य।

नारदीयपुराण में कहा गया है—एकादशी पूर्ण ६० घटिका वाली हो, फिर दूसरे दिन भी प्रभातकाल में यही हो तो दूसरे दिन वाली एकादशी व्रत करना चाहिये। उससे पुत्र पौत्रों की वृद्धि होती है ॥१६६॥

विष्णुरहस्य का भी यही अभिप्राय है—यदि द्वादशी को एक कला भी एकादशी हो तो उसी द्वादशी में एकादशी का व्रत करके यत्रोदशी को पारणा करना चाहिये, उससे सौ यज्ञों के समान फल मिलता है ॥१६७॥

भविष्यपुराण में व्यासजी के वचन हैं—जिस सम्प्रदाय में श्रीनिम्बार्क भगवान वांछित अर्थ देने वाले हैं उन्हें उपवास में सभी तिथियां औदयिकी लेनी चाहिये ॥१६८॥

ब्राह्मे—

द्वादश्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥१६६॥

अथ वञ्जुलीलक्षणं पाद्मे—

सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादशी च तथा भवेत्।
त्रयोदश्यां मुहूर्त्तोद्‌र्ध्वं वञ्जुली सा हरिप्रिया ॥१७०॥

शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे यदा भवति वञ्जुली।
एकादशीदिने भुक्त्वा द्वादश्यां कारयेद्व्रतम्।
पारणं द्वादशीमध्ये त्रयोदश्यां न कारयेत् ॥१७१॥

यहां औदयिकी शब्द का तात्पर्य है–द्वादशी आदि तिथियों के उदय के समय एकादशी आदि तिथियों का स्पर्श होना चाहिये। यह अनुसन्धान साम्प्रदायिक ऐतिह्य परम्परा के अनुरूप है।

ब्राह्मपुराण में भी लिखा है—जहां द्वादशी और एकादशी का सम्मिलन हो वहां भगवान सन्निहित रहते हैं। उस द्वादशी में व्रत करने से सैकड़ों यज्ञों के समान पुण्य फल मिलता है ॥१६६॥

वंजुलिनी महाद्वादशी के लक्षण—जब एकादशी भी पूर्ण हो और द्वादशी भी पूर्ण होकर त्रयोदशी के दिन आधे मुहूर्त भी रहे तो वह द्वादशी वञ्जुलिनी कहलाती है, वह भगवान् को विशेष प्रिय है ॥१७०॥

शुक्लपक्ष हो चाहे कृष्णपक्ष, जब वञ्जुली महाद्वादशी का योग मिले तब एकादशी को चाहे भोजन करले किन्तु द्वादशी को उपवास अवश्य करे। वञ्जुली के व्रत में पारणा भी द्वादशी तिथि में ही हो जाता है ॥१७१॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

द्वादश्येव विवर्द्धेत न चैवैकादशी यदा।
वञ्जुलीति भृगुश्रेष्ठ कथिता पापनाशिनी।
द्वादशीमात्रवृद्धौहि वञ्जुली परिकीर्त्तिता ॥१७२॥

अथ त्रिस्पृशालक्षणं, तथा नारद:—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।
त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१७३॥

पाद्मे प्राचीमाधवः—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।
त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमीसंगता न हि ॥१७४॥

स्मृतौ—

अरुणोदय आद्यास्याद्द्वादशी सकलं दिनम्।
अन्ते त्रयोदशी प्रातस्त्रिस्पृशा सा हरिप्रिया ॥१७५॥

ब्रह्मवैवर्त में संक्षिप्त रूप से वञ्जुली के लक्षण ऐसा ही बतलाया है—हे भृगुश्रेष्ठ! एकादशी की वृद्धि न हो, द्वादशी की ही वृद्धि हो तब वह पापों को नष्ट करने वाली वञ्जुली महाद्वादशी कहलाती है ॥१७२॥

त्रिस्पृशा के लक्षण—एकादशी द्वादशी और रात्रि के शेष भाग में त्रयोदशी का मेल होने पर वह द्वादशी त्रिस्पृशा कहलाती है—उस दिन व्रत करने से ब्रह्महत्या का पाप भी नष्ट हो जाता है ॥१७३॥

पद्मपुराण में प्राची माधव के वचनों का भी ऐसा ही भाव है ॥१७४॥

स्मृतियों में ऐसा स्पष्टीकरण मिलता है—अरुणोदय के समय एकादशी का सम्पर्क रहे फिर समस्त दिन भर द्वादशी

भविष्ये—

एकादशी कलाऽप्येका द्वादशी सकलं दिनम् ।
त्रयोदशी उषःकाले वैष्णवं तद्दिनत्रयम् ॥
सर्वपापहरं प्रोक्तं तदुपोष्यमिति स्मृतिः ॥१७६॥
एकादशी-द्वादशी-त्रयोदशीयोगे त्रिस्पृशेत्यर्थः ॥

अथ पक्षवर्द्धिनीलक्षणं पाद्मे—

अमा वा यदि वा पूर्णा सम्पूर्णा दृश्यते यदा ।
भूत्वा तु षष्टि घटिका दृश्यते प्रतिपद्दिने ॥१७७॥
अश्वमेधायुतैस्तुल्या सा भवेत्पक्षवर्द्धिनी ।
महती सा समाख्याता द्वादशी पक्षवर्द्धिनी ॥१७८॥
भुक्त्वा चैकादशीं विद्वान्द्वादश्यां समुपोषयेत् ।
विशल्यापि न कर्त्तव्या पक्षवर्द्धिनी यदा भवेत् ॥१७९॥

रहे और अन्त में प्रातःकाल त्रयोदशी लग जाय तो वह भगवान की प्यारी त्रिस्पृशा महाद्वादशी कहलाती है ।।१७५।।

ऐसी ही उक्ति भविष्यपुराण की है। सारांश यही है एकादशी द्वादशी और त्रयोदशी इन तीनों तिथियों का योग हो जाने से त्रिस्पशा महाद्वादशी कहलाती है ।।१७६।।

पक्षवर्द्धिनी महाद्वादशी के लक्षण पद्मपुराण में इस प्रकार बतलाये हैं—अमावस्या अथवा पूर्णिमा ६० घडी से अधिक हों प्रतिपदा के दिन भी इनका कुछ अंश रहे तो वह द्वादशी पक्ष-वर्द्धिनी महाद्वादशी कहलातो है, उस दिन उपवास करने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त होता है ।।१७७-१७८।।

दो दिन तक किसी से उपवास न हो सके तो शुद्ध एका-दशी को चाहे भोजन कर लेवे किन्तु पक्षवर्द्धिनी महाद्वादशी का व्रत अवश्य करे ।।१७९।।

पक्षवृद्धौ विशेषेण सन्देहे समुपस्थिते।
समाख्याय प्रकर्त्तव्या वल्लभा पक्षवर्द्धिनी ॥१८०॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

कुहूराके यदा वृद्धि प्रयाते पक्षवर्द्धिनी।
विहायैकादशीं तत्र द्वादशीं समुपोषयेत् ॥१८१॥

पाद्मे कृष्णः—

विशल्या सा न कर्त्तव्या पक्षवृद्धिर्भवेद्यदि।
एकादशीं परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत् ॥१८२॥

अमा वा पूर्णा वा षष्टिघटिका भूत्वा कियन्मात्र वर्द्धेत सा पक्षवर्द्धिनीत्यर्थः।

अत्रायमभिसन्धिः—

यद्यपि दशमीवेधो नास्ति तथापि पक्षवेधस्य विद्यमानत्वादेकादशी त्याज्या यद्वा वाचनिकव्यवस्थया न युक्त्यपेक्षा।

पक्षवृद्धि में कदाचित् किसी प्रकार का संदेह भी हो तब भी द्वादशी में ही उपवास करना चाहिये।।१८०।।

ब्रह्मवैवर्त्त में भी पद्मपुराण के समान ही पक्षवर्द्धिनी का विधान है।।१८१।।

पद्मपुराण में भगवान् श्रीकृष्ण के वाक्य भी ऐसे ही हैं– उनका सारांश यही है—जब अमावस्या अथवा पूर्णिमा ६० घडी से अधिक कुछ बढ़ जायें तो उस पक्ष की द्वादशी पक्षवर्द्धिनी महाद्वादशी कहलाती है। यद्यपि एकादशी दशमी विद्धा नहीं है तथापि उसमें पक्षवेध आजाता है, इसलिये शुद्ध एकादशी को भी छोड़कर पक्षवर्द्धिनी महाद्वादशी के व्रत करने की व्यवस्था की गई है।।१८२।।

अथ जया-विजया जयन्ती-पापनाशिनी लक्षणम्—

पुनर्वसुयोगे जया श्रवणयोगे विजया।
रोहिणीयोगे जयन्ती पुष्ययोगे पापनाशिनी॥

तथा ब्राह्मे—

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी।
सर्वपापहरा ह्येताः कर्त्तव्याः फलकाङ्क्षिभिः ॥१८३॥

द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्वसु।
नाम्ना सा तु जया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥१८४॥

यदा तु शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणं भवेत्।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥१८५॥

यदा च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते।
जयन्तीनाम सा ज्ञेया सर्वपापहरा तिथिः ॥१८६॥

यदा च शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित्।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ॥१८७॥

जया-विजया जयन्ती और पापनाशिनी ये चार महाद्वादशी नक्षत्रों के योग से होती हैं—जैसे द्वादशी को पुनर्वसु नक्षत्र हो तो वह जया महाद्वादशी, श्रवण का योग होने पर विजया, रोहणी से जयन्ती, और पुष्य नक्षत्रयुक्त हो तो वह पापनाशिनी महाद्वादशी कहलाती है। ब्रह्मपुराण में इन सबके लक्षण इसी प्रकार दिये हैं—ये चारों महाद्वादशी समस्त पापों को नष्ट कर देती हैं। अतः इनमें उपवास करना चाहिये ॥१८३॥

शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन पुनर्वसु हो तो वह जया महाद्वादशी, श्रवण के योग से विजया, प्राजापत्य (रोहिणी) के योग से जयन्ती और पुष्य के योग से पापनाशिनी महाद्वादशी

दृष्ट्वा चैकादशीं स्वीयान् द्वादशीं सम्प्रदायिनः ।
वैष्णवान् गुरुमार्गस्थान् प्रकुर्यात्तद्विधानतः ॥१८८॥

तथा कृष्णः—

महापुण्यतमा ह्येषा द्वादशीफलतोऽधिका ।
शोधयित्वा सदा कार्या सम्यग्दैवज्ञसत्तमैः ॥१८९॥

सम्पृष्ट्वा निज वैष्णवान्विष्णुशास्त्रविशारदान् ।
चीर्णव्रतान् सदाचारान् द्वादशीं समुपोषयेत् ॥
अथैतासां च नित्यता माहात्म्येन निगम्यते ॥१९०॥

पाद्मे अम्बरीष उवाच—

व्रतं कथयसे विप्र वैष्णवं सर्वकामदम् ।
यत्कृत्वा न पुनः कृत्यं भवति ऋषिसत्तमः ॥
पुनर्गतिर्यथा विप्र विष्णुलोकाद्भवेन्नहि ॥१९१॥

कहलाती है। ये सब पुण्य बढ़ाती हैं। वैष्णवों को चाहिये कि इन सबका खूब सोच समझकर विधि पूर्वक उपवास (व्रत) करे ॥१८४-१८८॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—ये द्वादशी विशेष फलदायिनी हैं अतः ज्योतिषी एवं वैष्णव शास्त्रों के मर्मज्ञ सदाचारी विद्वान् वैष्णवों से पूछकर इनका व्रत करें। अब इनकी नित्यता और माहात्म्य का वर्णन किया जाता है ॥१८९-१९०॥

पद्मपुराण में अम्बरीषजी ने गोतमजी से पूछा है—हे विप्रवर ! ऋषिश्रेष्ठ ! आप ऐसा व्रत बतलावें जिसके करने से विष्णुलोक की प्राप्ति हो जाय, फिर जन्म मरण न हो ॥१९१॥

गौतम उवाच—

शृणु भूपाल वक्ष्यामि व्रतं यद्वैष्णवं महत्।
द्वादशीसम्भवं पुण्यं मया ख्यातं न कस्यचित् ॥१६२॥

वैष्णवोसि महाराज महाभागवतो नृणाम्।
वैष्णवं यन्महागुह्यं तद्व्रतं मे निशामय ॥१६३॥

उन्मीलिनी नाम पुरा भक्त्या वै माधवेन तु।
कथिता सुप्रसन्नेन तां ते भूय वदाम्यहम् ॥१६४॥

सम्पूर्णैकादशी प्रातर्द्वितीयेऽह्नि विवर्द्धते।
उन्मीलिनीति सा प्रोक्ता पापपंकौघनाशिनी ॥१६५॥

त्रैलोक्ये यानि पुण्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
कोट्यंशेन तु तुल्यानि मखा वेदास्तपांसि च ॥१६६॥

गोतमजी ने कहा—हे नरेन्द्र ! मैंने यह महाद्वादशी का वैष्णव व्रत अभी तक अन्य किसी को नहीं बतलाया था ।।१६२।।

हे राजन् आप महाभागवत वैष्णव हैं, अतः मुझ से इस गुप्त व्रत को सुनो ।।१६३।।

पहले भक्ति भाव से प्रसन्न होकर माधव ने उन्मीलिनी का विधान बतलाया, वह मैं आपको बतलाता हूँ ।।१६४।।

एकादशी पूर्ण होकर द्वादशी को भी कुछ रहे तब वह उन्मीलिनी महाद्वादशी कहलाती है ।।१६५।।

त्रिलोकी में जितने भी पवित्र तीर्थ स्थान हैं अथवा यज्ञ-याग वेदपाठ तप आदि साधन हैं, वे सब उन्मीलिनी महाद्वादशी व्रत के कोटयांश के तुल्य हैं ।।१६६।।

उन्मीलिनी समं किञ्चिन्न दृष्टं न श्रुतं मया ।
प्रयागं न कुरुक्षेत्रं न काशी नैव पुष्करं ॥१९७॥
न रेवा ब्रह्मतनया कालिन्दी मथुरा नहि ।
पिण्डारकं प्रभावं च न क्षेत्रं हाटकेश्वरम् ॥१९८॥
हिमाचलश्चैव शैलो न मेरुर्गन्धमादनः ।
शैलो नैव हिमालयो न विन्ध्यो नैव नैषधः ॥१९९॥
गोदावरी च कावेरी चन्द्रभागा न देविका ।
न तापी न पयोष्णी च न क्षिप्रा नैव चन्दना ॥२००॥
चर्मण्वती च सरयूश्चन्द्रगर्भा न गण्डकी ।
गोमती च विपाशा च शोणभद्रो महानदः ॥२०१॥
किमत्र बहुनोक्तेन भूयो - भूयो नराधिप ।
नोन्मीलिनी समं किञ्चिन्नो देवो केशवात्परः ॥२०२॥
उन्मीलिनीमनुप्राप्य यैः कृतं केशवार्चनम् ।
पापकक्ष समूहस्य दत्तं तेन दवानलः ॥२०३॥

प्रयाग, कुरुक्षेत्र, काशी, पुष्कर, रेवा ब्रह्मतनया कालिन्दी (जमुना) मथुरा पिण्डारक प्रभास क्षेत्र, हाटकेश्वर, हिमाचल, मेरु, गन्धमादन, हिमालय, विन्ध्याचल, नैषधः गोदावरी कावेरी चन्द्रभागा देविका, तापी पयोष्णी क्षिप्रा चन्दना चर्मण्वती, सरयू चन्द्रभागा गण्डकी, गोमती विपाशा महानद शोणभद्र– यद्यपि ये सब पुण्यवर्धक हैं तथापि मेरी दृष्टि में उन्मीलिनी महाद्वादशी व्रत की समता नहीं कर सकते ॥१९७-२०१॥

हे नरेन्द्र ! बारम्बार क्या कहें—जिस प्रकार केशव के समान कोई देव नहीं उसी प्रकार उन्मीलिनी महाद्वादशी व्रत के समान और कोई साधन नहीं ॥२०२॥

यस्मिन्मासे महीपाल तिथिरुन्मीलिनी भवेत् ।
तन्मासनाम्ना गोविन्दः पूजनीयो यथाविधि ॥२०४॥

जातरूपमयः कार्यो मासनाम्ना तु माधवः ।
स्वशक्त्या विश्वरूपं तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितैः ॥२०५॥

पवित्रोदकसंयुक्तं पञ्चरत्न समन्वितम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं कुम्भं स्त्रग्दामभूषितम् ॥२०६॥

पात्रमौदुम्बरं कार्यं गोधूमैश्चापि पूरितम् ।
तण्डुलैर्वा महीपाल स्थापनीयं घटोपरि ॥२०७॥

स्थापयित्वा तु गोविन्दं कुङ्कुमागुरु-चन्दनैः ।
प्रदद्यद्वस्त्रयुग्मं तु उपवीतं तु सोत्तरम् ॥२०८॥

जिसने उन्मीलिनी व्रत करके केशव भगवान की आराधना करली, समझलो उसने अपने समस्त पापों के ढेर को आग लगा दी ॥२०३॥

जिस मास में उन्मीलिनी हो उस दिन उसी मास के नाम से भगवान की पूजा करे ॥२०४॥

उस मास के नाम वाले प्रभु की सुवर्ण प्रतिमा बनावे, शक्ति के अनुसार श्रद्धा भक्ति पूर्वक कलश की स्थापना करे उसमें पञ्चरत्न सहित पवित्र जल भर दे, गन्ध पुष्प अक्षत माला से सजावे ॥२०५-२०६॥

गूलर के पात्र को गेहूँ या चावल से भरकर घट के ऊपर रख देवे ॥२०७॥

उस पर भगवत्प्रतिमा विराजमान करके, केशर अगर चन्दन से युक्त युगल वस्त्र यज्ञोपवीत आदि देवे ॥२०८॥

उपानहौ तु राजर्ष आतपत्रं शिरोपरि ।
भाजनं जलपात्रं च सप्तधान्यं तिलैः सह ॥२०६॥
रुप्यंञ्चैव तु कार्पासं पायसं मुद्रिकां हरेः ।
धेनुं वा निःक्रियं वापि दद्यान्माधव प्रीतये ॥२१०॥
शय्यां सोपस्करां दत्वा माधवाय तु भक्तितः ।
धूपं दीपं च नैवेद्यं फलं पत्रं निवेदयेत् ॥२११॥
पूजनीयो महाभक्त्या मन्त्रैरेभिस्तु केशवः ।
तुलसीपत्रसंयुक्तैः पुष्पः कालोद्भवैर्हरिः ॥२१२॥
मासनाम्ना तु पादौ तु जानुनी विश्वरूपिणे ।
गुह्यं तु कामपतये कटिं वै पीतवाससे ॥२१३॥
ब्रह्मणो मूर्त्तये नाभिमुदरं विश्वयोनये ।
हृदयं ज्ञानगम्याय कण्ठ वैकुण्ठमूर्त्तये ॥२१४॥

जूता, छत्ता, जलपात्र, तिलों के सहित सातों धान, रजत का रुपैया कपास खीरान्न,मुद्रिका और गऊ दान करे ॥२०६-२१०

भक्ति पूर्वक समस्त उपकरणों सहित शय्या दान करे, फिर धूप दीप नैवेद्य फल तुलसी-पत्रयुक्त तत्कालीन पुष्पों से निम्नांकित मंत्रों द्वारा केशव भगवान का भक्तिपूवक पूजन करे ॥२११-२१२॥

जो महीना हो उसके भगवत् सम्बन्धी नाम को बोलकर पैरों के हाथ लगावे। "विश्वरूपिणे नमः" बोलकर घुटनों के, "कामपतये नमः" बोलकर गुह्यस्थल के पीतवास से नमः बोलकर कमर के, ॥२१३॥

"ब्रह्मणोमूर्तये नमः" बोलकर नाभि के, विश्वयोनये नमः" बोलकर पेट के, "ज्ञानगम्याय" बोलकर हृदय के, "वैकुण्ठमूर्तये नमः" बोलकर कण्ठ के ॥२१४॥

उरुगाय ललाटं तु बाहू क्षत्रान्तकारिणे।
उत्तमाङ्गं सुरेशाय सर्वाङ्गं सर्वमूर्त्तये ॥२१५॥
स्वनाम्ना चायुधा-दीनि पूजनीयानि भक्तितः।
अर्घ्यदानं प्रकर्त्तव्यं नारिकेलादिभिः फलैः ॥२१६॥
शंखोपरि फलं कृत्वा गन्धपुष्पाक्षतान्वितम्।
सूत्रेण वेष्टनं कृत्वा दद्यादर्घ्यं विधानतः ॥२१७॥
देवदेव महादेव महापुरुष पूर्वज।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु पुण्यकीर्त्तिविवर्धन ॥२१८॥
शोकमोहमहापापान्मामुद्धर महार्णवात्।
सुकृतं न कृतं किञ्चिज्जन्मान्तर शतैरपि ॥२१९॥

"उरुगाय नमः" बोलकर ललाट के, "क्षत्रान्तकारिणे नमः" बोलकर भुजाओं के, "सुरेशाय नमः" बोलकर मस्तक के, "सर्वमूर्तये नमः" बोलकर सर्वांग पर हाथ फेरे ॥२१५॥

फिर अपने-अपने नामों से आयुध आदि की भक्तिपूर्वक पूजा करे। फिर नारियल आदि फलों से अर्घ्य प्रदान करे ॥२१६॥

गन्ध पुष्प अक्षत सहित फल को शंख के ऊपर रखकर सूत्र से वेष्टन करके विधिपूर्वक अर्घ्य देवे। फिर नमन प्रार्थना करे ॥२१७॥

हे देवदेव ! महादेव ! महापुरुष ! पूर्वज ! सुब्रह्मण्य ! पुण्यकीर्ति को बढ़ाने वाले आपको नमस्कार है ॥२१८॥

शोकमोहादि महापापरूपी समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये। हे प्रभो मैंने सैकड़ों जन्म जन्मान्तरों में भी यद्यपि कोई सुकृत नहीं किया, तथापि हे महाविष्णो ! आप इसी व्रत के द्वारा

तथापि मां महाविष्णो त्वमुद्धर महार्णवात् ।
व्रतेनानेन देवेश ये चान्ये मम पूर्वजाः ॥२२०॥
वियोनिं च गताश्चान्ये पापान्मृत्युवशं गताः ।
ये भविष्यन्ति येऽतीताः प्रेतलोकात्समुद्धर ॥२२१॥
आर्त्तस्य मम दीनस्य भक्तिरव्यभिचारिणी ।
दत्तमर्घ्यं मया तुभ्यं भक्त्या गृहाण गदाभृत् ॥२२२॥
दत्वार्घ्यं धूपदीपाद्यैर्नैवेद्यैर्हविसम्भवैः ।
स्तोत्रैर्नीराजनैर्गीतैर्नृत्यैः सन्तोषयेद्धरिम् ॥२२३॥
वस्त्रदानैश्च गोदानैर्भोजनैस्तोषयेद्गुरुम् ।
तथातथा विधातव्यं प्रीतो भवति वै गुरुः ॥२२४॥
अकुर्वन्वित्तशाठ्यं व्रतं कुर्वीत वै कलौ ।
तुष्ट्यर्थं पद्मनाभस्य कार्यं जागरणं तथा ॥२२५॥

मुझे भवसागर से पार कर दीजिये। मेरे पूर्वज किसी पाप से खराब योनियों में हों या उन्हें खराब योनि मिलने वाली हों तो उनका प्रेतलोकों से उद्धार कर दीजिये।।२१९-२२१।।

मुझ दीन आर्त के हृदय में आपकी अनन्य भक्ति हो, आपके लिये जो अर्घ्य अर्पित किया है, हे गदाभृत् आप उसे अंगीकार करें।।२२२।।

इस प्रकार अर्घ्य देकर धूप दीप नैवेद्य हविष्यान्न अर्पण करके आरती उतारे, स्तुति करे, गीतवाद्य नृत्यों से प्रभु को प्रसन्न करे।।२२३।।

फिर भोजन वस्त्र गौ आदि को अर्पित करके गुरुदेव को सन्तुष्ट करे। गुरुदेव जिस प्रकार प्रसन्न हों वैसी ही उनकी सेवा करे।।२२४।।

निशान्ते व्रतकृत्यं तु गुरवे तन्निवेदयेत् ।
गुरोर्निवेदिते भूयः परिपूर्णं भवेद्व्रतम् ।।२२६।।
कृत्वा दिनकृत्यं कर्म भोजनं वैष्णवैस्सह ।
कर्त्तव्यं नृपशार्दूल दिनं नेयं कथानकैः ।।२२७।।
अनेन विधिना सम्यक्कुर्यादुन्मीलिनीव्रतम् ।
कल्पकोटिसहस्राणि वसेत्स विष्णुसन्निधौ ।।२२८।।
इतिपाद्मे उन्मीलिनीमाहात्म्यम् ।

अथ वञ्जुलीमाहात्म्यम्—
सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादशी च यदा भवेत् ।
त्रयोदश्यां मुहूर्त्तोर्ध्वं वञ्जुली सा हरिप्रिया ।।२२९।।

धन का अभिमान न रखकर व्रत और जागरण करे। कलियुग में भगवान् को प्रसन्न करने के लिये यही व्रत सुन्दर है ।।२२५।।

रात्रि समाप्त होने पर व्रत का समस्त कृत्य गुरुदेव के अर्पण करे, ऐसा करने से ही व्रत पूर्ण हो सकता है ।।२२६।।

दिन का कृत्य पूरा करके वैष्णवों के साथ भोजन करे, कथा सुने ।।२२७।।

इस प्रकार की विधि से उन्मीलिनी का व्रत करे। वह व्रती करोड़ों कल्प तक विष्णु भगवान की सन्निधि में वास करता है ।।२२८।।

ऐसा उन्मीलिनी का माहात्म्य पद्मपुराण में है ।

अब वञ्जुली का माहात्म्य आरम्भ होता है—

एकादशी और द्वादशी दोनों ही पूर्ण होकर द्वादशी त्रयोदशी में भी प्रविष्ट हो जाय तो वह द्वादशी वजुलिनी महाद्वादशी कहलाती है ।।२२९।।

शुक्लपक्षे तथा कृष्णे यदा भवति वञ्जुली।
एकादशीदिने भुक्त्वा द्वादश्यां कारयेद्व्रतम् ॥२३०॥
पारणं द्वादशीमध्ये त्रयोदश्यां न कारयेत्।
एवं कृतं महीपाल यज्ञायुतफलं भवेत् ॥२३१॥
द्वादश्यां तु निराहारः पारणं चापरेऽहनि।
धर्मार्थकाममोक्षार्थं करिष्ये वञ्जुलीव्रतम् ॥२३२॥
॥ इति नियममन्त्रः ॥

स्नात्वा नद्यां नदे वाप्यां तडागे वा ह्रदेऽपि वा।
कृत्वा स्नानं गृहे वाऽपि नित्यकर्म च कारयेत् ॥२३३॥
माषैकेन सुवर्णस्य कृत्वा नारायणीं तनुम्।
रत्नगर्भं घटे कृत्वा ताम्रपात्रोपरि स्थितम् ॥२३४॥

शुक्लपक्ष हो चाहे कृष्णपक्ष, वञ्जुली महाद्वादशी का योग बन जाय तब शुद्ध एकादशी को भी छोड़कर द्वादशी को व्रत रक्खे ॥२३०॥

वञ्जुली का पारणा भी द्वादशी में ही हो जाता है। त्रयोदशी में पारणा करने की जरूरत नहीं होती। इस प्रकार करने से हे महीपाल दश हजार यज्ञों जितना फल प्राप्त होता है ॥२३१॥

द्वादशी में निराहार रहे दूसरे दिन पारणा करे, व्रत के पूर्व धर्म अर्थ काम और मोक्ष प्राप्ति के लिये मैं वञ्जुली महाद्वादशी का व्रत करूँगा ऐसा सकल्प कर लेना चाहिये। ऐसा नियम है ॥२३२॥

नदी नद बावड़ी, तलाब सरोवर आदि में स्नान करके नित्यकर्म करले ॥२३३॥

एकमासा सोना की भगवत्प्रतिमा बनावे, उसमें रत्न देकर घड़े पर रख उसे तांबे के पात्र से ढँक दे ॥२३४॥

आतपत्रं तु मायूरं वैणवं च स्वशक्तितः ।
उपानहौ प्रकर्त्तव्ये कांस्यपात्रं घृतान्वितम् ।।२३५।।
गोधूमैः पूरयेत्पात्रं स्नाप्य देवं न्यसेत्ततः ।
वस्त्रयुग्मे तु संछाद्य कार्यं चैव विलेपनम् ।।२३६।।
अर्चयेदुदककुम्भं पुष्पमालाऽभिवेष्टितम् ।
ततः पूजा च कर्त्तव्या सुगन्धैः कुसुमैः शुभैः ।।२३७।।
नारायणाय पादौ तु जानुनी केशवाय च ।
उरुभ्यां माधवायेति गुह्यं कामाधिपाय च ।।२३८।।
गोविन्दाय कटिं पूज्यं नाभिं माधवमूर्त्तये ।
उदरंविष्णुरूपाय वक्षः कौस्तुभधारिणे ।।२३९।।
वैकुण्ठाय नमः कंठं चक्षुषी ज्योतिरूपिणे ।
सहस्रशीर्षाय शिरः सर्वांगंविश्वरूपिणे ।।२४०।।

मोरपंखों का अथवा वेणु (वांस) का छत्र बनावे, जूतों का दान करे घृत से भरे हुये कांसी के पात्र में गेहूं भरदे, स्नान कराकर भगवत्प्रतिमा को उस पर विराजमान करे। दो वस्त्रों से ढँककर चन्दनादि लेपन करे ।।२३५-२३६।।

जल के कलश की पुष्प मालादि से पूजा करे, फिर सुगन्धित पुष्पों से भगवत्प्रतिमा की पूजा करे ।।२३७।।

"नारायणाय नमः" बोलकर पैरों के हाथ लगावे, "केशवाय नमः" कहकर जानु (घुटवों) के। "माधवाय नमः" से जांघों के, "कामाधिपाय" से गुह्यस्थल के, "गोविन्दाय" से कटि (कमर) के, "माधवमूर्तये से नाभि के, "विष्णुरूपाय" से पेट के कौस्तुभ धारिणे से वक्षस्थल (छाती) के, "वैकुण्ठाय नमः" से कण्ठ के, "ज्योतिरूपिणे" से दोनों नेत्रों के, "सहस्र-

आयुधानि स्वनाम्नैव एवं देवार्चने विधिः।
शुभ्रेण नारिकेलेन दद्यादर्घ्यं विधानतः ॥२४१॥
शंखे कृत्वा तु पितरो मया सह जगत्पते।
मया दत्तं तु पानीयं साक्षतं कुसुमान्वितम् ॥२४२॥
नारायण जगन्नाथ पीताम्बर जनार्दन।
मामुद्धरमहाविष्णो नरकाद्धि सनातन ॥२४३॥
सप्तकल्पकृतं पापं यत्कृतं मम पूर्वजैः।
अनेनार्घ्यप्रदानेन सकलं यत्प्रणश्यतु ॥२४४॥
मुक्ति प्रयान्तु पितरो मया सह जगत्पते।
मया दत्तार्घ्यदानेन ये चान्ये पितरो गताः ॥२४५॥
व्रजन्तु त्वत्समीपे तु देवदेव जनार्दन।
व्रतं सम्पूर्णतां यातु वञ्जुलीसम्भवं मम ॥२४६॥

शीर्षाय" से मस्तक के, "विश्वरूपिणे" से समस्त अङ्गों के, आयुधों की पूजा उन्हीं के नामों से करें, शुभ्र नारियल से विधि-पूर्वक अर्घ्य देवे ॥२३७ से २४१॥

शंख को त्रिपादिका पर स्थापित करके फिर राधा-सर्वेश्वर भगवान् से प्रार्थना करे, हे जगत्पते ! पुष्प अक्षत सहित यह अर्घ्य आपके अर्पित किया गया है, हे नारायण जगन्नाथ जनार्दन महाविष्णो सनातन इस घोर नरक भवसागर से मेरा उद्धार कीजिये ॥२४२-२४३॥

मेरे द्वारा या मेरे पूर्वजों के द्वारा सात कल्पों तक किये हुए समस्त पाप इस अर्घ्य समर्पण से नष्ट हो जायें ॥२४४॥

हे जगत्पते ! इस अर्घ्य प्रदान से मेरे सहित मेरे पिता-पिता महादि सबकी मुक्ति हो जाय, जो मेरे पूर्वज लोक लोका-न्तर में भटकते हों वे सब आपकी सन्निधि में आजायें। हे

दशमीसंयुतं देव यत्कृतं द्वादशीव्रतम् ।
अज्ञानादथवा ज्ञानात्परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२४७॥
अनेन विधिना सम्यग्दत्त्वाऽर्घ्यं मधुसूदने ।
वसेत्कल्पसहस्रं हि विष्णुलोके नरेश्वर ॥२४८॥
अग्निष्टोमसहस्रेभ्योअश्वमेधो विशिष्यते ।
अश्वमेधसहस्रेभ्यो वाजपेयो विशिष्यते ॥२४९॥
वाजपेयसहस्रेभ्यः पुण्डरीको विशिष्यते ।
पुण्डरीकसहस्रेभ्यः सौत्रामणिर्विशिष्यते ॥२५०॥
सौत्रामणिसहस्रेभ्यो राजसूयो विशिष्यते ।
राजसूयसहस्रेभ्यो वञ्जुली ह्यधिका नृप ॥२५१॥
वंजुलीति कृत्वोच्चारं कलिकाले तु मानवैः ।
जन्मायुतसहस्रेषु कृतःपापस्य सङ्क्षयः ॥२५२॥

जनार्दन ! वञ्जुली का यह मेरा व्रत भी पूर्ण सम्पन्न हो ॥२४५-२४६॥

हे देव ! कभी जान बूझकर अथवा अनजान में दशमी-विद्धा एकादशी का व्रत मैंने किया हो उस दोष से भी मुझे मुक्त करें ॥२४७॥

हे नरेश्वर ! जो इस विधि से भगवान मधुसूदन को अर्घ्य देता है वह सहस्रों कल्प तक वैकुण्ठ वास करता है ॥२४८॥

हजारों अग्निष्टोमों से, अश्वमेध यज्ञ विशिष्ट माना जाता है, हजारों अश्वमेधों से वाजपेय, हजारों वाजपेयों से पुण्ड-रीक, हजारों पुण्डरीकों से सौत्रामणि, हजारों सौत्रामणियों से राजसूय और हजारों राजसूयों से भी वञ्जुली महाद्वादशी का व्रत विशिष्ट माना जाता है ॥२४८-२५१॥

दत्त्वाऽर्घ्यं पूजादानं तु धूपं नैवेद्य दीपकम् ।
कृत्वा नीराजनं विष्णोर्गुरुं सम्पूजयेत्ततः ॥२५३॥
दद्याद्वस्त्राणि गाभूमीर्धान्यं चैव सदक्षिणम् ।
कुर्याद्वित्तानुसारेण सम्पूर्णार्थं व्रतस्य हि ॥२५४॥
सन्तुष्टे तु गुरौ विष्णुः प्रीतो भवति नान्यथा ।
गुरुं सम्पूजयेत्तस्मात्तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥२५५॥
स्यादस्यां जागरो रात्रौ श्रोतव्या वैष्णवी कथा ।
गीता सहस्रनामानि पुराणं शुकभाषितम् ॥२५६॥
पठनीयं प्रयत्नेन हरेः सन्तोषकारणात् ।
प्रत्येकं गोसहस्रं च पठतां शृण्वतां फलम् ॥२५७॥

कलिकाल में जिन मनुष्यों ने "वञ्जुली" इतना उच्चारण भी कर लिया, उन्होंने समझलो लाखों जन्मों के पापों का क्षय कर दिया ॥२५२॥

भगवान को अर्घ्य देकर धूप दीप नैवेद्य नीराजन आदि से पूजा करके गुरुदेव की पूजा करना चाहिये ॥२५३॥

व्रत की पूर्ति के लिये गुरुदेव को वस्त्र गौ भूमि दक्षिणा (भेट नकदी) सहित धान्य आदि अपनी शक्ति के अनुसार अर्पण करे ॥२५४॥

गुरुदेव के सन्तुष्ट हो जाने से भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, इसलिए गुरुदेव की पूजा करना आवश्यक है ॥२५५॥

वञ्जुली व्रत की रात्रि में जागरण करे वैष्णवी (भागवत आदि की) कथा सुने, गीता सहस्रनाम आदि का पाठ और मनन करे । इनके पाठ करने वाले एवं सुनने वालों को हजारों गो दानों के समान फल मिलता है ॥२५६॥-२५७॥

गीतं नृत्यं तु वादित्रं कारयेत्पुरतो हरेः।
दातव्यं गुरवे पूर्वं भोक्तव्यं वैष्णवैः सह ॥२५८॥
इति पाद्मे वञ्जुलीमाहात्म्यम् ॥

अथ त्रिस्पृशामाहात्म्यम्—

श्रीसनत्कुमार उवाच—
सर्वपापप्रशमनं महापापप्रणाशनम् ।
शृणु कृत्वाऽवधानं तु त्रिस्पृशाख्यं महाव्रतम् ॥२५९॥
कामदं सस्पृहाणां च निस्पृहाणां तु मोक्षदम् ।
त्रिस्पृशाख्यं व्रतं विष्णोः शृणुस्व गदतोऽनघ ! ॥२६०॥
प्रत्यक्षमर्चितस्तेन कलिकाले तु केशवः।
त्रिस्पृशाकीर्तनं नित्यं यः करोति महामुने ॥२६१॥
न पुरश्चरणे चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत् ।
त्रिस्पृशानाममात्रेण भवेत्तु नात्र संशयः ॥२६२॥

भगवान् के सन्मुख सुन्दर वाद्य बजाकर गान और नृत्य करे, गुरुदेव को भोजन कराकर पारणा के समय वैष्णवों के सहित आप भोजन करे ॥२५८॥

अब त्रिस्पृशा का माहात्म्य सुनिये। श्रीसनत्कुमारों ने कहा—हे अनघ ! त्रिस्पृशा का महाव्रत समस्त पापों को नष्ट करने वाला है तुम सावधान होकर सुनो। इससे सकाम साधकों की कामनायें पूर्ण होती हैं और निष्काम व्रत करने वालों की मुक्ति हो जाती है ॥२५९-२६०॥

हे महामुने ! कलिकाल में जिसने त्रिस्पृशा का नाम भी ले लिया समझलो उसने साक्षात् भगवान् की अर्चा करली ॥२६१

पुरश्चरण आदि से कदाचित् पापों का क्षय न भी हो

नागमैर्न पुराणैश्च समस्तैस्तीर्थकोटिभिः ।
बहुभिर्व्रतसङ्घैश्च पूजितैस्त्रिदशैरपि ॥२६३॥
न मोक्षो भवति विप्र त्रिस्पृशा न कृता यदि ।
मोक्षार्थे देवदेवेन सृष्टा दिवि तिथीश्वरी ॥२६४॥
विषयैर्विप्रयुक्तानां ध्यानधारणवर्जिनाम् ।
कामभोगप्रसक्तानां त्रिस्पृशा मोक्षदायिनी ॥२६५॥
शंकरस्य पुरा प्रोक्ता चतुर्वक्त्रस्य सागरे ।
क्षीरोदभवांतानां तु मत्समीपे तु चक्रिणा ॥२६६॥
त्रिस्पृशां ये करिष्यन्ति विषयैरपि निर्जिताः ।
तेषामपि मया दत्तं मोक्षं सांख्यविवर्जितम् ॥२६७॥

किन्तु त्रिस्पृशा के तो नामोच्चारण मात्र से ही पापों का क्षय हो जाता है ॥२६२॥

हे विप्र ! त्रिस्पृशा महाद्वादशी के व्रत किये विना समस्त आगम पुराणों का पाठ एवं करोड़ों तीर्थों की यात्रा तथा बहुत से व्रतों और देवताओं की आराधना से भी मोक्ष नहीं हो सकती, मोक्ष के लिये ही भगवान् ने इस तिथीश्वरी, त्रिस्पृशा का आविर्भाव किया है ॥२६३-२६४॥

ध्यानधारणावर्जित कामी विषयी व्यक्तियों के पाप दोषों का शमन त्रिस्पृशा के व्रत से हो सकता है ॥२६५॥

ब्रह्मा शंकर और क्षीरसागर के निवासियों के लिये भी चक्रधारी भगवान् ने पहले यही कहा था ॥२६६॥

जो विषयरत प्राणी भी त्रिस्पृशा का व्रत करेंगे उन्हें बिना ही सांख्य ज्ञान के भी मैं मुक्त कर दूंगा ॥२६७॥

कुरुष्व त्वं मुनिश्रेष्ठ त्रिस्पृशां मोक्षदायिकाम् ।
बहुभिर्मुनिसङ्घैस्तु त्यक्त्वा सांख्यं महामुने ॥२६८॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रिस्पृशा तु भवेद्यदि ।
सोमेन सोमजेनापि पापकोटिविनाशिनी ॥२६९॥
यस्यामुपोषणं कृत्वा हत्यामुक्तो महेश्वरः ।
हस्ताद्ब्रह्मकपालं तु तत्क्षणं पतितं मुने ॥२७०॥
कलिकल्मषपापौघं मुक्त्वा देवी त्रिमार्गगा ।
उपदेशान्माधवस्य त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥२७१॥
हत्याष्टौ बाहुवीर्यस्य पूर्वजाता महामुने ।
गता भृगूपदेशेन त्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥२७२॥

हे महामुने इसी कारण बहुत से मुनिजन साँख्य ज्ञान को छोड़कर त्रिस्पृशा का व्रत करने लगे हैं, तुम भी इसी मोक्ष प्रदायक व्रत को करो ॥२६८॥

कार्तिक शुक्लपक्ष की त्रिस्पृशा महाद्वादशी यदि सोमवारी या बुधवारी हो तो वह करोड़ों पापों को नष्ट कर देती है ॥२६९॥

हे मुने ! इसी व्रत से शंकरजी हत्यामुक्त हुए थे उसी क्षण उनके हाथ से ब्रह्म कपाल छूट गया था ॥२७०॥

गंगाजी ने भी माधव के उपदेश से त्रिस्पृशा का उपवास किया था उसी के प्रभाव से वे कलिकल्मष पापसमूहों को नष्ट करती है ॥२७१॥

हे महामुने ! बाहुवीर्य को जो पहले आठ हत्यायें लगी थीं वे भगवान् के उपदेश से त्रिस्पृशा का व्रत करने से ही दूर हुई थी ॥२७२॥

मरणेन प्रयागे तु मुक्तिः काश्यां तथैव च।
स्नानमात्रेण गोमत्यां मुक्तिर्भवति नान्यथा ॥२७३॥
गृहे वै भवते मुक्तिस्त्रिस्पृशासमुपोषणात्।
विलयं यान्ति विप्रेन्द्र पापान्यन्यापि का कथा ॥२७४॥
न प्रयागे न काश्यां तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ।
मोक्षो भवति विप्रेन्द्र त्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥२७५॥
विषये वर्त्तमानस्य कामभोगान्वितस्य च।
निवृत्तविषयस्यापि मुक्तिः सांख्येन दुर्लभा ॥
तस्मात्कुरुष्व विप्रेन्द्र त्रिस्पृशां मोक्षदायिनीम् ॥२७६॥

श्रीवेदव्यास उवाच—
कीदृशी स्यान्मुनिश्रेष्ठ त्रिस्पृशाद्वादशी वद।
विमुक्तिदाच याऽज्ञानां त्वया प्रोक्ता ममाधुना ॥२७७॥

यद्यपि काशी और प्रयाग में मृत्यु होने पर मुक्ति मिलती है और गोमती में स्नान करने से ही मुक्ति हो जाती है। तथापि त्रिस्पृशा के व्रत में यह विशेषता है कि कहीं भी नहीं जाना पड़ता इसके व्रत से घर में रहने पर भी मुक्ति मिल जाती है और समस्त पापों का लय हो जाता है ॥२७३-२७४॥

भोगासक्त कामीजनों की मुक्ति काशी प्रयाग गोमती और भगवद्धामादि में भी नहीं होती, किन्तु त्रिस्पृशा के व्रत से हो सकती है। विषयों से निवृत्त जनों की भी कदाचित् सांख्य ज्ञान से मुक्ति हो या न हो क्योंकि दुर्लभ है इसलिये हे विप्रेन्द्र ! मोक्ष दायिनी त्रिस्पृशा का तुम व्रत करते रहो ॥२७५-२७६॥

श्रीवेदव्यासजी ने श्रीसनकादिकों से पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! हे आचार्यवर ! आपने अज्ञजनों को मुक्ति देने वाली त्रिस्पृशा बतलाई है, वह कैसी होती है मुझे भी बतलाइये ॥२७७॥

श्रीसनत्कुमार उवाच—
जाह्नव्या पुरतो विप्र त्रिस्पृशा माधवेन तु ।
प्राचीसरस्वतीतीरे कथिता सुमहाफला ॥२७८॥
श्रीगंगोवाच—
कलिकल्मषपापौघैर्ब्रह्महत्यादिकैर्युताः ।
कलिकाले हृषीकेश स्नानं कुर्वन्ति मज्जले ॥२७९॥
तेषां पापशतैर्दग्धं मद्देहं कलुषीकृतम् ।
कथं यास्यति मे देव पातकं गरुडध्वज ॥२८०॥
श्रीप्राचीमाधव उवाच—
कथयामि न सन्देहो मा पुत्रि रोदनं कुरु ।
श्रीस्थानं नाम मे स्थानं तत्राहं नास्ति संशयः ॥२८१॥
तीर्थकोटिशतैर्युक्तः सुरैः सह वसाम्यहम् ।
तत्र नश्यन्ति पापानि यत्र प्राचीसरस्वती ॥
विशेषेण ममाग्रे तु कलिकाले विशेषतः ॥२८२॥

श्रीसनत्कुमारों ने कहा—हे विप्र ! प्राची सरस्वती के तीर पर माधव भगवान् ने जाह्नवी को महाफला त्रिस्पृशा का विधान उस के पूछने पर बतलाया था ।।२७८।।

गंगा ने माधव प्रभु से पूछा—हे हृषीकेश ! ब्रह्म हत्यादि कलि कल्मष पापों से युक्त प्राणी कलिकाल में मेरे जल में स्नान करेंगे, उनके अनन्त पापों से कलुषीकृत मेरा शरीर दग्ध होने लगेगा उन पापों से मेरा छुटकारा कैसे होगा ।।२७९-२८०

श्रीप्राचीमाधव ने कहा—हे पुत्री तुम रुदन मत करो, मैं श्री स्थान नामक स्थल पर करोड़ों तीर्थ और देवों सहित निवास करता हूँ जहां प्राची सरस्वती बहती है, वहां मेरे सन्मुख कलियुग में तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायेंगे ।।२८१-२८२।।

जाह्नव्युवाच—

नाहं शक्नोमि देवेश आगन्तुं नित्यमेव हि ।
कथं नश्यन्ति पापानि कथयस्वेह माधव ॥२८३॥

श्रीप्राचीमाधव उवाच—

सरस्वत्याधिका या च तीर्थकोटिशताधिका ।
मखकोट्यधिका वाऽपि ब्रह्मदानाधिका च या ॥२८४॥
जपतपोऽधिका नित्यं चतुर्युगफलप्रदा ।
सांख्ययोगाधिका या च त्रिस्पृशाङ् कुरुतां शुभे ॥२८५॥
यस्मिन् मासे समायाति सिता वाऽप्यथवाऽसिता ।
कर्त्तव्या सा सरिच्छ्रेष्ठे तव पापं हरिष्यति ॥२८६॥

मन्दाकिन्युवाच—

कीदृशी त्रिस्पृशा देव त्वं ममाचक्ष्व माधव ।
ईदृशी महिमा यस्यास्त्वया प्रोक्ता ममाधुना ॥२८७॥

गंगाजी ने कहा—हे देवेश ! वहां मैं नित्यप्रति कैसे आ-सकूंगी । एक बार भी वहां मेरा पहुँचना कठिन है । मेरे पाप कैसे नष्ट होंगे कोई अन्य उपाय बतलाइये ॥२८३॥

प्राचीमाधव ने कहा—सरस्वती, करोड़ों तीर्थ, कोट्यान-कोट्य यज्ञ, ब्रह्म (विद्या) दान, जप, तप, सांख्यज्ञान, योगबल आदि समस्त साधनों से भी विशिष्ट त्रिस्पृशा महाद्वादशी का व्रत है तुम उसे करना, चाहे शुक्लपक्ष हो चाहे कृष्णपक्ष, जिस महीने और पक्ष में त्रिस्पृशा आवे उस का व्रत तुम करना उससे तुम्हारे समस्त पाप समाप्त हो जायेंगे ॥२८४-२८६॥

मन्दाकिनी ने फिर से पूछा—यदि त्रिस्पृशा का ऐसा महत्व है तो आप मुझे उसके लक्षण आदि बतलावें । क्या दशमी

दशम्येकादशी भद्रा दिनैकस्मिन् यदा भवेत् ।
त्रिस्पृशा सा भवेद्देव न वेद्मि वद मे प्रभो ॥२८८॥

श्रीप्राचीमाधव उवाच—

आसुरी त्रिस्पृशा देवि या त्वया परिकीर्तिता ।
वर्ज्जनीया प्रयत्नेन वृत्तहीनो यथा यतिः ॥२८९॥
असुराणां राक्षसानामायुर्बलविवर्द्धनी ।
वर्ज्जनीया प्रयत्नेन यथा नारी रजस्वला ॥२९०॥
यथा रजस्वलासंगः संत्याज्यो वर्जितः सदा ।
तथा दशमीसंयुक्तं मद्दिनं वैष्णवैर्नरैः ॥२९१॥
हत्यायुतशतं हन्ति मत्प्रसादेन लभ्यते ।
मत्प्रसादाद्विहीनानां त्रिस्पृशा याति जाह्नवि ॥२९२॥

एकादशी और द्वादशी इन तीनों तिथियों के योग से त्रिस्पृशा कहलाती है ? मुझे ज्ञात नहीं अतः स्पष्ट रूप से बतलावें ॥२८७-२८८॥

श्रीप्राचीमाधव ने कहा—नहीं नहीं; तुमने जो त्रिस्पृशा बतलाई है वह ठीक नहीं है, जैसे चरित्रहीन यति अपूज्य माना जाता है उसी प्रकार तुमने जो त्रिस्पृशा बतलाई है वह वर्जनीय समझो क्योंकि यह—ऐसी त्रिस्पृशा आसुरी है यह असुरों का बल बढ़ाने वाली है। अतः रजस्वला स्त्री के समान त्याज्य है। जैसे रजस्वला का संग त्याज्य है उसी प्रकार दशमीयुक्त एकादशी वैष्णवों के लिये त्याज्य है ॥२८९-२९१॥

हे जाह्नवी मेरी कृपा से ही समस्त हत्याओं से मुक्त करने वाली त्रिस्पृशा प्राप्त हो सकती है, मुझ से विमुख रहने वालों को त्रिस्पृशा का योग होना कठिन है ॥२९२॥

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।
त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमीसंयुता न हि ॥२६३॥
भुक्तं हालाहलं तेन श्वविष्ठा भक्षणं कृतम्।
दशमीमिश्रितं येन कृतन्नेकादशीव्रतम् ॥२६४॥
ज्ञात्वाह वै न कर्त्तव्यं मद्दिनं दशमीयुतम्।
जन्मकोटिकृतं पुण्यं सन्तानं याति संक्षयम् ।२६५॥
पक्षवृद्धौ विशेषेण सन्देहे समुपस्थिते।
ममाज्ञया प्रकर्त्तव्या द्वादशी वल्लभा सदा ॥२६६॥
ममाज्ञया प्रकर्त्तव्यं मद्दिनं मत्परायणैः।
मद्दिनं तद्विजानीयाद्दशमीवेधवर्जितम् ॥२६७॥
श्रीवेदव्यास उवाच—
विधानं ब्रूहि मे ब्रह्मन् मुने येन करोम्यहम् ॥२६८॥

एकादशी द्वादशी और रात्रि के अन्त में त्रयोदशी का योग हो वह त्रिस्पृशा श्रेष्ठ होती है-दशमी का योग तो महान् निषिद्ध है। दशमीयुक्त एकादशी का व्रत करना तो हालाहल विष और श्वविष्ठा भक्षण से भी बुरा है ॥२६३-२६४॥

अतः दशमीयुक्त एकादशी का व्रत कभी भी न करे, उसके करने से करोड़ों जन्मों के पुण्य और सन्तानादि का क्षय हो जाता है ॥२६५॥

पक्षवृद्धि होने पर या किसी प्रकार का संदेह होने पर द्वादशी को एकादशी का व्रत करना यह मेरी आज्ञा है ॥२६६॥

मेरे आश्रित भक्तों को मेरी आज्ञानुसार दशमी के वेध से रहित एकादशी का ही व्रत करना चाहिये। वही मद्दिन (हरिदिन) कहलाता है ॥२६७॥

श्रीसनत्कुमार उवाच—

दामोदरो हिरण्मयः कार्यो विभव सारतः ।
पात्रं ताम्रमयं रौप्यं तण्डुलैः परिपूरितम् ॥२९९॥

सजलं तु घटं शुद्धं पञ्चरत्न समन्वितम् ।
वेष्ठितं पुष्पमालाभिः कर्पूरागुरु वासितम् ॥३००॥

न्यसेत्ताम्रमये देवं स्नापयित्वा विलेपितम् ।
परिधानं ततः कार्यं वस्त्रयुग्मसमन्वितम् ॥३०१॥

मन्त्रैस्तु पूजनं कार्यं गुरुणा समुदीरितैः ।
पुष्पैः कालोद्भवैः शुभ्रैस्तुलसीदलकोमलैः ॥३०२॥

छत्रं तु वैष्णवं दद्यात्पादुकाम्बरसंयुतैः ।
नैवेद्यानि विचित्राणि फलानि सुबहून्यपि ॥३०३॥

वेदव्यासजी बोले—अच्छा हे मुनिवर ! अब आप मुझको त्रिस्पृशा का विधान बतलाईये मैं भी उस व्रत को करूँगा ।।२९८

श्रीसनत्कुमारों ने कहा—अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् की स्वर्ण प्रतिमा बनावे, चांदी या तांबे का पात्र चावलों से भरकर रक्खे ।।२९९।।

पुष्प मालाओं से वेष्टित कपूर अगर आदि से सुवासित पञ्चरत्नयुक्त शुद्ध जल से भरा हुआ घट स्थापित करें, स्नान कराकर चन्दनसे विभूषित करके ताम्रमय पात्र पर भगवत्प्रतिमा को विराजमान करे अधोवस्त्र और उपरिवस्त्र दोनों धारण करावें ।।३००-३०१।।

गुरुप्रदत्त मन्त्रों से पूजन करे, कोमल-कोमल स्वच्छ तुलसीदल और तत्तत्कालीन पुष्प, पादुका, वस्त्र आदि से पूजा करे, छत्र नैवेद्य विविध फल अर्पण करे ।।३०२-३०३।।

उपवीत तु दातव्यं सोत्तरीयं नवं दृढम्।
वैष्णवं दापयेद्वेणुं सुरूपं सोन्नतं शुभम् ॥३०४॥
दामोदराय पादौ तु जानुनी माधवाय तु।
गुह्यं तु कामपतये कटिं वामनरूपिणे ॥३०५॥
पद्मनाभाय नाभिं तु उदरं विश्वरूपिणे।
हृदयं ज्ञानगम्याय कंठं श्रीकंठसंज्ञके ॥३०६॥
सहस्रबाहवे बाहुं चक्षुषी योगनायके।
ललाटमुरुगायेति सहस्रशिरसे शिरः ॥३०७॥
स्वनाम्ना आयुधादीनि सर्वांगं चारुरूपिणे।
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या अर्घ्यं दद्याद्विधानतः ॥३०८॥
शुभ्रेण नारिकेलेन शंखोपरि स्थितेन हि।
सूत्रेण वेष्ठितेनैवह्या भाभ्यां वाऽपि संस्थितः ॥३०९॥

यज्ञोपवीत नवीन सुदृढ़ उत्तरीय वस्त्र सुन्दर उन्नत वेणु अर्पित करे ॥३०४॥

"दामोदराय नमः" कहकर पैरों को स्पर्श करे, "माधवाय" से घुटनों को, "कामपतये" से गुह्यस्थल को, "वामनरूपिणे" से कटि (कमर) को, "पद्मनाभाय" से नाभि को, "विश्वरूपिणे" से उदर (पेट) को, "ज्ञानगम्याय" से हृदय को, "श्रीकण्ठसंज्ञके" से कण्ठ को, "सहस्रबाहवे" से बाहु को, "योगनायके" से नेत्रों को, "उरुगाय" से ललाट को, "सहस्रशिरसे" से मस्तक को स्पर्श करे ॥३०५-३०७॥

आयुधों की उनके नामों से भक्तिपूर्वक विधिवत् सर्वाङ्ग पूजा करके सौंदर्य सागर प्रभु को विधान के अनुसार अर्घ्य देवे ॥३०८॥

स्मृतो हरसि पापानि सत्यं यदि जनार्द्दन ।
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च मनसा दुर्विचिन्तितम् ॥३१०॥
नारकं च भयं देव भयं दुर्गति सम्भवम् ।
भयमन्यन्महादेव ऐहिकं पारलौकिकम् ॥३११॥
सर्वं नाशय मे विष्णो गृहाणाघ्यं जनार्दन ।
सदा भक्तिर्ममैवास्तु दामोदर तवोपरि ॥३१२॥
धूपदीपं तु नैवेद्यं कुर्यान्नीराजनं ततः ।
शीर्षोपरि मुनिश्रेष्ठ भ्रामयेच्च जलं हरेः ॥३१३॥
कुर्याद्विधानमेतद्धि पूजयेत गुरुं ततः ।
दद्याद्वस्त्राणि शुभ्राणि गन्धमाल्यादिनाऽर्चयेत् ॥३१४॥

शंख के ऊपर स्थित सूत्र से बँधे हुए शुभ्र नारियल के साथ-साथ अर्घ्य देता हुआ प्रभु से इस प्रकार प्रार्थना करे ॥३०९

हे जनार्दन ! स्मरण करते ही आप साधक के समस्त पापों को हर लेते हैं, यदि यह सत्य है तो मेरे दुःस्वप्न दुःकुशकुन, मन के द्वारा किया हुआ खराब चिन्तन आदि से होने वाली दुर्गति एवं उनसे होने वाली नरक प्राप्ति, उसका भय अथवा अन्य ऐहिक पारलौकिक भय इन सबको, हे देव ! आप निवारण कीजिये और यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये । हे दामोदर ! आपके श्रीचरणों की भक्ति मेरे हृदय में सर्वदा बनी रहे ॥३१०-३१२॥

अर्घ्य के पश्चात् धूप दीप नैवेद्य अर्पित करके आरती उतारे, और हे मुनिवर ! भगवान् के मस्तक पर जलपूरित अर्घ्य को घुमावे ॥३१३॥

फिर गुरुदेव की विधिवत् पूजा करे, गंधमाला आदि

उपानहौ च वस्त्रं च मुद्रिकां च कमण्डलुम् ।
भोजनं चैव ताम्बूलं सप्तधान्यं च दक्षिणाम् ॥३१५॥
सम्पूज्य देवदेवेशं कुर्याज्जागरणं हरेः ।
गीतनृत्य समायुक्तं तथा वस्त्र समन्वितम् ॥३१६॥
निशां देवानामीशे दत्त्वा चार्घ्यं विधानतः ।
स्नानादिकीं क्रियां कृत्वा भुञ्जीत वैष्णवैः सह ॥३१७॥

॥ इति पाद्मे त्रिस्पृशा माहात्म्यम् ॥

अथ पक्षवर्द्धिनी माहात्म्यम्—

ब्रह्माण्डे—
अमा वा यदि वा पूर्णा सम्पूर्णा जायते यदा ।
भूत्वा तु षष्ठि घटिका दृश्यते प्रतिपद्दिने ॥३१८॥

अर्पित करके शुभ्रवस्त्र उपानह (जूता) मुद्रिका कमण्डलु भोजन ताम्बूल सप्त धान्य आदि के साथ-साथ दक्षिणा देवे ।।३१४-३१५

इस प्रकार हरिगुरु के पूजन के अनन्तर रात्रि में जागरण करे, गान और नृत्य करे । रात्रि में भी भगवान को अर्घ्य देकर, दूसरे दिन प्रातः स्नानादि के अनन्तर सभी वैष्णवों के साथ बैठकर भोजन (पारणा) करे ।।३१६-३१७।।

इस प्रकार पद्मपुराण में त्रिस्पृशा का माहात्म्य है ।

अब ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार पक्षवर्द्धिनी का माहात्म्य उद्धृत किया जाता है—अमावस्या अथवा पूर्णिमा सम्पूर्ण अर्थात् ६०-६० घड़ी की होकर के भी कुछ बढ़कर प्रतिपदा में प्रविष्ट हो जायें तो उस पक्ष की द्वादशी हजारों अश्वमेध यज्ञों के समान फल देने वाली पक्षवर्द्धिनी महाद्वादशी कहलाती है ।

अश्वमेधायुतैस्तुल्या सा भवेत्पक्षवर्द्धिनी ।
पूजाविधिं तु विप्रेन्द्र श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥
मन्त्रैः सम्पूजितो विष्णुः स्वकीयं यच्छते पदम् ॥३१९॥

ब्रह्मोवाच—

शृणुष्वैकमना विप्र पूजाकल्पं सुविस्तरम् ।
यैर्मन्त्रैः पूजितो विष्णुः सर्वदानेन तुष्यति ॥३२०॥

जलपूर्णं नवं कुम्भं चन्दनेनैव चर्चितम् ।
पञ्चरत्नसमायुक्तं पुष्पमालाऽभिवेष्टितम् ॥३२१॥

स्थाप्यं ताम्रमयं पात्रं सगोधूमं घटोपरि ।
सौवर्णं कारयेद्देवं माससञ्ज्ञाभिधानकम् ॥३२२॥

पञ्चामृतेन स्नपनं कर्त्तव्यं माधवस्य च ।
विलेपनं तु कर्त्तव्यं कुंकुमागुरुचन्दनैः ॥३२३॥

उस दिन पूजा करने से विष्णु भगवान् अपने धाम की प्राप्ति कराते हैं अतः हे विपेन्द्र ! उस पूजा विधान को मैं जानना चाहता हूं ॥३१८-३१९॥

श्रीब्रह्माजी ने कहा—हे विप्र ! जिन मन्त्रों से पूजने एवं सर्वस्व अर्पण कर देने पर भगवान् प्रसन्न होते हैं, उस पूजा के विधान को एकाग्र चित्त होकर सुनो ॥३२०॥

चन्दन से चर्चित, पुष्पमालाओं से सजाया हुआ, पञ्चरत्न-युक्त जल से भरा हुआ, नवीन कुम्भ (कलश) लावे, उस पर गेहूँ से भरा हुआ ताम्र का पात्र रक्खे, कम से कम एकमाशा सुवर्ण की भगवन्प्रतिमा बनवाकर उस पर विराजमान करे। उसे पञ्चामृत से स्नान करावे, केशर अगर चन्दन का लेपन करे ॥३२१-३२३॥

वस्त्रयुग्मं तु दातव्यं छत्रोपानत्समन्वितम् ।
पूजयेद्देवतामीशं कुम्भपात्रोपरि स्थितम् ॥३२४॥
पद्मनाभाय पादौ तु जानुनी योगमूर्त्तये ।
ऊरुयुग्मं नृसिंहाय कटिं ज्ञानप्रदाय च ॥३२५॥
उदरं विश्वनाथाय हृदयं श्रीधराय च ।
कण्ठं कौस्तुभकण्ठाय बाहू क्षत्रान्तकाय च ॥३२६॥
ललाटं व्योममूर्त्तये शिरो वै सर्वरूपिणे ।
स्वनाम्ना चैव शस्त्राणि सर्वांगं दिव्यरूपिणे ॥३२७॥

एवं सम्पूज्य विधिवत्ततोऽर्घ्यं सम्प्रदापयेत् ।
नारिकेलेण शुभ्रेण देवदेवस्य चक्रिणः ॥३२८॥

पूजामन्त्रः—

संसारार्णवपोताय पापकक्ष — महानल ।
नरकाग्निप्रशमन जन्ममृत्युजरापह ॥३२९॥

छत्र खडाऊ सहित युगल (दो) वस्त्र अर्पण करे, इस प्रकार कुम्भ पात्र पर विराजमान प्रभु की पूजा करे ॥३२४॥

फिर न्यास करे—पद्मनाभाय नमः बोलकर पैरों के हाथ लगावे । "योगमूर्त्तये" से घुटनों के, "नृसिंहाय" से दोनों जांघों के, "ज्ञानप्रदाय" से कटि (कमर) के, "विश्वनाथाय" से पेट के, "श्रीधराय" से हृदय के, "कौस्तुभकण्ठाय" से कण्ठ के, "क्षत्रान्तकाय" से दोनों भुजाओं के, "व्योममूर्तये" से ललाट के, और 'सर्वरूपिणे' से शिर का स्पर्श करे, अपने-अपने नामों से शस्त्रों (आयुधों) की पूजा करे; दिव्यरूपिणे से सम्पूर्ण अंगों का न्यास (स्पर्श) कर लेवे ॥३२५-३२७॥

इस प्रकार विधिवत् पूजा करके शुभ्र नारियल के द्वारा भगवान को अर्घ्य देवे ॥३२८॥

मामुद्धर जगन्नाथ पतितं भवसागरात् ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं पद्मनाभ नमोऽस्तुते ।।३३०।।
नैवेद्यानि प्रदेयानि घृतपक्वानि चक्रिणे ।
फलानि सुमनोज्ञानि स्वादूनि रसवन्ति च ।।३३१।।
सागुरुं सकर्पूरं च दद्याद्धूपं च माधवे ।
सघृत सगुग्गुलं वा दद्याद्वित्तानुसारतः ।।३३२।।
ताम्बूलं तु सकर्पूरं दद्याद्देवस्य भक्तितः ।
घृतेन दीपकं दद्यात्तिलतैलेन वा पुनः । ३३३।।
कृत्वा सम्यग्विधानेन गुरोः पूजां तु कारयेत् ।
वस्त्राणि चैव चोष्णीषं कंचुकं तु प्रदापयेत् ।।३३४।।
भोजनं चैव ताम्बूलं दत्त्वा चार्घ्यं प्रदापयेत् ।
स्ववित्तैर्वर्तमानेन यथाशक्त्या तु निर्धनैः ।।३३५।।

अर्घ्य देते समय ऐसी प्रार्थना करे—हे संसार समुद्र के नौकारूप प्रभो ! पापों के लिये आप महा-अनल हैं । नरक अग्नि के प्रशमन करने वाले, जन्ममरण और बुढापे को मिलने में समर्थ ? जगन्नाथ ! मुझ पतित का भवसागर से उद्धार कीजिये । मेरे द्वारा समर्पित इस अर्घ्य को अंगीकार करिये । हे पद्मनाभ आपको नमस्कार है ।।३२६-३३०।।

घृत पक्व नैवेद्य, सुन्दर स्वादिष्ट रस वाले फल, अगर कपूर घी गूगल सहित धूप ताम्बूल घी अथवा तेल का दीपक आदि से भगवान की पूजा करके गुरुदेव की पूजा करे । उनको पगड़ी बगलबन्धी आदि वस्त्र भेट करे ।।३३१-३३४।।

गुरुदेव को भोजन कराकर ताम्बूल और अर्घ्य देवे, धनी हो या निर्धन अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार हरिगुरु को पूजें ।।३३५।।

कार्या सम्यक् प्रयत्नेन द्वादशी पक्षवर्द्धिनी ।
ततो जागरणं कुर्याद् गीतनृत्यसमन्वितम् ।।३३६।।
पुराणपाठसहितं हास्यहार्द्द समन्वितम् ।
स्तुवन्ति न प्रशंसन्ति ये नरा जागरं हरेः ।।३३७।।
नोत्सवोहि भवेत्तेषां गृहे जन्मानि सप्त च ।
स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति जागरं चक्रपाणिनः ।।
नित्योत्सवो भवेत्तेषां जन्मानि दशपञ्च च ।।३३८।।

।। इति पाद्मे पक्षवर्द्धिनी माहात्म्यम् ।।

अथ जयामाहात्म्यं, कुमाराः—
द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्वसु ।
नाम्ना सा तु जया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।।
तस्यां सम्पूजितः कृष्णः प्रीतो भवति सर्वथा ।।३३९।।

पक्षवर्धिनी द्वादशी व्रत करके रात्रि को गायन वादन के साथ जागरण करे ।।३३६।।

पुराण पाठ सहित हार्दिक भाव से जो मनुष्य एकादशी के जागरण की स्तुति प्रशंसा नहीं करते हैं उनके घर में सात जन्मों तक उत्सव महोत्सव नहीं हो सकते । और जो जागरण की स्तुति प्रशंसा करते हैं उनके सदा ही उत्सव महोत्सव होते रहेंगे, वह एक जन्म ही नहीं पांच दश जन्मों तक चलता रहेगा ।।३३७-३३८।।

।। इति पक्षवर्धिनी माहात्म्यम् ।।

जया माहात्म्य कहा जाता है—

सनत्कुमारों ने कहा—शुक्लपक्ष की द्वादशी को यदि पुनर्बसु नक्षत्र हो तो वह जया नाम वाली तिथि समस्त तिथियों में उत्तम मानी जाती है । उस दिन पूजा करने पर भगवान श्रीकृष्ण सब प्रकार से प्रसन्न होते हैं ।।३३९।।

अथ विजयामाहात्म्यं, वाराहे—

द्वादश्यां तु सिते पक्षे यत्रर्क्षं श्रवणं भवेत् ।
नाम्ना तु विजया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥३४०॥
तस्यां जगत्पतिर्देवः सर्वदेवेश्वरो हरिः ।
प्रत्यक्षतां प्रयात्यत्र तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥३४१॥

अथ जयन्तीमाहात्म्यं, नारदः—

यदा च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते ।
जयन्ती नाम सा ज्ञेया सर्वपापहरा तिथिः ॥३४२॥
तत्र चाराधितो विष्णुरात्मानं च पराजितम् ।
मन्यते देवदेवेशः सद्धर्मरसवित्तमः ॥३४३॥

अथ पापनाशिनी माहात्म्यम्—

श्रीद्वादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षं यत्र संगतम् ।
तिथौ तस्यां तु सा प्रोक्ता विष्णुना पापनाशिनी ॥३४४॥

विजयाद्वादशी का माहात्म्य वाराह पुराण में बतलाया है—शुक्लपक्ष की द्वादशी को यदि श्रवण नक्षत्र आ जाय तो वह विजया महाद्वादशी कहलाती है, उस दिन की साधना से जगत्पति सर्वेश्वर श्रीहरि का प्रत्यक्ष हो सकता है। उसके व्रत का अनन्त फल बतलाया है ॥३४०-३४१॥

जयन्ती माहात्म्य—

शुक्लपक्ष की द्वादशी को यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो वह समस्त पापों को हरने वाली जयन्ती महाद्वादशी कहलाती है ॥३४२॥

उस दिन आराधना करने से धर्म रस के ज्ञाता भगवान् विष्णु भक्त के वशीभूत हो जाते हैं ॥३४३॥

तस्यामाराध्य गोविन्दं जगतामीश्वरं परम् ।
सम्पूज्य जन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥३४५॥
यस्तूपवासं कुरुते तिथौ तस्यां द्विजोत्तम ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥३४६॥
एकादश्या गुणदोषैः करणाकरणे बुधैः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां नित्यतैवाभिधीयते ॥
तत्रादौ महिमोक्तितोऽन्वयेन प्रतिपाद्यते ॥३४७॥
नारदीये बशिष्ठस्तथा—
एकादशीसमुत्थेन वह्निना पातकेन्धनम् ।
भस्मतां याति राजेन्द्र अपि जन्मशतोद्भवम् ॥३४८॥

पापनाशिनी माहात्म्य—

शुक्लपक्ष की द्वादशी को यदि पुष्य नक्षत्र हो तो उसे भगवान् ने पापनाशिनी महाद्वादशी कही है ।।३४४।।

उस दिन जगदीश्वर गोबिन्द की पूजा करके साधक जन्म जन्मान्तरों के पापों से मुक्त हो जाता है ।।३४५।।

उस दिन उपवास करने से हे द्विजोत्तम ! समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में सम्मानित होता है ।।३४६।।

उस महाद्वादशी के व्रत करने में बहुत से गुण हैं, और व्रत न करने से बहुत से दोष हैं, इसलिये अन्वय और व्यतिरेक प्रमाणों से इनका व्रत सदा करना चाहिये । इनकी महिमा कही गई है अब और भी प्रतिपादन किया जाता है ।।३४७।।

नारदीयपुराण में वशिष्ठजी ने कहा है—एकादशी व्रत से प्रज्वलित अग्नि से सैकड़ों जन्मों के पातकरूपी समस्त ईंधन जल जाते हैं ।।३४८।।

नेदृशं पावनं किञ्चिन्नराणां भूप विद्यते ।
यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ॥३४६॥
तावत्पापानि देहेऽस्मिँस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप ।
यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम् ॥३५०॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयायुतानि च ।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५१॥
एकादशी समं किञ्चित्पापत्राणं न विद्यते ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ॥३५२॥
सुकलत्रप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रदायिनी ।
न गंगा न गया भूप न काशी न च पुष्करः ॥३५३॥
न चापि कौरवक्षेत्रं न रेवा न च रेणुका ।
यमुना चन्द्रभागा च तुल्या न तु हरेर्दिनात् ॥३५४॥

हे नरेन्द्र ! मनुष्यों के लिये जैसा पद्मनाभ भगवान् का दिन (एकादशी) पापनाशक है वैसा और कोई पवित्र साधन नहीं है। हे मनुजेश्वर ! जब तक एकादशी का व्रत न करे तब तक ही मनुष्य के इस देह में पाप ठहर सकते हैं ॥३४९-३५०॥

हजारों अश्वमेध और दश हजार वाजपेय यज्ञ भी एकादशी व्रत महिमा की एक कला की समता नहीं कर सकते ॥३५१

एकादशी जैसा पापों से छुटकारा कराने वाला और कोई साधन नहीं है। इससे आरोग्य और स्वर्ग एवं मोक्ष पर्यन्त फल प्राप्त हो सकता है ॥३५२॥

इसके व्रत से साध्वी स्त्री, राज्य, पुत्र की प्राप्ति होती है। हे भूपाल ! गंगा, गया, काशी, पुष्कर,कुरुक्षेत्र, रेवा, रेणुका-तीर्थ, यमुना, चन्द्रभागा भी एकादशी के व्रत की समता नहीं कर सकती है ॥३५३-३५४॥

अनायासेन राजेन्द्र प्राप्यते वैष्णवं पदम् ।
चिन्तामणिसमा ह्येषा अथवापि निधेः समा ॥३५५॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

सर्वप्रायश्चित्तमिदं संसारोत्तारकं परम् ।
एकादशीव्रतं विप्र कुर्वन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥३५६॥

सर्वपुराणे मुनीनां सुनिश्चितमिदं मतम् ।
उपोष्यैकादशीमेकां प्रसंगेनापि मानवः ॥३५७॥

न याति यातनां यामीमिति नोपमतं श्रुतम् ।
एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं वैश्यमानवैः ॥३५८॥

एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ।
एकादशीसमं किञ्चित्पुण्यं लोके न विद्यते ॥
व्याजेनापि कृता यैस्ते वशं याति न भास्करेः ॥३५९॥

हे राजेन्द्र ! यह चिन्तामणि एवं निधि के समान है । इसके व्रत से अनायास ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो सकती है ।।३५५।।

ब्रह्मवैवर्त्त में कहा है—हे विप्र ! संसार समुद्र से पार करने वाला यह सर्वोपरि प्रायश्चित्त है । एकादशी का व्रत करने वाला मुक्ति की प्राप्ति कर लेता है ।।३५६।।

समस्त पुराणों में मुनियों का यही (उपर्युक्त) सुनिश्चित मत है । प्रसंग वश भी एकादशी का व्रत करने वाला मनुष्य यम की यातना नहीं भोगता । युवक मनुष्यों द्वारा ग्यारह इन्द्रियों से होने वाले समस्त पाप एकादशी के व्रत से विलीन हो जाते हैं । अधिक क्या ! छल कपट से भी एकादशी का व्रत करने वालों को यमलोक का भय नहीं रहता । अतः इसके समान लोक में और कोई भी पवित्र साधन नहीं है ।।३५७-३५९।।

तत्त्वसारे—

मातेव सर्वभूतानामौषधं सर्वरोगिणाम् ।
रक्षार्थं सर्वलोकानां निर्मितैकादशी तिथि: ॥३६०॥

नानादु:खसमाकीर्णे संसारे नरजन्मनि ।
एकादश्युपवासीय: स धन्य: स च बुद्धिमान् ॥३६१॥

एकामेकादशीं वाऽपि समुपोष्य जनार्द्दनम् ।
कामतो वा समभ्यर्च्य संसारान्मुक्तिमाप्नुयात् ॥३६२॥

कुमारा:—

प्रसंगादथवा दम्भाल्लोभाद्वा त्रिदशाधिप ।
एकादश्यां व्रतं कृत्वा सर्वदु:खाद्विमुच्यते ॥३६३॥
संसारसर्पदष्टानां नराणां पापकर्मणाम् ।
एकादश्युपवासेन सद्य एव सुखं भवेत् ॥३६४॥

तत्वसार में कहा है—सम्पूर्ण भूतों का माता के समान पालन और समस्त रोगों से मुक्त करने वाली औषधि के रूप से एकादशी तिथि का प्रभु ने निर्माण किया है ॥३६०॥

अनेक दु:खों से समाकुल इस संसार में उसी मानव का जन्म सफल है जिसने एकादशी का व्रत किया है, वही बुद्धिमान और वही धन्य है ॥३६१॥

केवल एकादशी का व्रत और भगवान की आराधना से ही संसार सागर से तर सकता है ॥३६२॥

यही आशय श्रीसनत्कुमारों ने प्रकट किया है—हे देवेन्द्र ! दम्भ लोभ अथवा किसी प्रसंग से भी जिसने एकादशी का व्रत किया हो वह समस्त दु:खों से मुक्त हो जाता है ॥३६३॥

संसाररूपी सर्प से डसे हुए पापी मनुष्यों को एकादशी के व्रत से बहुत जल्दी ही सुख मिल सकता है ॥३६४॥

स्कान्दे—

एकतः पृथिवीदानमेकतो हरिवासरः ।
नसमं कविभिः प्रोक्तं वासरो ह्यधिकः स्मृतः ॥३६५॥

भाविष्ये—

एकादशी महापुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ।
भक्तेस्तु दीपिनी विष्णोः परमार्थगतिप्रदा ॥३६६॥

यामुपोष्य नरो भक्त्या न संसारी भविष्यति ।
एकादश्यां निराहारी यो भुंक्ते द्वादशीदिने ॥३६७॥

न दुर्गतिमवाप्नोति नरकाणि न पश्यति ॥
कृत्वा पापसहस्राणि एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यामर्चयेद्विष्णुं न स दुर्गतिमाप्नुयात् ॥३६८॥

स्कन्दपुराण में कहा गया है—समस्त पृथ्वी का दान और एकादशी का व्रत इन दोनों की तुलना करने पर एकादशी के व्रत को ही विद्वानों ने विशिष्ट बतलाया है ।।३६५।।

भविष्यपुराण में यही कहा गया है—एकादशी बड़ी पवित्र तिथि है इसके व्रत से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । यह भगवद् भक्ति को प्रकाशित करती है, और परमगति प्राप्त कराती है ।।३६६।।

एकादशी का व्रत करने वाला संसार के झंझटों में नहीं फँस सकता, जो व्यक्ति एकादशी को निराहार उपवास करके द्वादशी को पारणा करता है, वह कभी भी नरकों की दुर्गति का अनुभव नहीं करता । हजारों पापों का करने वाला भी यदि एकादशी का व्रत करके द्वादशी को भगवान् की पूजा अर्चा करता है तो उसकी दुर्गति नहीं हो सकती ।।३६७ ३६८।।

कुमाराः—

कृत्वा पापसहस्राणि कृत्वा पापशतानि च ।
एकामेकादशीं भक्त्या समुपोष्य शुचिर्भवेत् ॥३६९॥

स्कान्दे—

एकादशीं प्रपन्ना ये नरा नरवरोत्तमाः ।
ते द्वन्द्वबाहवो भूत्वा नागारिकृतवाहनाः ॥३७०॥
स्रग्विणः पीतवस्त्रा हि प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ।
एष प्रभावो हि मया द्वादश्याः परिकीर्तितः ॥
पापेन्धनस्य घोरस्य पावकाख्यो महीपते ॥३७१॥

सौरधर्मेषु—

एकतश्चाग्निहोत्रादि द्वादशीमेकतः प्रभुः ।
तुलया तोलयंस्तत्र द्वादशी च विशिष्यते ॥३७२॥

यही आशय सनकादिकों ने व्यक्त किया है—सैकड़ों और हजारों पाप करके भी जो भक्तिपूर्वक एक बार एकादशी का व्रत कर लेता है वह पवित्र (निष्पाप) हो जाता है ॥३६९॥

स्कन्दपुराण में कहा है—जो उत्तम भगवद्भक्त मनुष्य एकादशी का व्रत करते हैं। वे चतुर्भुज़ी रूपसे गरुड़ पर चढ़कर पीताम्बर और माला धारण किये हुए वैकुण्ठ लोक को जाते हैं। एकादशी एवं द्वादशी व्रत का ऐसा प्रभाव है। पाप रूपी ईंधन को जलाने के लिये इसे महान पावक समझना चाहिये ॥३७०-३७१॥

सौरधर्म में लिखा है—एक ओर अग्निहोत्र आदि साधन और एक ओर द्वादशी व्रत इन दोनों की तुलना की जाय तो एकादशी का व्रत ही विशिष्ट सिद्ध होगा ॥३७२॥

स्कान्दे—

अभोज्यभोजनाज्जातमगम्यगमनाच्च यत् ।
अयाज्ययाजनाद्यस्तु अभक्ष्याणां च भक्षणात् ॥३७३॥
अस्पृश्यस्पर्शनाद्यत्तु परेषां निन्दया च यत् ।
विहिताकरणाद्यच्च परवित्तापहारतः ॥३७४॥
ज्ञानाज्ञानकृतं यच्च पातकं चोपपातकम् ।
तत्सर्वं विलयं याति एकादश्यामुपोषणात् ॥३७५॥

वैष्णवतन्त्रे—

एकादशी महापुण्या विष्णोरीशस्य वल्लभा ।
तस्यामुपोषितो यस्तु भक्तिमान् पूजयेद्धरिम् ॥
तस्यां पापानि नश्यन्ति विष्णोर्भक्तिश्च जायते ॥३७६॥

वायवीये—

एकादशीव्रतं यस्तु भक्तिमान् कुरुते नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स विष्णोर्याति मन्दिरम् ॥३७७॥

स्कन्दपुराण में कहा है—अभोज्य भोजन, अगम्या गमन, अयाज्य याजना, अभक्ष्य भक्षण, अस्पर्श्य के स्पर्श से दूसरों की निन्दा, शास्त्र के विधान को न करने से दूसरों के धन को हरने से जान अजान में जो पातक या उपपातक बन जाते हैं वे सब एकादशी के व्रत से समाप्त हो जाते हैं ॥३७३-३७५॥

वैष्णव तन्त्र में कहा है—एकादशी भगवान को बड़ी प्रिय है, अतः इस दिन उपवास करके जो बुद्धिमान भगवान की अर्चा करता है उसके सब पाप मिट जाते हैं और वह भगवान् का भक्त बन जाता है ॥३७६॥

यही आशय वायुपुराण में व्यक्त हुआ है—एकादशी का

गारुडे—

एकादशीव्रतं भक्त्या यः करोति नरः सदा ।
स विष्णोर्लोकं व्रजति याति विष्णोः सरूपताम् ॥३७८॥

आग्नेये—

एकादश्यामुपवासं यः करोति सदा नरः ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम् ॥३७९॥

गारुडे—

यः करोति नरो भक्त्या एकादश्यामुपोषणम् ।
स याति विष्णुसालोक्यं याति विष्णोः सरूपताम् ॥३८०॥

वैष्णवे—

ओंकारः सर्ववेदानां यथैवाद्यः प्रपूजितः ।
तथा सर्वव्रतानां च द्वादशीव्रतमुत्तमम् ॥३८१॥

व्रत करने वाला सब पापों से मुक्त होकर वैकुण्ठ को प्राप्त कर लेता है ॥३७७॥

गरुड़पुराण में भी यही कहा गया है—भक्तिपूर्वक सदा एकादशी व्रत करने वाला विष्णुलोक में पहुँच कर विष्णु भगवान के समान रूप वाला बन जाता है ॥३७८॥

यही आशय अग्निपुराण के वचन का है ॥३७९॥

इसी से मिलता हुआ तात्पर्य गरुड़पुराण के वाक्य का है ॥३८०॥

विष्णुपुराण में कहा गया है—जिस प्रकार ओंकार समस्त वेदों का आदिमूल है उसी प्रकार समस्त व्रतों में एकादशी व्रत की प्रधानता है ॥३८१॥

अन्वयेन प्रतिपादिता नित्यतैकादशीव्रते ।
अकृतौ प्रत्यवायेन व्यतिरेकेण दृश्यते ॥३८२॥

नारदीये तथा—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥३८३॥

रटन्तीह पुराणानि भूयो-भूयो वरानने ।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥३८४॥

वरं स्वमातृगमनं वरं गोमांस-भक्षणम् ।
वरं हत्यासुरापानं नैकादश्यां तु भोजनम् ॥३८५॥

पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वाऽपि सुहृत्तमः ।
पद्मनाभदिने भुंक्ते विग्राह्यो दस्युवद्भवेत् ॥३८६॥

अन्वय और व्यतिरेक दोनों के द्वारा एकादशी व्रत की नित्यता मानी गई अतः उसे न करनेसे प्रत्यवाय होता है ॥३८२

नारदीयपुराण में कहा है—ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप एकादशी के दिन अन्न में रहते हैं। अतः समस्त पुराण आदेश देते हैं कि एकादशी को अन्न भक्षण नहीं करना चाहिये ॥३८३-३८४॥

स्वमातृगमन, गोमांस भक्षण, हत्या, सुरापान, इन पापों से भी बढ़कर पाप है एकादशी को अन्न भक्षण करना ॥३८५॥

पिता पुत्र स्त्री अथवा प्रिय से प्रिय सुहृद भी यदि एकादशी को अन्न भक्षण करता है तो उसे डाकू के समान विग्राह्य समझना चाहिये ॥३८६॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

स केवलमघं भुंक्ते यो भुंक्ते हरिवासरे ।
दिनेऽत्र सर्वपापानि भवन्त्यन्नस्थितानि तु ॥
तानि मोहेन योऽश्नाति स न पापैर्विमुच्यते ॥३८७॥

विष्णुस्मृतौ—

एकादश्यां न भुञ्जीत कदाचिदपि मानवः ॥३८८॥

स्कान्दे—

मातृहा पितृहा चैव भ्रातृहा गुरुहा तथा ।
एकादश्यां तु यो भुंक्ते ब्रह्मलोकच्युतो भवेत् ॥३८९॥
एकादश्यां तु भुञ्जतां रंडा-वानस्थ न्यासिनाम् ।
महापातकविशेषो नारदीये सुसूचितः ॥३९०॥
एकादशी दिने रंडा यतिश्चैव महातमाः ।
भुंक्ते विगीतवचनैर्विष्णुधर्म-विमोहितः ॥
पच्यते ह्यन्धतामिस्रे यावदाहूतसम्प्लवम् ॥३९१॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण का वाक्य है—एकादशी को समस्त पाप अन्न में रहते हैं, यदि कोई मोह से उस दिन अन्न भक्षण करता है वह पापों को ही अपने अन्दर ले रहा है ॥३८७॥

विष्णुस्मृति में कहा है—एकादशी को कभी भी अन्न भक्षण न करे ॥३८८॥

एकादशी के दिन अन्न भक्षण करने वाले को माता पिता भाई और गुरु की हत्या करने के समान पाप लगता है ॥३८९॥

वानपृस्थ सन्यासी और विधवा स्त्री ये एकादशी को अन्न भक्षण करें तो उन्हें महापातक लगता है ऐसा नारदीयपुराण में कहा गया है ॥३९०॥

कात्यायनः--

विधवा या भवेन्नारी भुंक्ते एकादशीदिने।
तस्यास्तु सुकृतं नश्येद्भ्रूणहत्या दिनेदिने ॥३६२॥

किञ्च--

षड्भिर्मासोपवासैश्च यत्फलं परिकीर्तितम्।
विष्णोर्नैवेद्यशिष्टेन फलं तद्भुञ्जतां कलौ
इत्यादि यच्छ्रूयते तत्त्वेकादशीदिनं विना ॥३६३॥

तथा महाभारते कृष्णः--

प्रसादान्नं सदाग्राह्यमेकादश्यां न नारद।
रमादिसर्वदेवानां मनुष्याणां तु का कथा ॥३६४॥

वैष्णव धर्म के सम्बन्ध में विमोहित यति आदि एकादशी को अन्न खायें तो प्रलय पर्यन्त अन्धतामिश्र नरक में पड़े रहते हैं ॥३६१॥

कात्यायन का भी यही कथन है—विधवा स्त्री यदि एकादशी को अन्न खाय तो उसके समस्त सुकृत नष्ट हो जाते है और उसे प्रतिदिन ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥३६२॥

यद्यपि शास्त्र में भगवत्प्रसादी के सम्बन्ध में ऐसे उल्लेख मिलते हैं—जो फल छः महीने के उपवास से मिलता है वह कलियुग में भगवत्प्रसादी पाने वाले को एक ही दिन में मिल जाता है। किन्तु ऐसे वाक्य एकादशी के दिन को छोड़कर अन्य दिनों में भगवत्प्रसादी अन्न भक्षण के सम्बन्ध में समझना चाहिये ॥३६३॥

महाभारत में श्रीकृष्ण के वाक्य ऐसे ही हैं—हे नारद ! यद्यपि भगवत्प्रसादी अन्न का सदा उपयोग करना चाहिये किन्तु

कुमाराः––

एकादश्यां प्रसादान्नं यदि भुञ्जीत वैष्णवः ।
सद्धर्ममोहितो ज्ञेयो न तु सद्धर्मपण्डितः ॥३८५॥

पाद्मे नारदः––

वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्या प्रसादधीः ।
विष्णोरर्च्चा वृथा तस्य नरकं घोरमाप्नुयात् ॥३९६॥

श्राद्धाग्रहं परित्यज्यैकादशीं समुपोषयेत् ।
नोपेक्षेत दोषश्रुतेर्ब्रह्मवैवर्त्तके तथा ॥३८७॥

एकादशी के दिन तो श्रीलक्ष्मी आदि देवों को भी वह नहीं लेना चाहिये, मनुष्यों की तो बात ही क्या ॥३९४॥

श्रीसनत्कुमारों ने स्पष्ट कहा है – यदि कोई वैष्णव एकादशी के दिन भगवत्प्रसाद अन्न का सेवन करता है उसे धर्मज्ञ नहीं समझना चाहिये, अपितु धर्म विमोहित समझना चाहिये ॥३८५॥

पद्मपुराण में ऐसे श्रीनारदजी के वचन मिलते हैं––यदि कोई वैष्णव प्रसाद के महत्व की दृष्टि से भी एकादशी को प्रसादी अन्न का उपभोग करता है, उसके द्वारा की हुई समस्त भगवद् अर्चा विफल हो जाती है, और उसे घोर नरक भोगना पड़ता है ॥३९६॥

एकादशी के दिन श्राद्ध भी हो तो श्राद्ध के आग्रह को भी छोड़कर उपवास ही करना चाहिये, एकादशी को श्राद्ध के दिन अन्न भक्षण करनै से ब्रह्मवैवर्तपुराण में महान् दोष बतलाया है ॥३८७॥

ये कुर्वन्ति महीपाल श्राद्धमेकादशीदिने ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दाता भोक्ता परेतकः ॥
तर्हि किं श्राद्धलोपः स्यान्न कर्त्तव्यं व्यवस्थया ॥३९८॥

तथा पाद्मे--

एकादश्यां यदा राम श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ॥३९९॥

तत्रैवोत्तरखण्डे—

एकादश्यां तु प्राप्तायां मातापित्रोर्मृताहनि ।
द्वादश्यां तत्प्रदातव्यं नोपवासदिने क्वचित् ॥
गर्हितान्नं च नाश्नन्ति पितरश्च दिवौकसः ॥४००॥

हे महीपाल ! एकादशी के दिन जो श्राद्ध करते हैं अर्थात् श्राद्ध का अन्न खाते हैं और खिलाते हैं वे दाता भोक्ता और परेत तीनों नरक में जाते हैं। यहां प्रश्न होता है--एकादशी के दिन श्राद्ध आजाय तो क्या उसे सर्वथा त्याग दे ? नहीं नहीं। शास्त्र में उसकी भी व्यवस्था की गई है ॥३९८॥

पद्मपुराण में ऐसा वाक्य मिलता है—हे राम ! यदि एकादशी के दिन श्राद्ध (नैमित्तिक) आजाय तो वह उस दिन न करके द्वादशी के दिन कर लेना चाहिये ॥३९९॥

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में भी ऐसी ही व्यवस्था दी है—यदि एकादशी के उपवास वाले दिन ही माता पिता की मृत्यु का दिन आजाय तो उस दिन श्राद्ध न करके दूसरे दिन द्वादशी को श्राद्ध करे क्योंकि पितर और देवता निन्दित अन्न को ग्रहण नहीं करते हैं। एकादशी व्रत के दिन का अन्न निन्दित माना है ॥४००॥

स्कान्दे—

एकादशी यदा नित्या श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।
उपवासं तदा कुर्याद्द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ॥४०१॥

किञ्चाघ्राणपूर्वकं यच्छ्राद्धं वाराह ईरितम् ।
उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ॥
उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम्
इति–तत्त्ववैष्णव-विषयम् ॥४०२॥

तथा नारदः—

कव्यमाघ्राय कुर्वन्ति वैष्णवागमवर्जिताः ।
पापान्नैः पितृवञ्चका एकादशीं न वैष्णवाः ॥४०३॥

स्कन्दपुराण में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है—यद्यपि एकादशी का व्रत नित्य माना जाता है और श्राद्ध नैमित्तिक फिर भी एकादशी व्रत के दिन श्राद्ध आजाय तो श्राद्ध न करें एकादशी का उपवास ही करें ॥४०१॥

कदाचित् श्राद्ध करे भी तो उसके अन्न का भक्षण न करके उसे नाक से सूंघ लेवे, यद्यपि ऐसा वाराहपुराण में कहा है—"नित्य व्रत के दिन नैमित्तिक श्राद्ध आजाय तो उपवास ही करे पितृ सेवित अन्न को नासिका से केवल सूंघ लेवे" तथापि ऐसा विधान अवैष्णव विषयक समझना चाहिये ॥४०२॥

श्रीनारदजी ने कहा है—जो एकादशी व्रत के दिन कव्य (पितृ अन्न) को सूंघकर श्राद्ध कर लेते है वह वैष्णव आगमों में वर्जित हैं, ऐसा करने वालों को पितरों को ठगने वाला कहा है वैष्णव नहीं माना ॥४०३॥

एकादशीव्रते नित्ये नैमित्तिकं करोति यः।
सोऽविद्यामोहितो मन्दस्तथा च तत्त्वसागरे ।।४०४।।
एकादशीं परित्यज्य योऽन्यं व्रतमुपासते।
स करस्थं महारत्नं त्यक्त्वा लोष्टं हि याचते ।।४०५।।
अत्र पक्षद्वयेऽप्येव व्रतस्य नित्यता ध्रुवा।
यच्चोपन्यस्यते कौर्मे मतान्तरं विरोधकम् ।।४०६।।
वानप्रस्थो यतिश्चैव शुक्लामेव सदा गृहीइति।
तत्त्ववैष्णवविषयं च बहुवाक्यविरोधतः ।।४०७।।
तथा च तत्त्वसागरे--
यथा शुक्ला तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा।
तुल्ये ते मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ।।४०८।।

तत्वसागर में ऐसा वचन मिलता है--जो नित्य एकादशी के दिन नैमित्तिक श्राद्ध को करता है उसे मन्द बुद्धि मूर्ख समझना चाहिये ।।४०४।।

एकादशी व्रत का त्याग करके जो पितृ व्रत की उपासना करता है, उसे हाथ में आये हुए रत्न का त्याग करके लोहे के टुकड़े की याचना करने वाले मूर्ख के समान समझना चाहिये ।।४०५।।

उपर्युक्त दोनों पक्षों (सूंघकर श्राद्ध करना अथवा द्वादशी को श्राद्ध करना) में एकादशी व्रत की नित्यता सिद्ध होती है। जो कूर्मपुराण में शुक्लपक्ष वाली एकादशी को ही नित्यता दी गई है--"वानप्रस्थ सन्यासी और गृहस्थी शुक्लपक्ष वाली एकादशी को ही सदा करें" वह अवैष्णवों के सम्बन्ध में समझना चाहिये, क्योंकि उस मत के विरुद्ध बहुत से वाक्य मिलते हैं ।।४०६-४०७।।

नारदः—

नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।
पक्षे पक्षे तु कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥
एकादश्यामुपासीत पक्षयोरुभयोरपि ॥४०६॥

आग्नेये—

गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥

विष्णुरहस्ये—

य इच्छेद्विष्णुना वासं सुतसम्पदमात्मनः ।
एकादशी मुपासीत पक्षयोरुभयोरपि ॥४११॥

देवलः—

न शंखेन पिबेत्तोयं न खादेन्मांससूकरौ ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥४१२॥

तत्वसागर में स्पष्टीकरण किया गया है—जैसी शुक्लपक्ष की एकादशी है वैसी ही कृष्णपक्ष की एकादशी माननी चाहिये। जो ऐसा मानता है उसे ही वैष्णव कहना चाहिये ॥४०८

नारदजी ने कहा है—वैष्णव भक्तों को चाहिये कि प्रत्येक पक्ष की एकादशी का उपवास करें। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों की एकादशी तुल्य हैं ॥४०६॥

अग्निपुराण में स्पष्ट कहा गया है—गृहस्थ ब्रह्मचारी अग्निहोत्री चाहे कोई भी हो, दोनों ही पक्षों वाली एकादशी को अन्न का सेवन न करें ॥४१०॥

विष्णुरहस्य में भी ऐसा ही उल्लेख है—जो पुत्र पौत्रादि धन सम्पत्ति और अन्त में विष्णुलोक की प्राप्ति चाहे वह दोनों पक्षों की एकादशी का व्रत अवश्य करे ॥४११॥

पक्षेपक्षे हि सम्प्राप्त एकादश्यां तु वैष्णवः ।
कुर्याद्व्रतं महाविष्णोः कृतं रुक्माङ्गदादिभिः ॥४१३॥

व्यासः—

सपुत्रस्य सभार्यस्य स्वजनैर्भक्तिसंयुतैः ।
एकादश्युपवासेन पक्षयोरुभयोरपि ॥४१४॥
भाव्यमिति शेषः ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

सपुत्रश्च सभार्यश्च स्वजनैर्भक्ति संयुतः ।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि ॥४१५॥
स ब्रह्महा सुरापश्च कृतघ्नो गुरुतल्पगः ।
विवेचयति यो मोहादेकादश्यौ सिताऽसिते ॥४१६॥

देवलस्मृति में लिखा है—शख से जल न पीवे, सूकर आदि किसी का भी मांस न खाय और चाहे वह कृष्णपक्ष की हो चाहे शुक्लपक्ष की, एकादशी के दिन अन्न न खाय । प्रत्येक पक्ष में जब एकादशी आवे तो वैष्णव को उस दिन अवश्य व्रत (उपवास) करना चाहिये, जैसा कि रुक्मांगद आदि ने किया है ॥४१२-४१३॥

व्यासजी का वचन है—पुत्र स्त्री और भक्त स्वजन सबको दोनों ही पक्षों वाली एकादशी का व्रत करना चाहिये ॥४१४॥

विष्णु धर्मोत्तर में भी ऐसा ही आदेश मिलता है—स्त्री पुत्र कुटुम्बी सभी दोनों पक्षों वाली एकादशी का व्रत करें ॥४१५

जो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की एकादशियों में भेद भावना करते हैं उन्हें ब्रह्महत्या, मदिरापान, गुरु शय्या पर शयन, कृतघ्नता जैसा पाप लगता है ॥४१६॥

कालिकापुराणे—

सर्वेषामिह पापानामाश्रयः स तु कीर्त्तितः ।
विवेचयति यो मोहादेकादश्यौ सिताऽसिते ॥४१७॥

गारुडे—

शुक्ला वा यदि वा कृष्णा विशेषो नास्ति कश्चन ।
विशेषं कुरुते यस्तु पितृहा स प्रकीर्त्तितः ॥४१८॥

चतुःसनः—

एकादश्योर्द्वयोर्यस्तु विशेषं कुरुते नरः ।
तस्योद्धारं न पश्यामि यावदाहूतसंप्लवम् ॥४१९॥
यच्चान्यत्पुराणान्तर उपन्यस्तं मतान्तरम् ।
संक्रान्तौ कृष्णपक्षे तु रविशुक्रदिने तथा ॥४२०॥

कालिकापुराण में कहा गया है—जो शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की एकादशियों में मूर्खतावश न्यून धिकता एवं भेद भाव मानता हो उसे समस्त पापों का पात्र समझना चाहिये ॥४१७॥

गरुडपुराण में स्पष्ट है कि दोनों पक्षों की एकादशियों में कुछ भी विशेष भेद नहीं है जो भेद समझता है उसे पिता का हत्यारा समझना चाहिये ॥४१८॥

चारों सनकादिकों की आज्ञा है—जो शुक्ल और कृष्ण-पक्ष की एकादशियों में भेद भाव करते हैं उनका प्रलय पर्यन्त उद्धार होना कठिन है ॥४१९॥

जो दूसरे पुराणों में मतमतान्तरों की ऐसी बातें मिलती हैं कि—"संक्रान्ति रविवार, शुक्रवार वाली तथा कृष्णपक्ष की एकादशी को व्रत न करे" ये सब अवैष्णवों के विषय की बातें

एकादश्यां न कुर्वीत उपवासं न पारणमिति ।
तत्त्ववैष्णवविषयं वैष्णवोक्तिविरोधतः ॥४२१॥

वैष्णवविषयं तूक्तं कात्यायनस्मृतौ तथा ।
संक्रान्तौ रविवारे वा यदाप्येकादशी भवेत् ॥
उपोष्या सा महापुण्या सर्वपापहरीतिथिः ॥४२२॥

नारदः—

भानुवारसमोपेता तथा संक्रान्तिसंयुता ।
एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्र–विवर्द्धिनी ॥४२३॥

सर्वथा नित्यता चोक्ता विष्णुरहस्य–आप्तकैः ।
परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।
सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ॥४२४॥

समझनी चाहिये । क्योंकि इस मत के विपरीत बहुत से वचन मिलते हैं–जैसे कात्यायन स्मृति में कहा है—चाहे एकादशी के दिन संक्रान्ति हो चाहे रविवार या शुक्रवार, एकादशी का उपवास तो करना ही चाहिये । क्योंकि उस दिन उपवास रखने से समस्त पापों का नाश होता है ॥४२०-४२२॥

नारदजी ने भी यही कहा है– शुक्रवार या संक्रान्ति एकादशी के दिन आ जाये तो उस दिन व्रत करने से पुत्र पौत्र आदि की वृद्धिरूप और भी अधिक फल प्राप्त होता है ॥४२३॥

विष्णुरहस्य के विज्ञाताओं ने एकादशी व्रत की नित्यता बतलाई है । अतः चाहे कैसा भी हर्षोत्सव हो, चाहे महान् विपत्ति हो, मृतक सूतक में भी एकादशी के व्रत को नहीं छोड़ना चाहिये ॥४२४॥

स्कान्दे—

परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।
नैकादशीं त्यजेद् यस्तु तस्य दीक्षाऽस्तिवैष्णवी ॥४२५॥

एवं कुर्वन् नरो भक्त्या विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
अन्यथा कुरुते यस्तु स याति नरकं ध्रुवम् ॥४२६॥

एवमेकादशीव्रते समाख्याप्यैव नित्यताम् ।
अधिकारिणमादौ च विष्त्रगाख्यापयेन्नृणाम् ॥४२७॥

तत्र नारदः—

अष्टमाब्दाधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिवत्सरः ।
भुंक्ते यो मानवो मोहादेकादश्यां स पापभाक् ॥४२८॥

यही स्कन्दपुराण का आशय है—चाहे कैसी भी विपत्ति या महोत्सव क्यों न हो जिसने वैष्णवी दीक्षा ले रक्खी हो वह कभी भी एकादशी के व्रत को न छोड़े ॥४२५॥

ऐसे करने वाले भक्त को ही विष्णु सायुज्य रूपी मुक्ति प्राप्त होती है । जो इससे विपरीत करता है वह घोर नरक में पड़ता है ॥४२६॥

इस प्रकार पहले अधिकारी साधक को एकादशी व्रत की नित्यता बतलाकर फिर समस्त मनुष्यों में इसका प्रचार प्रसार करे ॥४२७॥

नारदजी ने कहा है—आठ वर्ष से अस्सी वर्ष की आयु तक जो मनुष्य मूढतावश एकादशी को अन्न खाता है, वह महान् पापी है ॥४२८॥

नारदीये—

अष्टवर्षाधिको मर्त्यो अशीतिर्नहि पूर्यते ।
यो भुंक्ते मामके राष्ट्रे विष्णोरहनि पापकृत् ॥४२६॥
स मे वध्यश्च दण्ड्यश्च निर्वास्यो विषयाद्बहिः ।
उपास्याश्रित विशेषान्विवेचयेद्भविष्यके ॥४३०॥

तथा—

शैवाः सौरा गाणपत्याः शाक्ताश्चान्योपसेवकाः ।
पूर्वविद्धानि व्रतानि कुर्वन्ति कारयन्ति च ॥४३१॥
विष्णुव्रतं सदा विप्र पूर्वविद्धं न कारयेत् ।
मनुष्येषु व्यवस्थाप्य ह्येवमेकादशीव्रतम् ॥४३२॥
विहितावश्यकः प्रातदशमीकृत्यमाचरेत् ।
आवश्यकस्तु तत्रादौ नियमस्तद्विधिस्तथा ॥४३३॥

नारदीयपुराण में एक नरेश का आदेश मिलता है— आठ वर्ष से ऊपर जब तक अस्सी वर्ष की न हो जाय तब तक जो व्यक्ति मेरे राष्ट्र में एकादशी को अन्न खाता है वह पापी मृत्यु पर्यन्त दण्ड पाने वाला एवं देश से वहिष्कार करने योग्य है, भिन्न-भिन्न उपास्यों के आश्रितों के विभेदों का भविष्य-पुराण में जिस प्रकार विवेचन किया है वह इस प्रकार है ।।४२६-४३०।।

शैव शाक्त गाणपत्य सौर और भी अन्य-अन्य देवों के उपासक पूर्वविद्धा तिथियों में व्रत करते कराते हैं, किन्तु विष्णु भगवान से सम्बन्धित व्रत कभी भी पूर्वविद्धा तिथि में नहीं करने चाहियें । अतः एकादशी व्रत भी पूर्वविद्धा तिथि में मनुष्यों को नहीं करना चाहिये ।।४३१-४३२।।

प्रातःकाल दशमी के दिन नित्यकर्म करके नियम लेना चाहिये ।।४३३।।

स्कान्दे--

गृह्णीयान्नियमं पूर्वं दन्तधावन--पूर्वकम् ।
नियमात्फलमाप्नोति न श्रेयो नियमं विना ॥४३४॥
आदौ गुरुगृहे गत्वा पश्चान्नियममाचरेत् ।
स्वं शिरः पादयोः कृत्वा पादौ स्पृष्ट्वा च मौलिना ॥४३५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा श्रीगुरुं प्रार्थयेत्ततः ।
नियमं देहि भो स्वामिन्नेकादश्यां मम प्रभो ॥
इति गुरूक्तमन्त्रेण स्वीकुर्यान्नियमं सुधीः ॥४३६॥

संकल्पमन्त्रः--

दशमीदिनमारभ्य करिष्येऽहं व्रतं तव ।
त्रिदिनं देवदेवेश निर्विघ्नं कुरु केशव ॥४३७॥
ततः श्रीकृष्णमभ्यर्च्य कृत्वा च पुनराह्निकम् ।
कृष्णशेषं सकृदद्य सायंप्रायः महोत्सवम् ॥
आहूय वैष्णवांस्तेन कुर्वीत कारयन्स्वयम् ॥४३८॥

स्कन्दपुराण में लिखा है—दन्तधावन आदि कृत्यों के पश्चात् नियम लेवे, क्योंकि बिना नियम लिये फल नहीं मिलता ॥४३४॥

गुरुदेव के घर (निवास स्थल) पर जाकर उन्हें प्रणाम करे, फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—'भगवन् मुझे एकादशी व्रत के नियम बतलाइये"। गुरुदेव जैसा नियम बतलावें, मन्त्र देवें, उनका पालन करे ॥४३५-४३६॥

भगवत्प्रार्थनापूर्वक इस प्रकार संकल्प करे—हे देव देवेश, आज दशमी के दिन से आरम्भ करके द्वादशी पर्यन्त, तीन दिन आपकी प्रेरणानुसार मैं व्रत करूँगा, उसे आप निर्विघ्न पूर्ण करवावें ॥४३७॥

तथा कुमाराः —

दशम्यां प्रातरुत्थाय कृतमैत्रादिको व्रती ।
आहूय वैष्णवान्पुण्यान्कुर्यात्तैः परमोत्सवम् ॥४३६॥

मुदितैर्मुदितः सम्यक् पताकादिविभूषितम् ।
तन्मार्जनोपलेपाभ्यां रंगपद्मादिशोभितम् ॥४४०॥

विविधैस्तोरणैश्चैलैस्ताम्बूलैर्हर्षयन् जनम् ।
तुलसीपुष्पमालाभिश्चन्दनैश्चाक्षतान्वितैः ॥४४१॥

गीतवादित्रघोषेण चामरच्छत्रभूषितम् ।
श्रीवैष्णवैर्मुदानृत्यैः श्रीहरेर्नामगर्जनैः ॥४४२॥

नीराजनैः सकर्पूरैर्विभवे सति वैष्णवः ।
स्वयं कुर्यान्महाविष्णोरुत्सवं जनवल्लभम् ॥४४३॥

फिर भगवान् श्रीकृष्ण की दैनिक पूजा करके उनके भोग लगा हुआ प्रसाद एक बार पावे सायंकाल वैष्णवों को बुलाकर वाद्यगान आदि के द्वारा महोत्सव करे ॥४३८॥

श्रीसनत्कुमार आदि ने भी ऐसी ही आज्ञा दी है—दशमी को प्रातः उठकर दैनिक कार्य करके पवित्र विचारों वाले प्रसन्न-चित्त वैष्णवों को बुलाकर उनके साथ महोत्सव कार्य करे, मन्दिर में ध्वजा पताका लगावे, स्वच्छ सफेदी या रंग करे, तोरण बंदनबार बांधे, सबको ताम्बूल देवे। तुलसी फूलमाला अक्षत चन्दन लगावे। चमर छत्र से भगवान् को सुशोभित करे, फिर गावे बजावे। भगवान के नामों की जयध्वनि करे। कपूर की आरती उतारे, अपने वैभव के अनुसार लोक-हितकारी महोत्सव करे ॥४३६-४४३॥

अभावे विभवस्यापि सर्वैः संहत्य वैष्णवैः ।
कर्त्तव्यः परया भक्त्या ह्युत्सवो विष्णुवल्लभः ॥४४४॥
भ्रामयेद् यानमारोह्य मन्दिरादौ समन्ततः ।
उत्सवे यानमारूढं महाविष्णुं प्रयत्नतः ॥४४५॥
अनुगच्छेत्स्वधर्मज्ञो ह्यनिष्टपरिशंकितः ।
नानुव्रजेत्तु यो मोहाद् व्रजन्तं जगदीश्वरम् ॥४४६॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माऽपि स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ।
विष्णूत्सवसमायातान् दृष्ट्वा हीनजनान् क्वचित् ॥४४७॥
न कार्या त्वशुचेः शंका पुण्यास्ते भक्तिसंयुताः ॥
सर्वे विप्रसमा ज्ञेयाः श्वपचाद्या न संशयः ।
ये कुर्वन्ति दिने विष्णोर्जागरं गीतकीर्तनम् ॥४४८॥

विशेष वैभव न हो तो प्रेमी वैष्णवों के साथ भक्तिपूर्वक यथाशक्ति उत्सव करे ॥४४४॥

भगवान् को विमान में विराजमान करके ग्राम या मन्दिर के चारों ओर भ्रमण करावे, उस विमान के पीछे-पीछे चले, भगवान की सवारी में सम्मिलित न होने से बड़ा अनिष्ट होता है। जो मूर्खतावश या अभिमान के कारण भगवान के विमान के साथ नहीं चलते वह चाहे कैसा भी ज्ञानी ध्यानी क्यों न हो मरकर ब्रह्मराक्षस ही होता है। महोत्सव में हीनजन भी भक्ति से कदाचित् सम्मिलित हों तो उन्हें अपवित्र न माने, क्योंकि भगवद्भक्त अपवित्र नहीं होता। जो दिन रात भगवान् का नाम संकीर्तन पदगान जागरण आदि करते हैं वे श्वपच (चाण्डाल) जाति के भी हों तब भी उन्हें ब्राह्मणों के समान पवित्र ही समझना चाहिये ॥४४५-४४८॥

सात्वते तथा—

विष्ण्वालय समीपस्थान् विष्णुसेवार्थमागतान् ।
चाण्डालान्पतितान्वापि स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत् ॥४४६॥
उत्सवे वासुदेवस्य स्नायाद्योऽशुचिशंकया ।
तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥४५०॥

विष्णुस्मृतौ—

देवयात्राविवाहेषु यज्ञोपकरणेषु च ।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न निन्द्यते ॥४५१॥
कृत्वोत्सवं महाविष्णोर्जनानां घोषयेद्व्रतम् ।
मत्तेभकुम्भमाश्रित्य पटहः श्रूयते यथा ॥४५२॥

सात्वत तन्त्र में भी कहा है—विष्णु मन्दिर के समीप रहने वाले पतित चाण्डाल आदि भगवत् सेवा के लिये उत्सव में आवें और उनका स्पर्श हो जाय तो स्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं ।।४४६।।

कदाचित भगवान के उत्सव में आये हुए व्यक्तियों में अपवित्रता की शंका से कोई स्नान करे तो भक्तों का अपमान-रूपी अपराध समझना चाहिये, ऐसे अपराध करने वाले पर दृष्टि भी पड़ जाय तो वस्त्रों सहित जल में प्रविष्ट होकर स्नान करे ।।४५०।।

विष्णुस्मृति में लिखा है—देवयात्रा, विवाह, यज्ञ आदि सभी उत्सवों में स्पर्शास्पर्श का कुछ भी दोष नहीं ।।४५१।।

दशमी को उत्सव करके अग्रिम दिन एकादशी व्रत करने की ऐसी घोषणा करे जैसे मतवाले हाथी पर बैठकर कोई डोंडी पीटता हो ।।४५२।।

रुक्मांगदस्य नारदीये जगदुद्धरणस्तथा ।
अष्टवर्षाधिको बालोऽशीतिर्नहि पूर्यते ॥४५३॥
यो भुंक्ते मामके राष्ट्रे दण्ड्योऽसौ दस्युवद्भवेत् ।
प्रातर्हरिदिनं लोकास्तिष्ठध्वं चैकभोजना: ॥४५४॥
अपक्षारगणाः सर्वे हविष्य अनिषेवणा: ।
अवनितल्पशयना: प्रियासंगविवर्जिता: ॥४५५॥
स्मरध्वं देवदेवेशं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
सकृद्भोजनसंयुक्ता द्वादश्यां च भविष्यथ ॥४५६॥
क्षारगणश्च स्मृतौ—
तिलमुद्गादृते शिम्बं शस्यं गोधूमकोद्रवा: ।
चणकं देवधान्यं च एष क्षारगण: स्मृत: ॥४५७॥

नारदीयपुराण में जगत का उद्धार करने वाली रुक्मांगद की एक ऐसी घोषणा है–आठ वर्षसे अधिक अवस्था वाले बालकों की जब तक अस्सी वर्ष की आयु न हो जाय तब तक उनमें से एकादशीके दिन मेरे राज्यमें किसीने अन्नका उपभोग किया तो वह चोर और डाकुओं की भांति दण्ड का भागी होगा ॥४५३

सभी मनुष्यों को ध्यान रहे कल एकादशी का व्रत रहेगा, अत: आज दशमी को भी सभी एक ही टाइम भोजन करना ॥४५४॥

क्षारगण का कोई सेवन न करे सभी हविष्य अन्न का उपयोग करें । रात्रि को पृथ्वी पर ही सोवें । दशमी से द्वादशी तक कोई भी स्त्री संग न करे ॥४५५॥

देवदेवेश्वर पुराण पुरुषोत्तम भगवान का स्मरण करे, द्वादशी को भी सभी एकाहार ही करें ॥४५६॥

हविष्यान्नं पाद्मे—
हैमन्तिकं सिताश्विन्यं धान्यं मुद्गास्तिला यवा: ।
कलापकङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥४५८॥
प्राष्टिका कालशाकश्चमूलकं क्रमुकेतरत् ।
कन्द: सैन्धवसामुद्रे लवणे दधिसर्पिषी ॥४५९॥
पयोऽम्बुघृतसारं च पनसाम्रहरीतकी ।
पिप्पलीजीरकं चैव नागरंजक चिंचिणी ॥४६०॥
कदली लवली धात्रीफलान्यगुडमैक्षवम् ।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते ॥४६१॥
व्रतघोषणप्रसंगेनैकादशी क्रियोदिता ।
अत: प्रस्तुता दशमी नियमा एव वै तथा ॥४६२॥

स्मृति शास्त्र में क्षारगण इस प्रकार बतलाये हैं—तिल और मूंग के अतिरिक्त शिला किया हुआ (चुना हुआ) अन्न गेहूं कोदों चना देवधान्य ये सब क्षारगण में सम्मिलित हैं ।।४५७।।

पद्मपुराण में हविष्यान्न इस प्रकार बतलाये हैं—हेमन्त ऋतु में और आश्विन शुक्ला में होने वाला धान्य मूंग, तिल, जव-कपास कङ्गु, नीवार, वथुआ हिलमोचिका (हिलसा) प्राष्टिका, कालशाक मूलक क्रमुक कन्द, सैंधव, सामुद्रिकलवण, दही, घी, दूध उसकी मलाई, पनस (कटहर) आम, हर्रे, पीपलि जीरा, नागकेशर इमली, केला लवली आमला गुड़ के अतिरिक्त ईख से बनी हुई सक्कर चीनी आदि जो अन्न तेल पक्क न हो, इन सबको मुनियों ने हविष्यान्न कहा है ।।४५८-४६१।।

व्रत की घोषणा के प्रसंग में एकादशी की क्रियायें भी कही गई हैं । अत: पहले दशमी के नियम प्रस्तुत किये गये हैं ।।४६२।।

स्कान्दे—

कांस्यं मांसं मसूरं च क्षौद्रं चानृतभाषणम् ।
पुनर्भोजनमध्वानं दशम्यां परिवर्जयेत् ॥४६३॥

कुमाराः—

कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणका कोरदूषकाः ।
शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन्स्त्रियम् ॥४६४॥

नारदः—

कांस्यं मांसं मसूरं च पुनर्भोजनमैथुनम् ।
द्यूतमत्यम्बुपानं च दशम्यां सप्त वर्जयेत् ॥
दशम्यामेकभक्तं तु मांसमैथुनवर्ज्जितम् ॥४६५॥

मात्स्ये—

कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम् ।
व्यायामं च प्रवासं च दिवास्वापं च मैथुनम् ॥४६६॥

स्कन्दपुराण में—दशमी को कांसी के पात्र में भोजन करना निषिद्ध बतलाया है, इसी प्रकार मांस मसूर मधु और असत्य भाषण, दूसरी बार भोजन करना और मार्ग चलना भी निषिद्ध है ॥४६३॥

सनत्कुमारों ने भी दशमी को कांसी के पात्र में भोजन मांस मसूर चणा, कोदों, पत्ती का शाक सहद दूसरे का अन्न और स्त्री संग इन सबका निषेध किया है ॥४६४॥

नारदजी का भी यही उपदेश है—दशमी को एक बार भोजन करे, मांस मैथुन का सर्वथा त्याग रक्खे, कांसी के पात्र में भोजन न करे, मांस मसूर दुबारा भोजन मैथुन, जुआ खेल और बारम्बार जलपान ये सब त्याज्य हैं ॥४६५॥

शिलापिष्टं मसूरं च द्वादशैतानि संत्यजेत् ।
दशम्यामेकभक्तं च कुर्वन्ति विजितेन्द्रियाः ॥४६७॥
आचम्य दन्तकाष्ठं च खादयेत्तदनन्तरम् ।
दिनार्द्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् ॥४६८॥
एकभक्तमिति प्रोक्तं तत्कर्त्तव्यं प्रयत्नतः ।
रात्रौ तन्न क्वचित्कार्यं वाराहे कामधुक्तथा ॥४६९॥
एकभक्ते तथा नक्ते तात्कालिक्यां च वै तिथौ ।
असंस्पृश्यतिथिं कुर्वन्नारकी भविता ध्रुवम् ॥४७०॥
अत्र चोत्पत्रशिष्टे तु मध्याह्ने वै प्रदोषकः ।
स्मृतौ दोषो न नक्ते तु प्रमीयते यथास्मृतिः ॥४७१॥

मत्स्यपुराण में भी कांसी के पात्र में भोजन मांस मदिरा मधु तेल असत्यभाषण व्यायाम प्रवास, दिन में सोना, मैथुन शिला पर पीसा हुआ अन्न और मसूर इन वारह का द्वादशी को निषेध किया गया है। दशमी को भी जितेन्द्रियता पूर्वक एक बार भोजन करे ।।४६६-४६७

प्रातः कुल्ला दान्तून आदि करके मध्याह्न के समय नियमत भोजन करे ।।४६८।।

जो एकाहार बतलाया है वही करना चाहिये। रात्रि को भोजन न करे ।।४६९।।

वाराहपुराण में जो यथेच्छ एकाहार तात्कालि की तिथि में बतलाया है, और तिथि के अनुसार न करने वाले को नरक का भागी बतलाया गया है वह मध्याह्न अथवा प्रदोष का समय ही समझना चाहिये। स्मृतियों में भी रात्रि भोजन को दूषित नहीं बतलाया ।।४७०-४७१।।

मध्याह्नः पारणे यद्वद्दोषदस्तद्वदिष्यते ।
तिथिरुत्पत्तिशिष्टा तु विरुद्धबलवत्यतः ॥४७२॥
दिवसस्याष्टमे भागे मंदीभूते दिवाकरे ।
नक्तं तु तद्विजानीयान्न नक्तं निशिभोजनम् ॥४७३॥

अथैकादशीनियमाः—

ततश्चानन्तरं साधुर्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
रात्रिं नयेत् ततः पश्चात्प्रातरेव दन्तधावनम् ॥४७४॥

तथा स्मृतिः—

प्रातः सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्वकम् ।
तत्रोपवासदिने तु निषिद्धं दन्तधावनम् ॥४७५॥

वृद्धवशिष्ठस्तथा—

उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद्दन्तधावनम् ।
दन्तानां काष्ठसंयोगे हन्ति सप्तकुलानि वै ॥४७६॥

जैसे मध्याह्न में पारणा होता है उसी प्रकार रात्रि का भोजन भी अभीष्ट ही है । किन्तु तिथि की उत्पत्ति शिष्टाचार से विरुद्ध होती है । अतः दिन के आठवें भाग में जब सूर्य मन्द हो जाये तब उस काल को नक्त कहते है । उस समय भोजन किया जाय तो उसे नक्त भोजन कहते हैं ॥४७२-४७३॥

एकादशी के नियम—दशमी को निद्रा त्याग के अनन्तर जितेन्द्रिय सच्चरित्र ब्रह्मचर्य पूर्वक रात्रि व्यतीत करे, फिर प्रातःकाल उठकर एकादशी को दान्तुन करे ॥४७४॥

वृद्ध वशिष्ठ ने कहा है कि—उपवास एवं श्राद्ध के दिन दान्तुन न करे, क्योंकि उन दिनों में दान्तों से काठ का संयोग होने पर सात कुलों का सुकृत नष्ट हो जाता है ॥४७५-४७६॥

एवं दोषश्रवणान्न काष्ठेन दन्तधावनम् ।
किन्तूपवासदिवसे तृणपर्णादिना चरेत् ॥४७७॥

तथागमे—

दन्तधावनमेवात्र प्रतिषिध्येत केनचित् ।
काष्ठग्रहोऽविवक्षितो निषेधो निवृत्तिफलः ॥४७८॥

स्मृतिः—

अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावनम् ।
पर्णादिना विशुद्धेत जिह्वोल्लेखः सदैव हि ॥४८९॥

व्यासः—

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां दन्तधावनम् ।
पर्णैरन्यत्र काष्ठैस्तु जिह्वोल्लेखः सदैव हि ॥४८०॥

इस प्रकार दोष सुनने से यह निश्चय होता है कि उपवास और श्राद्ध के दिन काठ से दान्तुन न करे, किन्तु तृण-पर्ण आदि से दान्तुन करने का दोष नहीं ॥४७७॥

यही आशय आगम में व्यक्त हुआ है—जहां दान्तुन करने का निषेध है वह काष्ठ दान्तुन के सम्बन्ध में समझना चाहिये ॥४७८॥

ऐसा अग्रिम स्मृति वचन से भी स्पष्ट होता है–दान्तुन के न मिलने अथवा निषेध किये जाने पर तृणपर्ण आदि से दान्तुन और जिह्वा की शुद्धि सदा कर लेवे ॥४७९॥

व्यासजी का वचन है—प्रतिपदा अमावस्या षष्ठी और नवमी इन तिथियों में पर्ण आदि से दान्तुन एवं जिह्वा शुद्धि करे अन्य तिथियों में काष्ठ से करे ॥४८०॥

तत्र प्रतिपदादिग्रहणं निषिद्धदन्तकाष्ठदिनोप-
लक्षणार्थं यतस्तेनैव पक्षान्तरस्योक्तत्वात् ।
अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ ।
अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥४८१॥

एष उक्तो निषेधस्त्ववैष्णवविषयः स्मृतः ।
वैष्णवे नित्यता ह्युक्ता वाराहे हरिणा स्वयम् ॥४८२॥

दन्तकाष्ठमखादित्वा यो मां समुपसर्पति ।
सर्वकालकृतं कर्म तेनैकेन च नश्यति ॥
प्रातः स्नातः पिबेद्व्रतं संकल्प्य मन्त्रित जलम् ॥४८३॥

तथा स्कान्दे—
रात्रिं नयेत्ततः पश्चात्प्रातः स्नायात्समाहितः ।
उपवासं तु संकल्प्य मन्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥४८४॥

वहां जो प्रतिपदा आदि का उल्लेख है, वह काष्ठ से दान्तुन निषेध का भी उपलक्षण समझना चाहिये। क्योंकि व्यासादि के द्वारा ही पक्षान्तर का प्रतिपादन किया गया है। काष्ठ का दान्तुन न मिले अथवा किसी तिथि में उसके करने का निषेध हो तो जल के बारह कुल्लों से दान्तुन कर लेवे" ॥४८१॥

इस प्रकार का निषेध अवैष्णव विषयक समझना चाहिये, क्योंकि वैष्णवों के लिये तो दान्तुन करना नित्य के विधान में है। ऐसा वाराहपुराण में स्वयं भगवान् का वाक्य है—दान्तुन किये बिना जो मेरी आराधना करता है उसके सदा सर्वदा किये हुए सुकृतों का एक ही त्रुटि से विनाश हो जाता है ॥४८२-४८३॥

अतः प्रातःकाल स्नान करके संकल्प करे और आचमन करे। इसी प्रकार का विधान स्कन्दपुराण में मिलता है ॥४८४॥

अयंसाधारणक्रमः कृष्णार्च्चको निपीयकम् ।
कृष्णमभ्यर्च्य तु व्रतं संकल्पेन निवेदयेत् ॥४८५॥

तथा मार्कण्डेय—

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमन्त्रितम् ।
उपवासफलप्रेप्सुः पिबेत्तोयं समाहितः ॥४८६॥
विष्ण्वर्च्चनं ततः कृत्वा पुष्पाञ्जलिमथापि वा ।
संकल्पमन्त्रमुच्चार्य देवाय विनिवेदयेत् ॥४८७॥

संकल्पमन्त्रः—

एकादश्यां निराहारो भोक्ष्येऽहं द्वादशीदिने ।
निवेदयामि देवेश निर्विघ्नं कुरु केशव ॥४८८॥
यदा क्वचित्तु प्राचीनमध्यरात्रोपरि ह्यनु ।
वर्त्तेत दशमीलेशः कथञ्चिद्वैष्णवस्तदा ॥४८९॥

यह साधारण क्रम है, उपासक श्रीकृष्ण की पूजा करके संकल्प के द्वारा भगवान् से व्रत का निवेदन करे ॥४८५॥

मार्कण्डेय के वाक्य का भी ऐसा ही आशय है—उपवास के फल को चाहने वाला साधक—अष्टाक्षर मन्त्र से तीन बार अभिमंत्रित करके एकाग्रचित्त हो आचमन करे। फिर पूजा करके पुष्पाञ्जलि अर्पण करे, संकल्प करके भगवान् को निवेदन करे ॥४८६-४८७॥

संकल्प मन्त्र का भाव–हे देवेश ! एकादशी को निराहार रहकर द्वादशी को मैं भोजन करूँगा, यह श्रीचरणों में निवेदन है—निर्विघ्नता से मेरे इस व्रत को आप सम्पन्न करावें ॥४८८॥

जब कभी मध्यरात्रि के ऊपर भी दशमी हो तो दूसरे

एकादश्यादिप्रहरचतुष्टयं विहाय हे ।
कृष्णपूजाद्यवसरं विद्यात्तथा चतुःसनः ॥४८०॥

दशम्याः संगदोषेण अर्द्धरात्रात्परेण तु ।
वर्जयेच्चतुरो यामानसंकल्पार्चनयोः सदा ॥४६१॥

नारदीये नारदः—

पूर्वायाः संगदोषेणैकादश्याः स्नानपूजने ।
वर्जयन्ति निशःपूर्वान् यामांश्च चतुरोद्विजाः ॥४८२॥

तदूर्ध्वं स्नानपूजादि कर्त्तव्यं तदुपोषितैः ।
अत्र स्नानादिकरणे प्रकारमाह देवलः ॥४६३॥

गृहीत्वौदुम्बरं पत्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा सकल्पयेद्बुधः ॥४६४॥

दिन चारप्रहर के अनन्तर व्रत द्वारा भगवत्पूजा करे ऐसा सनकादिकों का आदेश है ॥४८९-४६०॥

दशमी के संग दोष के कारण सकल्प और अर्चन चार-प्रहर बाद में करै ॥४६१॥

नारदीयपुराण में नारदजी की भी ऐसी ही उक्ति है—पूर्व तिथि के संग से दूषित एकादशी का व्रत एक रात्रि के पश्चात् करना चाहिये ॥४८२॥

उपवास करने वाला चारप्रहर के अनन्तर स्नान पूजा आदि कर्म करे। उसका प्रकार देवल स्मृति में इस प्रकार बतलाया है—जल का भरा हुआ ताम्रपात्र लेकर उत्तर मुख हो व्रत अंगीकार करे अथवा संकल्प मात्र कर लेवे ॥४६३-४६४॥

यद्वा संकल्पमात्रं कुर्यादित्यर्थः ।
अत्र मंत्रितजलपुष्पाञ्जल्योर्विकल्पः ।
अथोपवासनियमोऽत्रोपवासस्वरूपकम् ॥४६५॥
वृद्धवशिष्ठकात्यायनविष्णुधर्मोत्तरेषु—
उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्य वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयो नोपवासस्तु लङ्घनात् ॥॥४६६॥
पापेभ्यो वर्ज्जनीयेभ्य उपावृत्तस्य निवृत्तस्येत्यर्थः ।
वर्जनीयानि च तत्रैव—
विहितस्याननुष्ठानमिन्द्रियाणामनिग्रहः ।
निषिद्धसेवनं नित्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः ॥४६७॥
हारीतः—
पतितपाखण्डिनास्तिकादिसम्भाषणहिंसेन्द्रिय-
चापल्यादिसर्वमुपवासदिने वर्ज्जनीयम् ।
अत्र पतिता हरिवासरेऽन्नभोक्तारः ॥४६८॥

यहां मंत्रित जल और पुष्पाञ्जलि दोनों में विकल्प है। अब उपवास का नियम और स्वरूप वृद्ध वशिष्ठ कात्यायन और विष्णुधर्म आदि के अनुसार बतलाते हैं। केवल लंघन ही उपवास नहीं कहलाता, त्याज्य पापों को छोड़ करके गुणों के साथ वास करने को उपवास कहते हैं ॥४६५-४६६॥

यहाँ इस श्लोक में आये हुए पाप शब्द का तात्पर्य—"वर्जनीय" है और उपावृत्त शब्द का "निवृत्त" है वर्जनीयों का विवरण उन्हीं वृद्ध वशिष्ठ आदि में इस प्रकार किया गया है—"शास्त्र विहित कर्मों का न करना" "इन्द्रियों का अनिग्रह", "निषिद्ध वस्तुओं का सेवन" ये सब वर्जनीय कहलाते हैं ॥४६७॥

गुणा विष्णुधर्मोत्तरे--

तज्जप्यं तज्जपध्यानं तत्कथाश्रवणादिकम् ।
तदर्च्चनं च तन्नामकीर्तनश्रवणादयः ।।४९९।।

उपवासकृतो ह्येते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः ।
उपवासी हरिं यस्तु भक्त्या ध्यायति मानवः ।५००।।

तज्जप्यजापी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः ।
निष्कामो दैत्यवद्ब्रह्मपदमाप्नोत्यसंशयः ।।५०१।।

अथोपवासपराणामनुष्ठेयमुदीर्यते ।
तत्रसंकल्पप्रभृतिपारणावधितस्तथा ।।
पाखण्डिसम्भाषणादि नैव कार्यं बुधैः क्वचित् ।।५०२।।

हारीत स्मृति में स्पष्ट कहा गया है—पतित पाखण्डी नास्तिकों से सम्भाषण हिन्सा, इन्द्रियचापल्य ये सब उपवास के दिन वर्जनीय हैं । हरिवासर को भोजन करने वाले को पतित कहा गया है ।।४९८।।

गुणों का विवरण विष्णु धर्मोत्तर में इस प्रकार मिलता है--जपने योग्य भगवन्मंत्र का जाप ध्यान भगवत्कथा श्रवण आदि भगवत्पूजा भगवन्नाम संकीर्तन, भगवत्कथा श्रवण ये सब उपवास के गुण कहे गये हैं । उपवास करने वाला साधक भक्ति-पूर्वक भगवान का ध्यान, उनके नामों का जप, उनकी सेवा, प्रभु के चरणों में चित्त लगाकर जो निष्काम भाव से करता रहता है । वह अवश्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।।४९९-५०१।।

अब संकल्प से लेकर पारणा तक उपवास करने वालों के कर्तव्य बतलाते हैं--पाखण्डियों से कभी सम्भाषण नहीं करना चाहिये । विष्णुधर्म में कहा है--भगवद्भक्तों को पाखण्डियों का

तथा विष्णुधर्म—

पाखण्डिभिरसंस्पर्शमसंभाषणमेव च ।
विष्णोराराधनपररेतत्कार्यमुपोषितैः ॥५०३॥

वैष्णवे—

ततः पाखण्डिभिः पापैरालापं दर्शनं त्यजेत् ।
उपोषितः क्रियाकाले यज्ञादावपि दीक्षितः ॥५०४॥

प्रायश्चित्तं तत्रैव—

सदागमबहिश्चारी पाषंडीति स विश्रुतः ।
तस्यावलोकनात्सूर्यं पश्येत मतिमान्नरः ॥५०५॥
संस्पर्शाच्च बुधः स्नात्वा शुचिरादित्यदर्शनात् ।
सम्भाषणान् शुचिपदं चिन्तयेदच्युतं बुधः ॥५०६॥

स्पर्श और उनसे सम्भाषण कदापि नहीं करना चाहिये ।।५०२-५०३।।

विष्णुपुराण का वाक्य है—उपवास किया हुआ एवं यज्ञ की दीक्षा लिया हुआ साधक पापी पाखण्डियों से सम्भाषण न करे ।।५०४।।

कदाचित उपर्युक्त पापियों पर दृष्टि पड़ जाय तो उसका प्रायश्चित करना चाहिये । विष्णुपुराण में वेदपुराण आदि सत् शास्त्रों के आदेशों के विपरीत चलने वालों को पाखण्डी बतलाया है, उन पर दृष्टि पड़ जाय तो उसके प्रायश्चित्त के लिये उसी क्षण सूर्यनारायण का दर्शन करना चाहिये ।।५०५।।

यदि स्पर्श हो जाय तो स्नान करके सूर्य दर्शन करे । सम्भाषण किया हो तो भगवान् के चरणों का चिन्तन करे ।।५०६

विष्णुधर्मेषु—

संस्पृशेद्बुधः स्नात्वा शुचिरादित्यदर्शनात् ।
वाग्धृतकाययमलोपे याज्ञवल्क्य उवाच तत् ॥५०७॥
यदि वाग्यमलोपः स्यात् स्नानदानक्रियादिषु ।
व्याहरेद्वैष्णवं मंत्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥५०८॥
मानसनियमलोपे संस्मरेद्विष्णुमव्ययम् ।
कायिकनियमलोपे तीर्थस्नायी शुचिर्भवेत् ॥५०९॥
व्रती तु ब्रह्मचर्यादि कुर्याच्च देवलस्तथा ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यमामिषवर्जनम् ॥
व्रते चैतानि चत्वारि चरितव्यानि नित्यशः ॥५१०॥

व्रतदूषकानि कुमारा आहुः—

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलभक्षणात् ।
उपवासो विदूष्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥५११॥

यही आशय विष्णुधर्मों के वचनों का है--जानकार साधक स्नान करके सूर्य का दर्शन करे । वाणी मन और शरीर के यमों का लोप हो जाय तो उनका प्रायश्चित्त याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार बतलाया है—वाणी के संयम का लोप होने पर स्नान दान आदि क्रियाओं में वैष्णव मंत्र का जप और विष्णु-भगवान् का स्मरण करे ॥५०७-५०८॥

मन के संयम का लोप होने पर विष्णु भगवान् का स्मरण करे और शरीर के संयम विग्रह जाप तो तीर्थ में स्नान करने पर पवित्र हो जाते हैं ॥५०९॥

व्रती और देव उपासक को चाहिये कि ब्रह्मचर्य पालन करे, हिंसा न करे,सत्य बोले और आमिषका त्याग इन चारों का सदा आचारण करे ॥५१०॥

अदूषकानि व्यास आह--

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् ।
उपवासे न दूष्येत दन्तधावनमञ्जनम् ॥५१२॥

व्रतोपयोगीनि महाभारते--

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥५१३॥

अथ जागरणस्य च निर्णयो महिमा हरेः ।
एकादश्यां जनो विष्णो रात्रौ पूजां स्वभक्तितः ॥
कुर्याज्जागरणं विष्णोः पुरतो वैष्णवैः सह ॥५१४॥

तथा ब्रह्माण्डे ब्रह्मा--

ततो जागरणं कुर्याद्गीतनृत्य समन्वितम् ।
पुराणपाठसहितं हास्यहार्द्द समन्वितम् ॥५१५॥

सनत्कुमारों ने बारम्बार जलपान तथा एकबार भी ताम्बूल भक्षण दिन में सोना और मैथुन इन सबको व्रत के दूषक बतलाये हैं ।।५११।।

व्यासजी ने कहा है--पुष्प अलङ्कार वस्त्र गन्ध धूप उपलेपन मञ्जन और दान्तुन इनसे व्रत नहीं बिगड़ता ।।५१२।।

व्रत के उपयोगी पदार्थों का बर्णन महाभारत में इस प्रकार किया है--जल मूल फल दूध हवि, ब्राह्मणकाम्या, गुरु के वचन औषधि ये आठ व्रत को दूषित नहीं करते ।।५१३।।

अब जागरण का निर्णय और प्रभु की महिमा का वर्णन किया जाता है---भक्त एकादशी को रात्रि में भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा करे, फिर वैष्णवों के साथ भगवान्‌के सन्मुख जागरण करे ।।५१४।।

स्कान्दे ब्रह्मा—

शृणु नारद वक्ष्यामि जागरणस्य लक्षणम् ।
येन विज्ञातमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः ॥५१६॥
गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा ।
धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥५१७॥
फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम् ।
सत्यान्वितं विनिद्रं च मुद्रान्वितं क्रियान्वितम् ॥५१८॥
साश्चर्यं चैव सोत्साहं पापालस्यादिवर्ज्जितम् ।
प्रदक्षिणासुसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥५१९॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा ।
यामे यामे महाभाग कुर्यादारार्तिकं हरेः ॥५२०॥
षड्विंशगुणसंयुक्तमेकादश्यां तु जागरम् ।
यः करोति नरो भक्त्या न पुनर्जायते भुवि ॥५२१॥

ब्रह्माण्डपुराण में ब्रह्माजी ने कहा है—प्रसन्नतापूर्वक हार्दिक भाव से पुराण पाठ के सहित गीत नृत्य के साथ-साथ जागरण करे ॥५१५॥

स्कन्दपुराण में भी ऐसे ही ब्रह्माजी के वचन हैं—हे नारद ! आप सुनो मैं जागरण के लक्षण बतलाता हूं जिसके जानने मात्र से भी भगवत्प्राप्ति सुलभ हो जाती है ॥५१६॥

पुराणपाठ, गीतावाद्य, नृत्य करे, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प-गन्धानुलेपन, फल चढ़ावे, अर्घ्य देवे, श्रद्धा और इन्द्रिय संयम-पूर्वक दान देवे। सत्य सावधानी मुद्रा क्रिया से युत आश्चर्य उत्साह पाप आलस्य का त्याग प्रदक्षिणा नमस्कार आरती निर्लिप्त मन से पहर-पहर पर प्रभु की आरती करे। इस प्रकार एकादशी के जागरण में ये छब्बीस गुण हैं। जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक इन्हें करता है वह जन्म-मरण से छूट जाता है ॥५१६-५२१

य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
जागरं वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि ॥५२२॥

धनवान् वित्तशाठ्येन यः करोति प्रजागरम् ।
तेनात्मा हारितो नूनं कितवेन दुरात्मना ॥
तत्करणाकरणयोर्लाभहानिः प्रपञ्च्यते ॥५२३॥

ब्रह्माण्डे ब्रह्मा—

स्तुवन्ति न प्रशंसन्ति ये नरा जागरं हरेः ।
नोत्सवो हि भवेत्तेषां गृहे जन्मानि सप्त च ॥५२४॥

स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति जागरं चक्रपाणिनः ।
नित्योत्सवो भवेत्तेषां जन्मानि दशपञ्च च ॥५२५॥

स्कान्दे शिवः—

दष्टाः कलि-भुजङ्गेन स्वपन्ति मधुघ्नो दिने ।
जागरं ये न कुर्वन्ति मायापाशविमोहिताः ॥५२६॥

धन का घमण्ड न रखकर जो ऐसा जागरण करता है वह परमात्मा में लीन हो जाता है ॥५२२॥

जो धनी धन के घमण्ड से जागरण करता है, उस दुरात्मा ने अपनी आत्मा की हत्या ही करली । जागरण करने से क्या लाभ होता है और न करने से कैसी हानि होती है– अब उसे दिखाते हैं ॥५२३॥

ब्रह्माण्डपुराण में ब्रह्माजी के वाक्य हैं—जो मनुष्य भगवान के जागरण की प्रशंसा नहीं करते उनके घर में दश-पन्द्रह जन्मों तक उत्सव नहीं होता । जो सन्त प्रभु के जागरण की स्तुति एवं प्रशंसा करते हैं उनके दश पांच जन्मों तक उत्सव-महोत्सव नित्य होते हैं ॥५२४-५२५॥

प्रयात्येकादशी येषां कलौ जागरणं विना ।
ते विनष्टा न सन्देहो यस्माज्जीवितमध्रुवम् ॥५२७॥
उद्धृतं नेत्रयुग्मं च दत्वा वै हृदये पदम् ।
अन्तकाले यमालये तेषां दूतैर्भविष्यति ॥५२८॥
कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो जागरं हरेः ।
अलाभे वाचकस्याथ गीतं नृत्यं तु कारयेत् ॥५२९॥
वाचके सति देवेशि पुराणं प्रथमं पठेत् ।
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयायुतस्य च ॥५३०॥
पुण्यं कोटिगुणं गौरि विष्णोर्जागरणे कृते ।
पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे च भामिनि ॥५३१॥

स्कन्दपुराण में शिवजी के वचन हैं—जो एकादशी की रात्रि में जागरण न करके सोते हैं वे कलिरूपी भुजंग से डँसे हुए माया के पास में बँधे हुए हैं, ऐसा समझना चाहिये ॥५२६॥

कलियुग में जो व्यक्ति जागरण किये बिना ही एकादशी व्यतीत करते हैं उनका अस्थिर जीवन विनष्ट ही समझना चाहिये ॥५२७॥

यम के दूत उनकी छाती पर पैर रखकर उनके दोनों नेत्रों को उखाड़कर अन्त में उन्हें यमलोक पहुँचायेंगे । ऐसे पापी ही एकादशी के जागरण को नहीं समझते ॥५२८॥

एकादशी को पुराण की कथा अवश्य सुनें कदाचित् कोई कथावाचक न मिले तो गायन-वादन संकीर्तन कर लेवे ॥५२९॥

हे गोरि ! एकादशी के जागरण का महत्व हजार अश्व-मेध, दशहजार वाजपेय यज्ञों के पुण्य से भी विशेष पुण्य माना गया है ॥५३०॥

कुलान्युद्धरते चैतानि कृते जागरणे हरेः ।
उपोषणदिने विद्धे प्रारम्भे जागरे सति ॥५३२॥
विहाय स्थानं तद्विष्णुः शापं दत्त्वा प्रगच्छति ।
अविद्धे वासरे विष्णोर्ये प्रकुर्वन्ति जागरम् ॥५३३॥
तेषां मध्ये प्रहृष्टः सन्नृत्यं तु कुरुते हरिः ।
यावद्दिनानि कुरुते जागरं केशवाग्रतः ॥५३४॥
युगायुतानि तावन्ति वसते विष्णुवेश्मनि ।
यावद्दिनानि वसते विना जागरणं हरेः ॥५३५॥
नृत्यन्ति धृतशस्त्राश्च तद्गेहे यमकिंकराः ।
मूकवत्तिष्ठते यो वै गानं पाठं करोति न ॥५३६॥

हे भामिनि ! पिता माता भार्या इन सबके कुलों का उद्धार एकादशी के जागरण से हो जाता है ।।५३१।।

किन्तु वह उपवास का दिन विद्धातिथि में नहीं होना चाहिये । विद्धातिथि में किया हुआ भगवान् का आराधन, दान आदि समस्त सुकृत व्यर्थ हो जाते हैं ।।५३२।।

विद्धातिथि को जागरण प्रारम्भ करने पर शाप देकर भगवान् उस स्थान से अन्तर्हित हो जाते हैं ।।५३३।।

शुद्ध एकादशी को व्रत रखकर जागरण किया जाता है उससे सन्तुष्ट होकर भगवान् स्वयं नृत्य करने लग जाते हैं ।।५३४

भगवान के आगे जितने दिन जागरण करता है उतने ही युगों के दश हजार गुने दिनों तक वह भक्त भगवद्धाम में निवास करता है ।।५३५।।

जितने दिन विना जागरण किये रहता है उतने दिनों तक ही शस्त्र लिये हुए यमराज के किंकर उसके घर पर नाचते रहते हैं ।।५३६।।

सप्तजन्मानि जायेत मूकस्त्वजागरे कृते ।
पंगुत्वं तस्य जानीयात्सप्तजन्मनि पार्वति ॥५३७॥
यो न नृत्यति मूढात्मा पुरतो जागरे हरेः ।
वाह्यं पदं मदीयं च सत्यं वै तस्य वैष्णवम् ॥५३८॥
यः प्रबोधयते लोकान्विष्णोर्जागरणे रतः ।
वसेच्चिरं तु वैकुण्ठे पितृभिः सह वैष्णवः ॥५३९॥
मतिं प्रयच्छते यस्तु हरेर्जागरणं प्रति ।
षष्टिवर्षसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः ॥५४०॥
यत्किञ्चित्क्रियते पापं सप्त जन्मानि मानवैः ।
कृष्णस्य जागरे सर्वं रात्रौ दह्यति पार्वति ॥५४१॥
शालिग्रामशिलाग्रे तु ये कुर्वन्ति च जागरम् ।
भ्रश्यन्ते तस्य पापानि कोटीन्द्रेषु समुद्भवम् ॥५४२॥

जो जागरण में मूक की तरह बैठा रहता है गायन या पाठ नहीं करता है वह सात जन्मों तक मूक रहेगा ।।५३७।।

जो जागरण में नृत्य नहीं करता वह सात जन्म तक पंगु बना रहता है । उसे मेरे पद से वहिस्कृत समझना चाहिये ।।५३८

जो भगवान् के जागरण में सोये हुए जनों को जगाता है, वह वैष्णव अपने पितरों सहित चिरकाल तक वैकुण्ठ में वास करता है ।।५३९।।

जो सज्जन जागरण का बोध कराता है वह साठ हजार वर्ष तक श्वेतद्वीप में निवास करता है ।।५४०।।

हे पार्वति ! सात जन्मों तक का किया हुआ पाप भी भगवान के जागरण की एक रात्रि में भस्म हो जाता है ।।५४१।।

सम्प्राप्ते वासरे विष्णोर्ये न कुर्वन्ति जागरम् ।
भ्रश्यते सुकृतं तेषां वैष्णवानां च निन्दया ॥५४३॥
कामार्थसम्पदः पुत्राः कीर्त्तिर्लोकाश्च शाश्वताः ।
यज्ञायुतैर्न लभ्यन्ते द्वादशीजागरं विना ॥५४४॥
मतिर्न जायते यस्य द्वादश्या जागरं प्रति ।
नहि तस्याधिकारोऽस्ति पूजने केशवस्य तु ॥५४५॥
यावत्पादानि कुरुते केशवायतनं प्रति ।
अश्वमेधसमानि स्युर्जागरार्थं प्रपद्यतः ॥५४६॥
पादयोः पतितं यावद् धरायां पांशु गच्छताम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि जागरी वसते दिवि ॥५४७॥

शालिग्राम की प्रतिमा के आगे जो जागरण करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं करोड़ों इन्द्र भी उनकी रक्षा नहीं कर सकते ।।५४२।।

जो जागरण के अवसर पर जागरण नहीं करते एवं वैष्णवों की निन्दा करने से उनके समस्त सुकृत नष्ट हो जाते हैं ।।५४३।।

काम अर्थ सम्पदा पुत्र कीर्ति और शाश्वत लोक ये सब बिना द्वादशी (एकादशी) के जागरण बिना नहीं मिल सकते चाहे हजारों यज्ञ भी क्यों न कर लेवे ।।५४४।।

जिसकी द्वादशी के जागरण में मति न हो उसका भगवान् की पूजा में अधिकार नहीं ।।५४५।।

जागरण के लिये जितने पैर भगवान् के मन्दिर की ओर धरता है, वे एक एक पैर अश्वमेध यज्ञ के समान समझने चाहिये ।।५४६।।

तस्माद् गृहात् प्रगन्तव्यं जागरे माधवस्य तु ।
गवां कोटिसहस्राणि स्वर्णमेरुशतानि च ॥५४८॥
दत्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं जागरे हरेः ।
परापवादयुक्तं तु मनः प्रशमवर्जितम् ॥५४६॥
शास्त्रहीनं नगाण्धर्वं तथा दीपविवर्जितम् ।
शक्त्युपचाररहितं उदासीनं सनिद्रकम् ॥५५०॥
कलियुक्तं विशेषेण जागरं नवधाऽधमम् ।
सशास्त्रं जागरं यच्च नृत्यगान्धर्वसंयुतम् ॥५५१॥
सवाद्यं तालसंयुक्तं सदीपं साधुभिर्युतम् ।
उपचारैश्च संयुक्तं यथोक्तैर्भक्तिभावितैः ॥५५२॥

जागरण के लिये जाने वालों के पैरों से उड़कर रज:कण जिनके शरीरों पर पड़ जाये वह उतने हजार वर्षों तक स्वर्ग में वास करता है ॥५४७॥

इसलिये अपने घर से भगवान् के जागरण में अवश्य ही जाना चाहिये। करोड़ों गोदान सैकड़ों मेरुओं के समान सुवर्ण दान से जो फल मिलता है वही फल जागरण में मिल जाता है ॥५४८॥

दूसरों की निन्दा, मन की चञ्चलता, शास्त्रीय संगीत का अभाव, प्रदीप न होना, शक्ति के अनुसार उपकार न होना, उदासीनता निद्रा और कलह विशेष इन नौ दोषों से युक्त हो तो वह जागरण अधम कहाता है ॥५४६-५५०॥

जो जागरण शास्त्र सम्मत नृत्य-गान लाल वाद्य युक्त प्रकाश युक्त, सज्जनों से युक्त, उपचारों से युक्त, भक्तिभावना युक्त मन को सन्तुष्ट करने वाला मोदयुक्त लोकरंजनकारी हो तो

मनस्तुष्टिजननं समुदं लोकरञ्जनम् ।
गुणैर्गुरुभिरुपायैस्तीर्थवासेन तस्य किम् ॥५५३॥

द्वादशीवासरे प्राप्ते न कुर्याज्जागरं हरेः ।
यदि पापविमोहितो यस्तु कृष्णबहिर्मुखः ॥५५४॥

प्रवासे न त्यजेद्यस्तु पथि खिन्नोऽपि पार्वति ।
जागरं वासुदेवस्य द्वादश्यां तु समे प्रियः ॥५५५॥

मद्भक्तो न हरेः कुर्याज्जागरं पापमोहितः ।
व्यर्थं मत्पूजनं तस्य मत्पूज्यं यो न पूजयेत् ॥५५६॥

न शैवो न च सौरो वा नाश्रमीतीर्थसेवकः ।
यो भुंक्ते वासरे विष्णोः श्वपचादधिको हि सः ॥५५७॥

फिर तीर्थाटन आदि बड़े-बड़े उपाय और गुणों से क्या प्रयोजन ॥५५१-५५३॥

यदि एकादशी के जागरण का योग मिलने पर भी जो पाप विमोहित जागरण नहीं करता उसे कृष्ण बहिर्मुख समझना चाहिये ॥५५४॥

जो प्रवास में मार्ग से थका हुआ भी जागरण को नहीं छोड़ता, भगवान् कहते हैं वह भक्त मुझको विशेष प्रिय लगता है ॥५५५॥

मेरा भक्त होने पर भी जो पाप विमोहित जागरण नहीं करता एवं मेरे प्रिय जनों का सन्मान नहीं करता उसके द्वारा किया हुआ मेरा पूजन भी व्यर्थ है ॥५५६॥

जो एकादशी के दिन अन्न खाता है वह शैव सौर आश्रमी और तीर्थ सेवक नहीं हो सकता, उसे श्वपच से भी अधिक नीच समझना चाहिये ॥५५७॥

मुच्यते वासरे विष्णोर्जागरे नृत्यति निशि ।
प्राप्ते कलियुगे घोरे नरास्तेः त्रिदशैः समाः ॥५५८॥
विशल्ये वासरे विष्णोर्ये प्रकुर्वन्ति जागरम् ।
कर्पूरं यमदूतानां दत्तं तेन यमस्य च ॥५५९॥
कृतं जागरणं विष्णोरविद्धं द्वादशीव्रतम् ।
स्वर्गापेक्षा महादेवि तेन मुक्ता न संशयः ॥५६०॥
वांछितं नारकं सौख्यं विद्धं कृत्वा हरेर्दिनम् ।
निहताः पितरस्तेन देवतानां वधः कृतः ॥५६१॥
दत्तं राज्यं तु दैत्यानां कृत्वा विद्धं हरेर्दिनम् ।
पितृभिः सहितं वैरं कृतं तेन सुरैः सह ॥५६२॥
कारयति विद्धं यस्तु करोति हरिवासरम् ।
अग्निवर्णायसं तीक्ष्णं क्षपयन्ति यमकिंकराः ।।
मुखे तेषां महादेवि ये भुजन्ति हरेर्दिने ॥५६३॥

एकादशी के जागरण में जो रात्रि में नाचते हैं उन्हें इस घोर कलियुग में भी देवताओं के समान समझना चाहिये ॥५५८

जो शुद्ध एकादशी को जागरण करते हैं उनके लिये यम और यमदूत समझलो कपूर ही हो गये ॥५५९॥

जिन्होंने शुद्ध एकादशी की रात्रि में जागरण कर लिया, हे महादेवी ! उन्हें स्वर्ग की अपेक्षा निस्संदेह मुक्त ही समझना चाहिये ॥५६०॥

जिन्होंने विद्धा एकादशी का व्रत एवं जागरण किया है उन्होंने नारकीय सुख की वाञ्छा करके अपने पितरों और देवों का भी वध कर डाला ॥५६१॥

विद्धा एकादशी करने वालों ने समझलो पितर और देवताओं के साथ वैर करके असुरों को राज्य दिला दिया ॥५६२

ब्राह्मे शिवः—

द्वादश्यां जागरे विष्णोर्यैः कृतं पुष्पमण्डपम् ।
प्रतिपुष्पं फलं तेषां वाजिमेधसमं प्रिये ॥५६४॥

द्वादश्यां कृष्णभवनं कदलीस्तम्भशोभितम् ।
ये कुर्वन्ति हरिस्तेषां स्वकीयं यच्छते पदम् ॥५६५॥

दीपदानं प्रकुर्वन्ति जागरं केशवस्य हि ।
ते ध्वस्ततिमिरं गौरि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥५६६॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च जागरे ।
हीनवर्णान्त्यजाश्चैव राक्षसा दैत्यदानवाः ॥५६७॥

प्राप्तास्ते परमं स्थानं श्रीविष्णोर्जागरेकृते ।
अप्रेरितः स्वयं भक्त्या गीतं नृत्यं करोति यः ॥५६८॥

जो विद्धा एकादशी करते हैं उनके मुख में अग्नि के समान लाल वर्ण वाला तीक्ष्ण लोहा यमदूत देते हैं ॥५६३॥

ब्रह्मपुराण में शिवजी के वाक्य हैं—हे प्रिये ! द्वादशी में जो विष्णु भगवान के लिये पुष्पों का विमान सजाते हैं उनको एक-एक फूल पर वाजिमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त होता है ॥५६४॥

द्वादशी व्रत के दिन जो भगवान के मन्दिरों को केले के खम्भों से सजाता है उन्हें भगवान अपने लोक में आश्रय देते हैं ॥५६५॥

जागरण में जो दीपक जलाते हैं हे पार्वति ! उनका आन्तरिक अन्धकार नष्ट हो जाता है और वैकुण्ठ को प्राप्त कर लेते हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय वेश्य शूद्र स्त्री हीन वर्ण वाले अन्त्यज राक्षस दैत्य दानव कोई भी जागरण करता है उन्हें भगवान अपना स्थान प्रदान करते हैं। जो बिना किसी की प्रेरणा से

जागरे पद्मनाभस्य प्रेरिताद्द्विगुणं फलम् ।
कुर्वन्ति मुनयो नित्यमृषयो देवतादयः ॥५६९॥
जागरं पद्मनाभस्य किं न कुर्वन्ति मानवाः ।
यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा कृत्वा वै करताड़नम् ॥५७०॥
गीतं कुर्वन्मुखेनापि दर्शयन् कौतुकान्बहून् ।
पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ जागरणस्थितः ॥५७१॥
वदन्ति कृष्णचरित्राणि रञ्जयन् देवि वैष्णवान् ।
मुखेन कुरुते वाद्यं सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥५७२॥
दर्शयन्विविधान्नृत्यान् स्वेच्छालापान् करोति वै ।
भावैस्तैस्तैर्नरो यस्तु कुरुते जागरं हरेः ॥५७३॥
निमिषे निमिषे पुण्यं तीर्थकोटिसमं स्मृतम् ।
अव्यग्रमनसा यस्तु धूपं नीराजनं हरेः ॥
कुरुते जागरं रात्रौ सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥५७४॥

गीतवादन नृत्य आदि के साथ जागरण करता है उसे दूसरों की प्रेरणा से जागरण करने वालों की अपेक्षा दुगुना फल मिलता है। ऋषि-मुनिजन और देवगण सब नित्य ही भगवान के गुण-गान पूर्वक जागरण करते हैं तब मानव क्यों न करे। जो हर्षित होकर ताली बजाते हुए भगवान के सन्मुख नृत्य करता है, गाता है, नाना प्रकार के खेल करता है, श्रीकृष्ण के चरित्र सुना-सुनाकर हे देवि ! वैष्णवों को मुग्ध बनाता है, पुलकित हो-होकर मुख से वाद्य बजाता है ॥५६६-५७३॥

जो नाना प्रकार के नृत्य दिखलाकर स्वेच्छानुसार आलाप करता है वह क्षण-क्षण में करोड़ों तीर्थों के समान फल प्राप्त करता है। जो एकाग्रचित्त से भगवान के जागरण में धूप और आरती करता है वह सात द्वीपों का अधिपति बन जाता है ॥५७४

मार्कण्डेये—

ध्यानध्येयविहीनस्य संगातीतस्य भूपते।
कर्मभ्रष्टस्य कथितो मोक्षदस्तु हरिजागरः ॥५७५॥

वायवीये—

का स्पर्द्धा दिवि देवानां हरेर्जागरकारिणाम्।
इन्द्रादीनां तु पतनं मोक्षो जागरकारिणाम् ॥५७६॥

प्रह्लादसंहितायां प्रह्लादः—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
कृष्णजागरणे तानि विलयं यान्ति खण्डशः ॥५७७॥
एकतः क्रतवः सर्वे सर्वैः तीर्थैः समन्विताः।
एकतो देवदेवस्य जागरः कृष्णवल्लभः ॥५७८॥
नसमं कवयः प्राहुरधिकः कृष्णजागरः।
तत्र ब्रह्मेन्दुरुद्रश्च शक्राद्या देवतागणाः ॥५७९॥

मार्कण्डेय का वचन है– हे राजन्! जो कोई ध्यान ध्येय को नहीं जानता हो, सत्संग से अतीत कर्मभ्रष्ट हो उसके लिये भगवान का जागरण ही मोक्ष दायक है ॥५७५॥

वायवीयपुराण में भी ऐसा ही कहा है–स्वर्ग के देवताओं और भगवान का जागरण करने वालों में क्या स्पर्द्धा हो सकती है—जबकि इन्द्रादिकों का तो पतन हो जाता है और जागरण करने वालों का मोक्ष हो जाता है ॥५७६॥

प्रह्लाद संहिता में प्रह्लादजी ने कहा है—ब्रह्महत्यादिक जितने भी पाप हैं वे सब भगवान के जागरण से टुकड़े-टुकड़े होकर विलीन हो जाते हैं ॥५७७॥

एक ओर तो समस्त तीर्थों सहित यज्ञ-यागादि और एक-ओर देवाधिदेव भगवान का जागरण, दोनों की तुलना की जाय

नित्यमेव समायान्ति जागरे कृष्णवल्लभे ।
ऋषयो देवताद्यास्तु व्यासाद्या मुनयस्तथा ॥५८०॥

अहं त्वत्र प्रगच्छामि कृष्णपूजारतः सदा ।
तत्र काशी पुष्करं च प्रयागं नैमिषं गया ॥५८१॥

शालिग्राम—महाक्षेत्रं अर्बुदारण्यमेव च ।
शौकरं मथुरा तत्र सर्वतीर्थानि चैव हि ॥५८२॥

यज्ञा वेदाश्च चत्वारो व्रजन्ति हरिजागरम् ।
गंगा सरस्वती रेवा यमुना वै शतद्रुता ॥५८३॥

चन्द्रभागा वितस्ता च नद्यः सर्वास्तु तत्र वै ।
सरांसि च हृदाः सर्वे समुद्राः सर्व एव हि ॥५८४॥

एकादश्यां द्विजश्रेष्ठागच्छन्ते कृष्णजागरम् ।
स्पृहणीया हि देवानां ये नराः कृष्णजागरे ॥५८५॥

तो जागरण ही विशेष कहलायेगा । उसमें ब्रह्मा चन्द्र रुद्र शुक्र आदि देवगण नित्य आ पहुँचते हैं । ऋषि देवता व्यास आदि मुनिगण सभी आजाते हैं ।।५७८-५८०।।

मैं भी श्रीकृष्ण की पूजा में रत रहता हुआ कीर्तन में जाता हूँ । वहाँ—काशी, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, गया, शालिग्राम महाक्षेत्र, अर्बुदारण्य, बराहक्षेत्र, मथुरा आदि समस्त तीर्थ यज्ञ और चारों वेद पहुँच जाते हैं । गंगा सरस्वती रेवा यमुना शतद्रुता चन्द्रभागा वितस्ता आदि सभी नदियां सरोवर हृद और समस्त समुद्र एकादशी के जागरण में अवश्य सम्मिलित होते हैं । जो मनुष्य भगवान के जागरण में भाग लेते हैं गाते हैं नाचते हैं उनके प्रति देवता भी स्पृहा (मिलने

नृत्यं गीतं च कुर्वन्ति वीणावाद्यप्रहर्षिताः ।
कृष्णजागर आगतान् जातिबुद्धा न ग्लापयेत् ॥५८६॥

तथा कुमाराः—

सर्वे विप्रसमा ज्ञेयाः श्वपचा ह्यपि न संशयः ।
ये कुर्वन्ति दिने विष्णोर्जागरं गीतकीर्त्तनम् ॥
अतएव हि नृत्यत उपहासं तु नाचरेत् ॥५८७॥

तथा पाद्मे—

नृत्यमानस्य विप्रस्य उपहासं करोति यः ।
जागरे याति निरयं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥५८८॥
निवारयति यो गीतं नृत्यं जागरणे हरेः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥५८९॥

की इच्छा) करते हैं । इस प्रकार के भाव वाले जागरण में आये हुए भक्तों में जाति बुद्धि न रक्खी जाय ।।५८१-५८६।।

इसी प्रकार सनकादिकों ने कहा है—जो एकादशी को गायन नृत्य संकीर्तन के साथ-साथ जागरण करते हैं, वे यदि श्वपच (चाण्डाल) भी हों तो उन्हें ब्राह्मणों के समान ही समझना चाहिये, अतः उनका उपहास नहीं करना चाहिये ।।५८७

पद्मपुराण में लिखा है—जागरण में नाचने वाले ब्राह्मण का जो कोई उपहास करता है वह चौदह इन्द्रों के समय तक नरक में पड़ा रहता है ॥५८८।।

भगवान् के जागरण में नाच-गान पर जो कोई रोक लगाता है वह साठ हजार वर्षों तक रौरव आदि नरकों में पड़ा रहता है ।।५८९।।

मुख्याऽभावे पथि भक्तो धात्रीतुलसिकान्तिके ।
दिवि विष्णु पदत्रयं निरीक्ष्य वा स्वके हृदि ॥५६०॥

ध्यात्वावश्यं हरिं श्रियं कार्यं जागरणं ध्रुवम् ।
हरिवासरे वैष्णवैरेवं धर्मः सनातनः ॥५६१॥

एवं जागरणं कृत्वा प्रातः पूजां विभोर्हरेः ।
द्वादश्यां पारणं कुर्यात् स्वशक्त्या वैष्णवैः सह ॥
अथ पारणनिर्णयो द्वादश्यां तु निरूप्यते ॥५६२॥

विधिमाह कात्यायनः—

प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत् ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ॥५६३॥

प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।
पारणं तु ततः कुर्याद्यथासम्भवमग्रतः ॥५६४॥

कदाचित् मार्ग में चलता हो जिससे जागरण न कर सके तो आंवला तुलसी एवं त्रिलोकी का अतिक्रमण करने वाले वामन भगवान् का अपने हृदय में ध्यान कर लेवे ।।५६०।।

अधिक भी न हो तो श्रीराधासर्वेश्वर भगवान् के ध्यान के द्वारा ही जागरण कर लेवे, यही सनातन धर्म है ।।५६१।।

इस प्रकार जागरण करके द्वादशी को प्रातःकाल ही भगवान की पूजा करे, अपनी शक्ति के अनुसार वैष्णवों को भोजन कराकर स्वयं भी पारणा करे। अब द्वादशी के पारणा का निरूपण किया जाता है ।।५६२।।

कात्यायन ने ऐसा विधान किया है—द्वादशी को प्रातः-काल स्नान करके भगवान की पूजा करके उपवास को भगवदर्पण करे और यह प्रार्थना करे कि हे प्रभो ! अज्ञान तिमिर से

अत ऊर्द्ध्वं यथेष्टं वै विचरेत्तु यथा-रुचि।
द्वादशीपारणामात्र पर्याप्ता तु यदा तदा।।५९५।।
रात्रिशेषे स्नपनादिकर्म सर्वं विधाय च।
द्वादशीमध्यपारणं कुर्यादेव सदा मुनिः।।५९६।।
ननु रात्रौ स्नपनादि वर्ज्यं तत्तु महानिशि।
न रात्रिशेषयामे तु तथाऽऽहुः सनकादयः।।
न संस्नायान्निशि तत्तु महानिशि विवर्जयेत्।।५९७।।

पाद्मे—

यदा भवति स्वल्पापि द्वादशी पारणे दिने।
उषःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं तदा।५९८।।

अन्धे मुझ दीन हीन पर इस व्रत के द्वारा ही आप प्रसन्न होवें और सानुकूल होकर ज्ञान दृष्टि प्रदान करें। इस प्रार्थना के अनन्तर यथासम्भव पारणा करे।।५९३-५९४।।

पारणा करने के अनन्तर अपनी रुचि के अनुसार गृह-काज करे करावे। पारणा के दिन चाहे पूरे दिन द्वादशी हो या न हो योगमात्र से भी कार्य चल सकता है।।५९५

रात्रि के अन्त में स्नानादि करके द्वादशी के मध्य में मुनि सदा पारणा करे।।५९६।।

रात्रि में स्नान का जहां-तहां निषेध मिलता है वह अर्ध-रात्रि स्नान का निषेध समझना चाहिये। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में स्नान करने का तो सनकादिकों ने बड़ा महत्व बतलाया है।।५९७।।

पद्मपुराण में इसी का स्पष्टीकरण है—पारणा के दिन अत्यन्त स्वल्प भी द्वादशी हो तो उस दिन प्रातःकाल ही प्रातः-कालका और मध्याह्न का कर्तव्य पूरा कर लेना चाहिये।।५९८।।

नारसिंहे—

अल्पायामथ विप्रेन्द्रा द्वादश्यामरुणोदये ।
स्नानार्चनक्रिया कार्या दानहोमादि संयुता ॥५९९॥
त्रयोदश्यां तु शुद्धायां पारणे पृथिवीफलम् ।
सर्वयज्ञाधिकं वाऽपि नरः प्राप्नोत्यसंशयः ॥६००॥
एतस्मात्कारणाद्विप्र प्रत्यूषस्नानमाचरेत् ।
पितृतर्पणसंयुक्तं स्वल्पां दृष्ट्वैव द्वादशीम् ॥६०१॥

भविष्ये—

अल्पायामपि भूपाल ? द्वादश्यामरुणोदये ।
स्नानार्च्चनक्रिया कार्या दानहोमादिसंयुता ॥६०२॥

कालिकापुराणे—

श्व एव द्वादशी यत्र तत्र स्नानादिकी क्रिया ।
रजन्यामेव कर्त्तव्या दानहोमादिसंयुता ॥६०३॥

नृसिंहपुराण में भी ऐसा ही कहा गया है—हे ब्राह्मणो ! अरुणोदयकाल मात्र में ही थोड़ी द्वादशी हो तो स्नान अर्चन दान होम आदि उसी में कर लेना चाहिये ॥५९९॥

अरुणोदय के पश्चात् त्रयोदशी तिथि आजाय अथवा द्वादशी से सर्वथा रहित त्रयोदशी हो तब भी उसमें पारणा करने में कोई दोष नहीं, अपितु समस्त यज्ञों से भी अधिक पृथ्वी दान जैसा फल मिलता है, इसमें सन्देह नहीं करना ॥६००॥

इसलिये हे विप्रवर ! प्रातःकाल स्नान पितृ तर्पण अवश्य करे चाहे द्वादशी दर्शन मात्र की ही हो ॥६०१॥

यही आशय भविष्यपुराण के वचन का है ॥६०२॥

कालिकापुराण में लिखा है—दूसरे ही दिन द्वादशी हो तो उसी में स्नान आदिक क्रियायें करनी चाहिये और दान होम आदि रात्रि में भी करे ॥६०३॥

स्कान्दे—

कलाद्वयं त्रयं वाऽपि द्वादशी यत्र दृश्यते ।
स्नानार्च्चनादिकं कर्म तत्रैव च विधीयते ॥६०४॥

शारदापुराणे—

दिनकर्म दिने सर्वं कर्त्तव्यं यदि तद्दिनम् ।
नैव सिद्धिमवाप्नोति तदा रात्रौ विधीयते ॥६०५॥

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

स्नानं न हरये दद्याद्द्वादश्यां वैष्णवो दिवा ।
पक्षपूजाफलं सर्वं बाष्कलेयाय गच्छति ॥ ६०६॥
दिवा ग्रहणतो रात्रौ कर्त्तव्यमिति चार्थतः ।
एकादशीव्रतं कृत्वा द्वादशीमध्यपारणम् ॥
द्वादशी यदि लभ्येत नालंघ्याहान्यंवगम्मेत् ॥६०७॥

स्कन्दपुराण का वाक्य है—जिस दिन दो तीन कला भी द्वादशी हो उसी दिन स्नान अर्चन आदि कर्मों के करने का विधान है ॥६०४॥

शारदापुराण में लिखा है कि—दिन के सभी कार्य दिन में ही करने चाहिये, कदाचित् दिन में न हो सकें तब रात्रि में किये जा सकते हैं ॥६०५॥

त्रैलोक्य सम्मोहन तन्त्र में भी इसी का समर्थन किया गया है—बैष्णव यदि द्वादशी के दिन में भगवान् को स्नान न करावे तो पक्षभर की पूजा का फल बाष्कलेय (असुर) झपट लेता है ॥६०६॥

हां यदि दिन में ग्रहण हो तो भले ही रात्रि में स्नान करावें, ऐसा तात्पर्य निकाला जाता है । एकादशी का व्रत करके द्वादशी

तथा कौर्मे---

एकादशीमुपोष्यैव द्वादश्यां पारणं स्मृतम् ।
त्रयोदश्यां न तत्कुर्याद्द्वादशद्वादशीक्षयात् ॥६०८॥

स्कान्दे---

द्वादशीं यस्त्वतिक्रम्य त्रयोदश्यां तु पारणम् ।
करोति तस्य नश्यन्ति द्वादश्यो द्वादशैव तु ॥६०९॥
महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लंघिता नृणाम् ।
करोति धर्महरणमस्नातेव सरस्वती ॥६१०॥

भाविष्ये---

द्वादशीं समतिक्रम्य त्रयोदश्यां तु पारणम् ।
द्वादशाब्दफलं तस्य तत्क्षणादेव नश्यति ॥६११॥

में पारणा करना चाहिये, यदि पारणा के दिन द्वादशी मिल जाय तो उसका लंघन न करे, क्योंकि लंघन करने से हानि है ॥६०७॥

कूर्मपुराण में लिखा है—एकादशी में व्रत रखकर द्वादशी में पारणा करना चाहिये, त्रयोदशी में पारणा करने से द्वादशी के द्वादश फलों का क्षय हो जाता है ॥६०८॥

ऐसा ही भाव स्कन्दपुराण के वचनों का है—द्वादशी का त्याग करके त्रयोदशी में पारणा करने वालों के द्वादश फल नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार सरस्वती प्राप्त होने पर उसमें स्नान न करने से वह उसके धर्म का हरण कर लेती है उसी प्रकार द्वादशी के लंघन से बड़ी हानि हो जाती है ॥६०९-६१०॥

भविष्यपुराण में तो यहाँ तक कह डाला—द्वादशी को छोड़ त्रयोदशी में पारणा करने से उसी क्षण साधक के किये बारह वर्षों के सुकृतों का फल नष्ट हो जाता है ॥६११॥

कुमाराः—

यदि किंचित्त्रयोदश्यां द्वादशी चोपलभ्यते ।
द्वादश्यां पारणं तत्र वर्जयित्वा त्रयोदशीम् ॥६१२॥

ननु—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु ॥६१३॥

इति देवल-वचनाद्द्वादश्यतिक्रमेऽपि ।
न दोष इति चेन्नैवं यतस्तत्पारणं विना ॥६१४॥

तथा नारदीये वशिष्ठः—

पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।
क्षये वाऽप्यथवा वृद्धौ सम्प्राप्ते वा दिनक्षये ॥६१५॥

सनकादिक कुमारों ने कहा है—त्रयोदशी के दिन कुछ भी द्वादशी हो तो उसी द्वादशी के काल में पारणा कर लेवे, त्रयोदशी के काल में न करे ॥६१२॥

यहां यह प्रश्न होता है—सूर्योदय के समय में जो भी तिथि हो स्नान दान जप आदि में पूरे दिन वही तिथि समझना चाहिये, ऐसा देवल स्मृति का वचन है । उसके अनुसार द्वादशी के अतिक्रमण में भी कोई दोष नहीं ? इसका प्रत्युत्तर किया गया है, "नहीं" देवल के वचन का तात्पर्य पारणा को छोड़कर अन्य विषयों में समझना चाहिये ॥६१३-६१४॥

नारदीयपुराण में वसिष्ठजी के वचनों से ऐसा स्पष्ट होता है—तिथि क्षय या तिथि वृद्धि एव दिन का क्षय प्राप्त हो तो पारणा और मानव की मृत्यु के सम्बन्धी कार्यों में तात्कालिकी तिथि लेना चाहिये ॥६१५॥

उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ।
अत्र त्वेतावदेव हि तत्वं ज्ञेयं मनीषिभिः ॥६१६॥
एकादशीव्रतेऽविद्धे क्वचिद्वा द्वादशीव्रते ।
किञ्चिच्छिष्टां त्रयोदश्यां न द्वादशीमति क्रमेत् ॥६१७॥
द्वादश्यभाव एव तु त्रयोदश्यां हि पारणम् ।
त्रयोदश्यां तु शुद्धायां पारणे पृथिवीफलम् ॥
सर्वयज्ञाधिकं वाऽपि नरः प्राप्नोत्यसंशयः ॥६१८॥
इति नारसिंहोक्तेः ।

देवलमतं त्वस्मदुपोषणे संगच्छते ॥
सर्वाऽप्यौदयिकी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे ।
निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थप्रदायकः ॥६१९॥
इति भाविष्योक्तेः ॥

यहां उपवास के सम्बन्ध में तो यही निष्कर्ष समझना चाहिये, द्वादशी में उपवास और त्रयोदशी में उसका पारणा किया जा सकता है, कोई दोष नहीं ॥६१६॥

एकादशी विद्धा न हो अथवा कभी द्वादशी में व्रत हो अथवा त्रयोदशी में कुछ द्वादशी रहे तो द्वादशी का अतिक्रमण न करे ॥६१७॥

द्वादशी के अभाव में ही त्रयोदशी तिथि में पारणा कर लेने की छूट दी गई है। नृसिंहपुराण में जो शुद्ध त्रयोदशी को पारणा करने का आदेश दिया गया है और उसे पृथ्वी दान एवं समस्त यज्ञों के फल से भी श्रेष्ठ कहा है। उसका उपर्युक्त ही सारांश समझना चाहिये ॥६१८॥

देवल का मत तो हमारे अभिमत उपवास का ही समर्थन

अथ द्वादशीनिषेधाः । तथा ब्रह्माण्डे---

कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् ।
व्यायामं च प्रवासं च दिवास्वप्नमथाञ्जनम् ॥६२०॥
शिलापिष्टं मसूरं च द्वादशैतानि वैष्णवः ।
द्वादश्यां वर्ज्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२१॥

बृहस्पतिः--

दिवानिद्रा परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम् ।
क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्ज्जयेत् ॥६२२॥

कुमाराः---

कांस्यं मांसं सुरां द्यूतं व्यायामं क्रोधमैथुनम् ।
हिंसाऽसत्यमलौल्यं च तैलं निर्माल्यलङ्घनम् ॥
द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्ज्जयेत् ॥६२३॥

करता है। भविष्यपुराण में वेदव्यासजी के स्पष्ट वचन हैं— भगवान निम्बार्क जिनके वांछित फलदायक हों उस सम्प्रदाय के उपवासों में सभी तिथियाँ औदयिकी ग्रहण करनी चाहिये ।।६१९

द्वादशी में जो-जो निषिद्ध किये गये हैं उनका वर्णन ब्रह्माण्डपुराणके अनुसार किया जाता है—कांशीके पात्रमें भोजन मांस मदिरा मधु लोभ असत्य भाषण, व्यायाम प्रवास (यात्रा) दिन में सोना, आँखों में अञ्जन डालना, शिला पर पिसा हुआ अन्न और मसूर इन बारह का द्वादशी के दिन वैष्णव उपयोग न करे तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥६२०-६२१॥

वृहस्पति ने भी कहा है—दिन में सोना, पराया अन्न, दूसरीवार भोजन, मैथुन, मधु, कांसी के पात्र में भोजन, मांस और तेल इन आठ वस्तुओं का द्वादशी के दिन त्याग रक्खे ।।६२२

स्कान्दे--

क्षौद्रं मांसं सुरां द्यूतं व्यायामं क्रोधमैथुनम् ।
दिवाशयनमसत्यं द्वादश्या परिवर्ज्जयेत् ॥६२४॥
जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्सुकृतं समुपार्जितम् ।
नश्यते द्वादशीदिने हरेर्नैर्माल्यलंघनात् ।।
अर्द्धरात्रं त्रिसन्ध्यां न, पारणमाचरेत्सुधीः ॥६२५॥
तथा स्कान्दे--
सायमाद्यन्तयोरह्नोः सायं प्रातस्तु मध्यमे ।
उपवासफलप्रेप्सुर्जह्याद्भुक्तिचतुष्टयम् ॥६२६॥
एवमुक्तनिषेधांश्च त्यजन् कुर्वीत पारणम् ।
इत्युक्तं पक्षकृत्यं वै वर्णयिष्ये ह्यभिदधत् ॥६२७॥

सनत्कुमारों ने भी वैष्णवों को निम्नांकित बारह वस्तुओं के त्याग का आदेश दिया है—कांसी के पात्र में खाना, मांस, मदिरा, जुआ, व्यायाम, क्रोध, मैथुन, हिंसा, असत्यभाषण, चञ्चलता, तेल, भगवत्प्रसाद का लंघन, ये बारह द्वादशी को त्याज्य हैं ।।६२३।।

स्कन्दपुराण में कहा है—शहद, मांस, मदिरा, जुआ, व्यायाम, क्रोध, मैथुन, दिन में सोना, असत्यभाषण द्वादशी को ये त्याज्य हैं ।।६२४।।

भगवत्प्रसादी न छोड़े, उसके छोड़ने से तो जन्म भर के किये हुए सुकृत नष्ट हो जाते हैं । आधी रात और सन्ध्या के समय पारणा का भोजन भी निषिद्ध है ।।६२५।।

स्कन्दपुराण में कहा है--सूर्य के उदय एवं अस्त तथा प्रातः और ठीक मध्याह्न के समय भोजन न करे, ये चारों भुक्तियां निषिद्ध हैं ।।६२६।।

प्रतिमासं करणीयं वर्षकृत्यमनुक्रमात् ।
मार्गशीर्षं समारम्य पूज्या द्वादश देवताः ॥६२८॥
केशवाद्याः सहश्रिया आद्यायान्तरमात्रया ।
तत्र तु केशवकीर्त्तौ मार्गशीर्षे प्रपूजयेत् ॥६२६॥
पौषे नारायणकान्तौ यथाविधि प्रपूजयेत् ।
माघे तु माधवतुष्टौ भक्त्या सम्पूजयेत्सदा ॥६३०॥
फाल्गुणे किल गोविन्दपुष्टौ विष्णुधृतौ मधौ ।
वैशाखे मधुसूदनशान्तौ त्रिविक्रमश्रियौ ॥६३१॥
ज्येष्ठे वै पूजयेद्भक्त्या चाषाढ़े वामनक्रिये ।
श्रावणे श्रीधरमेधे भाद्रपदे तु पूजयेत् ॥६३२॥
महाभक्त्या हृषीकेशमाये परमवैष्णवः ।
तथाश्विने पद्मनाभश्रद्धे भजेत्तु कार्तिके ॥६३३॥
भक्त्या दामोदरलज्जे तथा देवी पुराणतः ।
मार्गशीर्षमारम्य केशवनारायणमाधव गोविन्द-

इस प्रकार कहे हुए निषेधों को छोड़ करके धारणा करना चाहिये । ये पाक्षिक कृत्य कहे गये, अब मास और बर्ष के कृत्यों का वर्णन किया जायगा । मार्गशीर्ष से लेकर बारह मासों में निम्नांकित मास देवों का पूजन करे ॥६२७-६२८॥

मार्गशीर्ष में कीर्ति के सहित केशब का पौष में कान्ति सहित नारायण का, माघ में तुष्टि सहित माधव का, फाल्गुन में पुष्टि सहित गोबिन्द का, चैत्र में धृति सहित विष्णु का, बैशाख में शान्ति सहित मधुसूदन का, ज्येष्ठ में श्री सहित त्रिविक्रम का, आषाढ़ में क्रिया सहित वामन का, श्रावण में मेधा सहित श्रीधर का, भाद्रपद में माया सहित हृषीकेश का, आश्विन में

विष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामनश्रीधरहृषीकेश–
पद्मनाभदामोदरान् पूजयेत्पुष्पधूपदीपनैवेद्यैरिति ॥६३४॥
एषां वर्णास्त्वागमे—

कृष्णस्तु केशव एव नारायणः कनककः ।
श्यामस्तु माधवो ज्ञेयो गोविन्दः कर्बुरस्तथा ॥६३५॥
विष्णूरक्तस्तथाधूम्रो मधुसूदन एव तु ।
हरितस्तु त्रिविक्रमः पिंगलो वामनस्तथा ॥६३६॥
अभ्रस्तु श्रीधरो श्वित्रो हृषीकेशश्च पाण्डुरः ।
पद्मनाभोऽञ्जनो ज्ञेयो दामोदरश्च वर्णतः ॥६३७॥
तत्रादौ मार्गशीर्षे तु प्रभातस्नानपूर्वकम् ।
पूजयेद्राधिकाकृष्णौ भक्त्या परमया सुधीः ॥६३८॥

श्रद्धा सहित पद्मनाभ का, कार्तिक में लज्जा सहित दामोदर का पूजन करे। देवीपुराण में भी धूप दीप नैवेद्य आदि से इनकी पूजा करने का विधान है ॥६२६-६३४॥

उपर्युक्त देवों का वर्ण क्रमशः इस प्रकार है—केशव का कृष्णवर्ण, नारायण का सुवर्ण जैसा, माधव का श्याम, गोविन्द का कर्बुर (चित्रविचित्र), विष्णु का लाल, मधुसूदन का धूम्र-वर्ण, त्रिविक्रम का हरा, वामन का पिंगल, श्रीधर का शुभ्र, हृषीकेश का श्वेत, पद्मनाभ का पाण्डुर, दामोदर का अञ्जन जैसा वर्ण है ॥६३५-६३७॥

मार्गशीर्ष मास में प्रातःकाल स्नान करके भक्तिपूर्वक श्रीराधाकृष्ण की पूजा करे। मासों में मार्गशीर्ष भगवान् का ही रूप है ऐसा भगवान् ने स्वयं अपनी विभूतियों का वर्णन करते

मासानां मार्गशीर्षोऽस्मि चेति भगवदुक्तितः।
विभूतिविषयत्वेन फलाधिक्याच्च तस्य तु ॥
तत्रापि तुलसीवने पूजयेत्कृष्णराधिके ॥६३९॥

तथा कुमाराः—

मासि मार्गशिरे पुण्ये महाविष्णुः प्रयत्नतः।
पूजनीयो महाभक्त्या तुलसीकानेन शुभे ॥६४०॥
तत्र महोत्सवः कार्यो वैष्णवैमुदिताननैः।
गीताद्यैः पुष्पताम्बूलैः सतामानन्द वर्द्धनः ॥६४१॥
श्रीकृष्णाय नवं वस्त्रं तूलिकाद्यं समर्पयेत्।
द्वादश्यां तत्र शुक्लायां विशेषेण भजेद्धरिम् ॥६४२॥

वाराहे दुर्वासास्तथा—

मार्गस्य शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां नियतात्मवान्।
स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा चाग्निकार्यं यथाविधि ॥६४३॥

समय गीता में कहा है। वृन्दावन पहुँचकर मार्गशीर्ष में श्रीराधाकृष्ण की पूजा का विशेष महत्व है ॥६३८-६३९॥

सनत्कुमारों ने कहा है—पवित्र मार्गशीर्ष मास में भक्तिपूर्वक वृन्दावन में यतन पूर्वक विष्णु भगवान् की पूजा करे, वैष्णवों को प्रमुदित होकर गायन-वादन सहित उत्सव करना चाहिये। भगवान को नवीन पोषाक धारण करावे, तूलिका आदि समर्पण करे। शुक्लपक्ष की द्वादशी को विशेष रूप से सेवा करे ॥६४०-६४२॥

वाराहपुराण में भी दुर्वासा ने कहा है—मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की द्वादशी को स्नान देवार्चन अग्निहोत्र आदि करके शंख चक्र गदा क्रीट-मुकुटधारी पीताम्बर पहिने हुए भगवान का

शंखचक्रगदापाणिं पीतवासः किरीटिनम् ।
ध्यात्वा जलं गृहीत्वा तु भानुरूपं जनार्दनम् ॥६४४॥
नुत्वाचेंद्दीपयेत्पश्चात्करयोर्येन माधवः ।
ततः पूजाविधानेन कान्त्या केशवं हि भजेत् ॥६४५॥
केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ।
जानुभ्यां नरसिंहाय ऊरू श्रीवत्सधारिणे ॥६४६॥
कंठे कौस्तुभनाभाय, वक्षः श्रीपतये नमः ।
त्रैलोक्यविजयायेति बाहू सर्वात्मने नमः ॥६४७॥
धूपदीपोपहाराद्यैरेवं कृष्णं श्रिया भजेत् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि इहलोके कृतान्यपि ॥६४८॥
अकामतः कामतो वा तानि नश्यन्ति तत्क्षणात् ।
या च वन्ध्या भवेन्नारी अनेन विधिनाशुना ॥६४९॥

ध्यान करके जल लेकर संकल्प करे, सूर्यरूपी भगवान को नमस्कार करके धूप दीप आदि से पूजा करे। फिर न्यास करे, केशवाय नमः कहकर पैरों का स्पर्श करे, दामोदराय नमः कहकर कटि का, नरसिंहाय नमः से घुटनों का, श्रीवत्सधारिणे नमः से जंघा का, कौस्तुभनाभाय नमः से कंठ का, श्रीपतये नमः से वक्षस्थल का, त्रैलोक्यविजयाय नमः से दोनों भुजाओं का स्पर्श करे। सर्वात्मने नमः कहकर धूप दीप उपहार आदि से श्रीराधाकृष्ण की पूजा करे। ऐसा करने से ब्रह्महत्या आदि पापों से भी छुटकारा मिल जाता है ॥६४३-६४८॥

इच्छा या अनिच्छा से जो भी पाप बन जाते हैं वे भी उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। वन्ध्या स्त्री भी यदि इस विधि से उपासना करे तो उसके परम वैष्णव पुत्र उत्पन्न हो। इस प्रकार

उपोस्या तु भवेत्तस्याः पुत्रः परम वैष्णवः।
एवं मार्गशिरं नीत्वा पौषकृत्यं समाचरेत् ॥६५०॥
तत्र कुमाराः—
पौषमासस्य या पुण्या द्वादशी शुक्लपक्षतः।
तद्वदाराधयेत्तत्र देवदेवं जनार्द्दनम् ॥६५१॥
कटिं नारायणायेति पादौ कूर्माय चादितः।
हरेः संकर्षणायेति चोदरं तु हरेस्ततः ॥६५२॥
विशोकाय वलायेति कंठं सुबाहवे भुजौ।
शिरश्चेति प्रपूजयेद्धरिं तत्तदुपस्करैः॥
नीत्वैवं पौषमथ तु माघकृत्यं समाचरेत् ॥६५३॥
तत्र गारुडे नारदः—
दुर्लभो माघमासस्तु वैष्णवानामतिप्रियः।
देवतानामृषीणाञ्च मुनीनां सुरनायक ! ॥६५४॥

मार्गशीर्ष में आराधना करके पौष मास के कर्तव्यों को करे ।।६४९-६५०।।

श्रीसनत्कुमारों ने कहा है—पौष शुक्ला द्वादशी को मार्गशीर्ष शु० १२ के अनुसार ही जनार्दन भगवान की आराधना करे ।।६५१।।

नारायणाय बोलकर कमर के, कूर्माय बोलकर पैरों के, संकर्षणाय से पेट के, बलाय से कंठ के सुबाहवे से दोनों भुजायें और मस्तक का स्पर्श करे। इस प्रकार समस्त उपकरणों द्वारा भगवान की पूजा करके पौष मास को पूर्ण करके माघ मास के कर्तव्यों का आचारण करे ।।६५२-६५३।।

गरुड़पुराण में श्रीनारदजी ने कहा है—वैष्णवों का अतिप्रिय माघ मास ऋषि मुनि और देवताओं के लिये भी बड़ा

विशेषेण शचीनाथ माधवस्याति वल्लभः।
अधिको माघमासस्तु मासानां हि शचीपते ॥६५५॥
पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा।
माघमासस्य विप्रेन्द्रैः पूजा विष्णौ विधीयते ॥६५६॥
स्नानं विलेपनं धूपं नैवेद्यादि समुद्भवम्।
माघमासे कृतं विष्णौ सर्वं भवति चाक्षयम् ॥६५७॥
श्रीकृष्णायार्पयेत्तत्र नवीनवस्त्र तूलिके।
प्रातःकाले द्विक्षेत्रीं च माषमात्रं घृतप्लुताम् ॥६५८॥
समानोपासकसद्भ्यस्तत्प्रसादं समर्पयेत्।
तदलाभे स्वयमद्यान्नासतेपिनिगामिने ॥६५९॥
तथा भागवते कश्यपः (८-१६-४१)
निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् ॥६६०॥

दुर्लभ है। हे शची–नाथ ! समस्त मासों में माघ मास भगवान् को विशेष प्रिय है ।।६५४-६५५।।

पौष शुक्ला पूर्णिमा से माघ शुक्ला १५ तक भगवान की विशेष पूजा करनी चाहिये। माघ में स्नान लेपन धूप नैवेद्य आदि से भगवान की पूजा करने से सब कुछ अक्षय हो जाता है ।।६५६-६५७।।

भगवान को नवीन पोशाक धारण करावे, प्रातःकाल घी में सनी हुई द्विक्षेत्री (मिश्री) का प्रसाद समान उपासना वाले वैष्णवों को वितरण करे वैष्णव न मिले तो स्वयं पाजाय किन्तु असज्जनों को भगवत्प्रसादी न देवें ।।६५८-६५९।।

भागवत (८-१६-४१) में भी यही कहा है, भगवान का नैवेद्य भगवद्भक्त वैष्णवों को देवे अथवा स्वयं पाजाय ।।६६०।।

प्रह्लाद पंचरात्रे—

अभावस्थान् कर्मजडान् वंचयेद्दक्षिणादिभिः ।
हरेर्नैवेद्यसम्भारान् वैष्णवेभ्यः समर्पयेत् ॥६६१॥
सदलाभे प्रसादस्य बहुत्वे जलवासिने ।
देवायैवार्पयेत्तथा स्मार्त्ता अपि पठन्ति हि ॥६६२॥
नैवेद्यप्रतिपत्त्यर्थं सात्वतश्चेन्न लभ्यते ।
हरेर्निवेदितं किञ्चिन्नदद्यात्कर्हिचिद्बुधः ॥६६३॥
अभक्तेभ्यः सशल्येभ्यो यद्ददन्निरयं पतेत् ।
माघे तु स्नानसेवादि यथाशक्त्येति गारुडे ॥६६४॥
मासार्द्धं मासमात्रं वा दशाहं वा तदर्धकम् ।
यथाशक्त्या हरेः पूजां कुर्वन्नाप्नोति तत्पदम् ॥६६५॥

पाद्मे—

तपःस्वाधाययज्ञाद्यमिष्टापूर्त्तं विना प्रिये ।
वाञ्छन्ति स्वस्ति ते स्नातुं प्रातर्माघेऽवनीश्वरः ॥६६६॥

प्रह्लाद पांचरात्र में यही बतलाया गया है—भगवद्भक्ति रहित कर्मजड़ों को दक्षिणा आदि भले ही दे देवे, भगवान का नैवेद्य तो वैष्णव भक्तों को ही अर्पण करे। सद्वैष्णव न हों और प्रसाद अधिक हो तो जलवासी जन्तुओं को दे देवे ॥६६१॥

स्मार्त भी कहते हैं कि भगवान के नैवेद्य को पाने वाले सात्विक वैष्णव न मिले तो वरुणदेव (जल) आदि के अर्पित कर दे ॥६६२॥

विद्वान वैष्णव सशल्य अभक्तों को भगवान का नैवेद्य न देवे। उन्हें देने वाला नरक में गिरता है। गरुड़पुराण में कहा है कि माघ में यथा शक्ति स्नान सेवा आदि पूरे मास करे, एक पक्ष अथवा दश या पांच दिन भी यथा शक्ति भगवान् की अर्चा करे तो यमयातना से छूट जाय ॥६६३-६६४-६६५॥

गोभूमितिलरत्नानि स्वर्णअन्नादिकानि ये।
अदत्वेच्छन्ति कल्याणं माघे स्नातु' नराधिप ! ।।६६७॥
त्रिरात्रादिव्रतैः कृच्छ्रैः पाराकैश्च निजां तनुम् ।
अशोष्येच्छन्ति ये स्वर्गं तपसि स्नातु' ते सदा ॥६६८॥
निरन्नायादितिः स्नातु' माघान् द्वादश मानसे।
पुत्रान्वै द्वादशादित्याँल्लेभे त्रैलोक्यदीपकान् ॥६६९॥
सुभगा रोहिणी माघाद्दानशीला ह्यरुन्धती।
शची तु रूपसम्पन्ना देवेन्द्रस्याभवत्प्रिया ॥६७०॥
धर्ममूलं सदा माघः पापमूलनिकृन्तनः।
काममूलफलद्वारो निःकामो ज्ञानदः सदा ॥६७१॥

पद्मपुराण में भगवान के वचन हैं—हे प्रिये ! तप स्वाध्याय यज्ञ इष्टापूर्त आदि के बिना जो कल्याण चाहते हैं वे माघ मास में प्रातःकाल स्नान करते हैं ।।६६६।।

गौ पृथ्वी रत्न तिल स्वर्ण अन्न आदि का दान किये बिना कल्याण चाहने वाले माघ स्नान करें ।।६६७।।

कृच्छ्र चान्द्रायण पाराक आदि व्रतरूपी तप द्वारा शरीरों का शोषण न करना चाहें, वे माघ स्नान करते हैं ।।६६८।।

अदितिने माघ के प्रात: स्नानसे ही त्रिलोकी के प्रकाशके बारह आदित्यों को पुत्र रूप से प्राप्त किया ।।६६९।।

रोहिणी शची अरुन्धती इन सबने भी माघ स्नान से रूप सम्पन्नता, देवेन्द्र प्रियता आदि की प्राप्ति की ।।६७०।।

माघ मास पाप को मिटाता है धर्म काम फलदायक है निष्काम भाव से साधन करने वालों के लिये ज्ञान प्रदान करता है ।।६७१।।

देवलोकान्निवर्तन्ते पुण्यैरन्यैः परन्तप।
कदाचिन्न निवर्त्तन्ते माघस्नानरता दिवः ॥६७२॥
नातः परतरं किञ्चित्पवित्रं पापनाशनम्।
नातः परतरं किञ्चिन्नातः परं तपो महत् ॥६७३॥
एतदेव परं पथ्यं सद्योदुरित नाशनम्।
हित्वाद्यं येन वै सद्यो देवस्त्रीणां प्रियो भवेत् ॥६७४॥
कार्तवीर्य उवाच—
हेतुना केन विप्रेन्द्र! माघस्नानं महाद्भुतः।
प्रभावो वर्णितो नूनं तन्मे कथय सुव्रत ॥६७५॥
गतपापो पदैकेन द्वितीयेन दिवंगतः।
वैश्यो माघजपुण्येन ब्रूहि मे तत्कुतूहलात् ॥६७६॥

हे परन्तप अर्जुन! अन्य प्रकार के पुन्य करने वाले कदाचित् देवलोक से लौट सकते हैं किन्तु माघ स्नान करने वाला सदा के लिये मुक्त हो जाता है ॥६७२॥

माघ स्नान से बढ़कर पापनाशक और कोई तपः नहीं ॥६७३॥

माघ मास शीघ्र ही पापों को नष्ट कर देता है, यह बड़ा पत्थ्य है, जिससे पाप मुक्त होकर मनुष्य शीघ्र ही देवांगनाओं का प्रिय बन जाता है ॥६७४॥

कार्तवीर्य ने पूछा—हे विप्रेन्द्र! माघ स्नान का ऐसा अद्भुत प्रभाव किस कारण से है ॥६७५॥

माघ की साधना से उद्भूत पुण्य के एक पद से ही एक वैश्य पाप मुक्त हो गया और दूसरे पद स्वर्ग में जा पहुँचा, इस कौतुहल को मुझे सुनाइये ॥६७६॥

दत्त उवाच—

निसर्गात्सलिलं मेध्यं निर्मलं शुचि पाण्डुरम् ।
मलहं पुरुषव्याघ्र ! द्रावकं दाहकं तथा ॥६७७॥
धारकं सर्वभूतानां पोषकं जीवकं च यत् ।
आपो नारायणो देवः सर्ववेदेषु पठ्यते ॥६७८॥
ग्रहाणाञ्च तथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।
मासानां हि तथा माघः श्रेष्ठः सर्वेषु कर्मसु ॥६७६॥
मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथामले ।
गोः पदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि ॥६८०॥
योगोऽयं दुर्लभो राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ।
अस्मिन्योप्यशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम् ॥६८१॥

श्रीदत्तात्रेयजी ने कहा—जल स्वभाव से ही पवित्र स्वच्छ निर्मल और पाण्डुर वर्ण का होता है। हे पुरुष व्याघ्र ! जल में द्रावकता और मल दाहकता भी स्वभाव से ही है ॥६७७॥

यह समस्तभूतों का धारक और पोषक है इसीलिये वेदों में इसे नारायणदेव कहा है ॥६७८॥

जैसे गृहों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ माने जाते हैं, उसी प्रकार सब महीनों में माघ मास श्रेष्ठ है ॥६७६॥

सूर्य मकर राशि पर हो तब माघ मास में प्रातःकाल गौ के खुर जितने खड्डे के जल में भी स्नान करने से पापियों को भी स्वर्ग प्राप्त हो जाता है ॥६८०॥

हे राजन् ! ऐसे पुनीत योग त्रिलोकी में मिलने कठिन हैं, जो अशक्त हों वह यदि तीन दिन भी स्नान कर लेवें और यथाशक्ति दान करें तो दरिद्रता मिट जाती है। तीन दिन के

दद्यात्किञ्चिद्यथाशक्ति दरिद्राभावमिच्छता ।
त्रिःस्नानेनापि माघे स्युर्धनिनो दीर्घजीविनः ॥६८२॥
पंच वा सप्त वाहानि चन्द्रवद्वर्धते फलम् ।
सम्प्राप्ते मकरादित्ये पुण्यैः पुण्यप्रदे सदा ॥६८३॥
कर्त्तव्यो नियमः कश्चिद्व्रतरूपी नरोत्तमैः ।
फलातिशयहेतोर्वाकिञ्चिद्भोज्यं त्यजेद्बुधः ॥६८४॥
भूमौ शयीत होतव्यमाज्ये तिलविमिश्रितम् ।
त्रिकालं वार्चयेन्नित्यं वासुदेवं सनातनम् ॥६८५॥
दातव्यो दीपकोऽखण्डो देवमुद्दिश्य माधवम् ।
परस्याग्निं न सेवेत त्यजेद्विप्रः प्रतिग्रहम् ॥६८६॥
माघान्ते भोजयेद्विप्रान् यथाशक्ति नराधिप ।
देया च दक्षिणा तेभ्यः आत्मनः श्रेय इच्छता ॥

माघ स्नान से भी दीर्घ जीवी और धनी बन जाता है, पांच सात दिन करे तो उसका फल चन्द्रकला की भाँति बढ़ता रहता है ॥६८१-६८२॥

उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि माघ में मकर राशि पर सूर्य के आते ही एक व्रतरूपी नियम कर लेवे। कोई भोज्य पदार्थ छोड़ देवे ॥६८३-६८४॥

अथवा प्रातः मध्याह्न सायं इन तीन कालों में वासुदेव प्रभु की पूजा करे। पृथ्वी पर सोवे तिल आदि मिलाकर घी का हवन करे ॥६८५॥

अखण्ड दीपक जलावे दूसरे की अग्नि का सेवन न करे और ब्राह्मण (प्रतिग्राह) दान न लेवे ॥६८६॥

माघ के अन्त में यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे, उन्हें

एकादशीविधानेन माघस्योद्यापनं शुभम् ।
कर्त्तव्यं श्रद्धानेन अक्षयस्वर्गवाञ्छया ॥६८७॥

माघस्नानमन्त्रः—

मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युतमाधव ।
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ॥६८८॥

इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनं समाहितः ।
वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवं च स्मरेत्पुनः ॥६८९॥

तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः ।
षड्गुणं फलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे ॥६९०॥

बहिः स्नानं तु वाप्यादौ द्वादशाब्दफलं स्मृतम् ।
तडागे द्विगुणं राजन् नद्यां तच्च चतुर्गुणम् ॥६९१॥

दक्षिणा देवे । एकादशी को विधानपूर्व उद्यापन करे तो अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥६८७॥

माघ में स्नान मन्त्र—हे गोविन्द ! अच्युत ! हे माघ ! मकरस्थ सूर्य के समय मेरे द्वारा किया हुआ यह माघ स्नान यथोक्त फल प्रदायक हो ॥६८८॥

इस प्रकार के मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्नान करे और मौन होकर एकाग्र चित्त से वासुदेव हरिकृष्ण माधव नामों का स्मरण करे ॥६८९॥

घर में जो व्यक्ति गर्म जल से स्नान करते हैं उससे ६ गुणा फल मकस्थ सूर्य के समय स्नान का है ॥६९०॥

बाहर बावड़ी आदि पर स्नान करने का फल बारह वर्ष तक का है तालाव में स्नान का फल उससे दुगुना और नदी का स्नान उससे भी चौगुना फल देता है ॥६९१॥

दशधा देवखाते च शतधा तु महानदी ।
शतचतुर्गुणं राजन् महानद्यास्तु संगमे ॥६९२॥

सहस्रगुणितं सर्वं तत्फलं मकरे रवौ ।
गंगायाः स्नानमात्रेण लभते मानुषं भवं ॥६९३॥

गंगां च येऽवगाहन्ति माघे मासि नृपोत्तम ।
निर्दिष्टमृषिभिः स्नानं गंगासौर्योस्तु संगमे ॥६९४॥

माघास्नायिनिदूषणं दत्त एवाह तत्र हि ।
अमाघस्नायिनां नृणां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥६९५॥

असूर्यं गगनं यद्वदचंद्रमुडुमंडलम् ।
तद्वन्नाभाति सत्कर्म माघस्नानं विना नृप ॥६९६॥

देव खात (सरोवर) में स्नान का दशगुना और महानदी स्नान का फल सौगुना होता है। महानदियों के संगम के स्नान का फल चारसौगुना और मकरस्थ सूर्य के समय उसी स्नान का सहस्रगुना फल मिलता है। गंगा के स्नान मात्र से मनुष्य योनि प्राप्त होती है ।।६९२-६९३।।

हे नृपोत्तम ! माघ में गंगा जमुना के संगम में स्नान करने के लिये ऋषियों ने आदेश दिया है। जो माघ में वहां स्नान नहीं करते उनको दूषित कहा है, क्योंकि जिन्होंने माघ में गंगा जमुना संगम पर स्नान नहीं किया उनका जन्म ही निष्फल है ॥६९४-६९५।।

सूर्य के बिना आकाश और चन्द्रमा के बिना तारामंडल जिस प्रकार शोभा नहीं देते, उसी प्रकार माघ स्नान बिना सत्कर्म शोभा नहीं देते ।।६९६।।

व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः।
माघस्नानकमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ॥६९७॥
नसमं भुवि किञ्चित्तु तेजः सौरेण तेजसा।
तद्वत्स्नानेन माघस्य न समाः क्रतुजाः क्रियाः ॥६९८॥
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये।
माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः ॥६९९॥
किं रक्षितेन देहेन सम्पुष्टेन बलीयसा।
अध्रुवेणाशुगेनेह माघस्नानं कृतं न चेत् ॥७००॥
रोममन्दिर मातरं रजस्वलमनित्यकम्।
चर्माम्बरवद्दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥७०१॥
जराशोकविपद्व्याप्तं सर्वदोषसमाश्रयम्।
दुस्तरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयविदूषितम् ॥७०२॥

व्रत दान तप आदि से प्रभु उतने प्रसन्न नहीं होते जितना कि माघ स्नान मात्र से प्रसन्न होते हैं ॥६९७॥

जिस प्रकार पृथ्वी पर सूर्य के तेज के बराबर अन्य कोई तेज नहीं उसी प्रकार माघ के स्नान को समझना चाहिये ॥६९८

समस्त पापों के परिहार और स्वर्ग प्राप्ति एवं भगवत्-प्रसन्नता के लिये मनुष्य को माघ का स्नान अवश्य करना चाहिये ॥६९९॥

यदि माघ स्नान न किया तो बलवान पुष्ट सुरक्षित देह से क्या लाभ ? ॥७००॥

यह शरीर रोमों से आवृत्त रक्त और चमड़ा की भांति दुर्गन्धियुक्त है मल-मूत्र का पात्र जरा शोक विपत्ति से व्याप्त समस्त दोषों का आश्रय दुष्ट दुर्धर दुस्तर इन तीन दोषों से दूषित है, अपवित्र–स्नायुओं से बंधा हुआ अनेक छिद्रों से युक्त आधि-

अशुचिस्नाविसच्छिद्रं तापत्रयविमोहितम् ।
कामक्रोधमदलोभनरकद्वार संस्थितम् ॥७०३॥
कृमिचर्मास्थिभस्मादिपरिणामि शुनां हविः ।
ईदृक् शरीरकं व्यर्थं माघस्नानविवर्जितम् ॥७०४॥
बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु ।
जायन्ते मरणायैव ये माघस्नानवर्जिताः ॥७०५॥
मकरस्थे रवौ यो दि न स्नायादुदिते रवौ ।
कथं पापैः प्रमुच्येत कथं च त्रिदिवं व्रजेत् ॥७०६॥
ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ।
माघस्नायी विपापः स्यात्तत्संगी चैव पञ्चमः ॥७०७॥

भौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक तीनों तापों से विमोहित नरक के द्वार रूप काम क्रोध मद और लोभ से युक्त, पतन होने पर कीड़े चमड़ा हड्डियां भस्म के रूप में परिणत हो जाता है, कुत्तों के लिये ही यह खाद्य हो जाता है। ऐसा शरीर यदि माघ स्नान से रहित है तो व्यर्थ ही है ॥७०१-७०४ ॥

जो माघ के स्नान से रहित हैं उन शरीरों का जन्म केवल जल के बुद्बु दे एवं जन्तुओं में पुत्तिका की भांति मरने मात्र के लिये ही पैदा होना समझना चाहिये ॥७०५॥

मकरस्थसूर्य में प्रातः सूर्योदय के जो स्नान नहीं करता वह पापों से मुक्त कैसे हो सकता है और कैसे उसे स्वर्ग मिल सकता है ॥७०६॥

ब्रह्मधात्ती स्वर्ण के चोर मदिरा पीने वाला गुरु स्त्री से संगम करने वाला और इन चारों से सम्पर्क रखने वाला, ये पांचों महाहत्या करने वाले भी माघ स्नान से निष्पाप हो जाते हैं ॥७०७॥

माघे मासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कम्पन्तं कं पुनीमहे ॥७०८॥

उपपातकानि सर्वाणि पातकानि महान्ति च ।
भस्मी भवन्ति सर्वाणि माघस्नायिनि मानवे ॥७०९॥

वेपन्ते सर्वपापानि माघमाससमागमे ।
नाशकालोऽयमस्माकं यदि स्नास्यति वारिणा ॥७१०॥

पावका इव दीप्यन्ते माघस्नाने नरोत्तमाः ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः ॥७११॥

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ् मनःकर्मभिः कृतम् ।
माघस्नानं दहेत् पापं पावकः समिधो यथा ॥७१२॥

माघ में सूर्योदय के समय जल से यही ध्वनि निकलती है— ब्रह्मघात्ती-सुरापान करने वाला यदि कोई काया रहा है तो शीघ्र आकर स्नान करो हम सबको पवित्र कर देंगी ॥७०८॥

माघ में स्नान करने वालों के उपपातक और महापातक सब भस्म हो जाते हैं ॥७०९॥

माघ मास के आते ही सब पाप कांपने लगते हैं, वे कहते हैं यह हमारे नाश का समय आगया है, यदि कोई स्नान कर लेगा तो हमारा नाश हो जायगा ॥७१०॥

माघ स्नान से साधक सब पापों से मुक्त होकर मेघमाला से मुक्त चन्द्रमा एवं स्वच्छ अग्नि के समान देदीप्यमान हो जाता है ॥७११॥

वाणी मन और शरीर से लघु स्थूल गीले सूखे जितने भी पाप बन गये हों, वे सब माघ स्नान से इस प्रकार जल जाते हैं जैसे अग्नि से सूखी लकड़ी जल जाती है ॥७१२॥

प्रमादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।
स्नानमात्रेण तन्नश्येन्मकरस्थे दिवाकरे ॥७१३॥
निःपाप्मानो दिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ।
सन्देहोऽत्र न कर्त्तव्यो माघस्नानान्नराधिप ॥७१४॥
सर्वेषा सर्वदो माघः सर्वेषां पापनाशनः ।
संसारकर्द्दमलेप–प्रक्षालन विशारदः ॥७१५॥
पावनं पावनानाञ्च माघस्नानं नराधिप ।
स्नान्ति माघे न ये राजन् सर्वकामफलप्रदे ॥७१६॥
ते कथं भुञ्जते भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।
अस्मिन् पुण्यतमे मासे महाविष्णुं मुदान्वितः ॥७१७॥
पूजयेत्परया भक्त्या सर्वकामसमृद्धये ।
नवनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम् ॥७१८॥

प्रमाद से या जानकर अथवा अनजान में जितने भी पाप बन जाते हैं वे सब मकरस्थ सूर्य के समय माघ मास के स्नान मात्र से नष्ट हो जाते हैं ।।७१३।।

हे नरेन्द्र ! पाप-रहित व्यक्ति स्वर्ग को जाते हैं पापी नरक में, किन्तु माघ स्नान से सबके पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। संसार रूप कीचड़ के प्रक्षालन में माघ मास बड़ा विशारद है ।।७१५।।

माघ स्नान पवित्रोंमें पवित्र है । जो इस समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले माघ में स्नान नहीं करते वे चन्द्र-सूर्य जैसे गृहों की उपमा वाले उज्ज्वल सुखों का उपभोग कैसे कर सकते हैं ।।७१६।।

इस पवित्र मास में मोदपूर्वक भक्ति से जो विष्णु की पूजा करते हैं उनकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ।।७१७।।

शंखचक्रगदापद्मधरं पीतांबरावृतम् ।
कौस्तुभेन विराजंतं वनमालाधरं हरिम् ॥७१६॥
लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रिया ।
विराजन्तं किरीटेन वलयांगदनूपुरैः ॥७२०॥
प्रसन्नवदनाम्भोजं चतुर्बाहुं श्रियान्वितम् ।
विचिन्त्यैवं महाविष्णुं गन्धादिभिः प्रपूजितम् ॥७२१॥
द्वादश्यां तु विशेषेण कुर्यात्पुष्पकमंडपम् ।
नैवेद्यानि विचित्राणि दद्यान्माधवतुष्टये ।
वैष्णवानां च पूजां वै कृत्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥७२२॥
अथ वसन्तपञ्चमी समुत्सवो निरूप्यते—
संस्कृत्य कृष्णराधयोर्गन्धपुष्पजलादिभिः ।
मन्दिरमाह्वयन्सतो महास्नानं प्रदाय हि ॥७२३॥

नवीन मेघ के समान वर्ण, कमल नयन, शंख चक्र गदा पद्म एवं पीताम्बरधारी, कौस्तुभमणि और वनमाला पहिने हुए कानों में धारण किये हुए कुण्डलों से सुशोभित कपोल वाले, कंकण बाजूवन्द नूपुर किरीट आदि से सुशोभित प्रसन्न मुखकमल वाले, श्रीमहालक्ष्मी से युक्त चतुर्भुज महाविष्णु की गध पुष्प आदि से पूजा करके उनका ध्यान करे ॥७१८-७२१॥

माघ की द्वादशी के दिन विशेष रूप से पुष्प मंडप वनावे, श्रीराधामाधव की तुष्टि के लिये विविध भांति का नैवेद्य भोग धरे फिर वैष्णवों का सन्मान करे तो सर्वप्रकार की सिद्धियां प्राप्त हो जायें ॥७२२॥

अब वसन्तपञ्चमी के उत्सव का निरूपण किया जाता है— गंध पुष्प जलादि से श्रीराधाकृष्ण की पूजा करके मंदिर में

ताभ्यां महासुनैवेद्यं नानागुणमयं शुभम् ।
नवीनपीतवस्त्राद्यै रलं कुर्याच्छ्रियं हरिम् ॥७२४॥

समाहूतान्समाहूतान्समानोपासकान्सतः ।
प्रसाद्य हर्यवशेषाद्यै महोत्सवमुपक्रमेत् ॥७२५॥

आरभ्य शुक्लपंचमीं कृष्णस्य शयनावधिम् ।
वसन्तरागमुन्नयेद्राधाकृष्ण — रसान्वितम् ॥७२६॥

ततः परं न गापयेत्तथोक्तं सनकादिभिः ।
श्रीपञ्चमीं समारभ्य यावत्स्याच्छयनं हरेः ॥७२७॥

वसन्तरागः कर्त्तव्यो नान्यदेति कदाचन ।
अथ फाल्गुणकृत्यं च कार्यं कृष्णपरायणैः ॥७२८॥

फाल्गुणे तु शिवव्रतं कुर्वतस्त्वनुमोदयेत् ।
कृष्णपक्षचतुर्दश्यां सशल्यश्चे त्स्वयं चरेत् ॥७२९॥

महास्नान कराकर उनको विविध भाँति का नैवेद्य भोग धरे, नवीन बस्त्र और अलंकार धारण करावे ।।७२३-७२४।।

बुलाये हुए स्वसम्प्रदायी वैष्णवों को भगवत्प्रसादी वितीर्ण करके उत्सव का आरम्भ करे ।।७२५।।

माघ शुक्ला पञ्चमी से आरम्भ करके शयन आषाढ़ शुक्ला ११ तक वसन्तराग में श्रीराधाकृष्ण के गुणगण पूर्ण पदों का गान करे ।।७२६।।

श्रीसनकादिकों ने कहा है—देवशयनी के पश्चात् वसन्त राग न गावे । श्री (वसंत) पंचमी से शयन पर्यन्त ही गावे ।।७२७

अब फाल्गुन मास के कर्तव्यों का निरूपण किया जाता है—फाल्गुन मास में यदि कोई शिव चतुर्दशी का व्रत करे तो उसका विरोध न करके अनुमोदन ही करना चाहिये । यदि स्वयं

न द्विष्याद्वैष्णवोयद्यफलः कौर्मेतथोदितम् ।
परात्परतरं यान्ति नारायणपरायणाः ॥७३०॥

न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम् ।
सशल्यं प्रति पाद्मे च निषेधोविधिरीरितः ॥७३१॥

द्रव्यमन्नंफलंतोयं शिवस्थं न स्पृशेत्कचित् ।
निर्माल्यं नैव लङ्घेत कूपे सर्वं विनिक्षियेह ॥७३२॥

अन्यथा स्वकृतरिक्तः सर्वथा नरकं व्रजेत् ।
नाराधयेदनन्यस्तु देवतान्तरमद्विषन् ॥७३३॥

भी सशल्य हो अर्थात् अनन्य भावना न हो तो स्वयं भी शिव-चतुर्दशी का व्रत कर सके ॥७२८-७२६॥

वैष्णव को चाहिये कि शंकर से विद्वेष न करे। कूर्म-पुराण में ऐसा कहा है कि नारायण के उपासक यद्यपि परात्पर-तम लोक को प्राप्त कर लेते हैं तथापि महेश्वर से द्वेष करने से उनको वैसा फल नहीं मिल सकता। पद्मपुराण में अनन्य के लिये शिव व्रत का निषेध है तो सशल्य के लिये विधान भी मिलता है ॥७३०-७३१॥

शिवजी के चढ़े हुए अन्न द्रव्य फल जल आदि का स्पर्श न करे। उसका उल्लघन भी न करे, इसी उद्देश्य से उनको किसी नदी एकान्तिक कूप में डाल देवे। नहीं तो अपने द्वारा किया हुआ सुकृत नष्ट हो जाता है और नरक यातना भोगनी पड़ती है ॥७३२॥

अनन्य भाव वाले को चाहिये कि वह किसी भी अन्य देव की आराधना न करे किन्तु निन्दा भी न करे ॥७३३॥

तथा महाभारते कृष्णः—

नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत् ।
चक्राङ्कितः सदा तिष्ठेन्मद्भक्तः पाण्डुनन्दन ॥७३४॥

पाद्मे—

नारायणात्परो देवो नास्ति मुक्तिप्रदो नृणाम् ।
नारायणाद्देवदेवादन्येषामर्चनं न तु ॥७३५॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य कृष्णमर्चेद्विशेषतः ।
सामर्द्दकीति विख्याता तथा प्रभासखण्डके ॥७३६॥

क्षीरोदे मथ्यमाने तु यदा वृक्षः समुत्थितः ।
आमर्द्दे देवदैत्यानां तेन सामर्द्दकी स्मृता ॥७३७॥

शिवा लक्ष्मीः स्मृतो वृक्षः सेव्यते सुरसत्तमैः ।
देवैर्ब्रह्मादिभिः सर्वैर्वृक्षोऽसौ वैष्णवः स्मृतः ॥७३८॥

महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण ने ऐसा ही आदेश दिया है—हे पाण्डु नन्दन ! मेरा भक्त चक्राङ्कित होकर रहे, अन्य किसी देव को नमस्कार क्या दर्शन भी न करे ॥७३४॥

पद्मपुराण में कहा है—श्रीनारायण से उत्तम और कोई देव नहीं है, वही मुक्ति प्रदान कर सकता है, अतः उनके अतिरिक्त अन्य किसी देव के पूजन करने की आवश्यकता नहीं है ॥७३५॥

फाल्गुन शुक्लपक्ष की द्वादशी का नाम आमर्द्दिकी भी है उस दिन श्रीकृष्ण की विशेष पूजा करे, प्रभासखण्ड में उस दिन को और भी विशेष फल प्राप्त होता है ॥७३६॥

देव दैत्यों द्वारा क्षीरसमुद्र मथने पर उससे एक वृक्ष प्रकट हुआ, इसी कारण उसे आमर्दक कहते हैं ॥७३७॥

अत एवाम्लिकांति कृष्णसेवाप्रदक्षिणे ।
कुर्वन्ति फाल्गुणे शिष्टा भाविष्योत्तरके तथा ॥७३९॥
फाल्गुणे मासि शुक्लायामेकादश्यां जनार्द्दनः ।
वसत्यामलके वृक्षे लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ॥
तत्सन्निधौ ततः पूजां प्रदक्षिणां च कारयेत् ॥७४०॥
कुमाराः—
आमर्द्दकी यतो जाता निष्ठीवात्पद्मसम्भवात् ।
जमदग्नेः परशुरामश्च आमल्या सहितो हरिः ॥७४१॥
तन्निकटे ततः सेवा प्रदक्षिणा विधीयते ।
द्वादशीपुष्यभयुक्ता फाल्गुणेऽति विशिष्यते ॥७४२॥

वह वृक्ष श्रीब्रह्मादि देवताओं द्वारा सेवन किया जाता है, अतः श्रीपार्वतीजी एवं श्रीलक्ष्मीजी ने उसे वैष्णव वृक्ष कहा है ॥७३८॥

इसीलिये कृष्णसेवा परायण फाल्गुन में आमला की प्रदक्षिणा करते हैं । भविष्योत्तरपुराण में इसका विधान है—फाल्गुन शुक्ला एकादशी को भगवान लक्ष्मी सहित आंवला के वृक्ष में रहते हैं अतः आंवला वृक्ष की सन्निधि में उस दिन प्रभु का अर्चन करे और आंवला की परिक्रमा लगावे ॥७३९-७४०॥

सनत्कुमारों ने भी कहा है—ब्रह्माजी के निष्ठीव (थूक) से आमर्दकी उत्पन्न हुई जैसे जमदग्नि से परशुराम प्रगट हुए थे । अविसार के साथ प्रभु प्रगट हुए, इसीलिये आंवला के निकट भगवान की सेवा और आंवला की प्रदक्षिणा करते हैं । यदि द्वादशी पुष्य नक्षत्र युत हो तो वह विशेष फल प्रदान करती है ॥७४१-७४२॥

तथा ब्राह्मे—

अत्रेतिहासोऽपि कस्यचिद्व्याधस्य पापरतस्य च ।
प्रसंगादभक्तितोऽपि पुष्यद्वादशीं क्वचित् ॥७४३॥
उपोष्य फाल्गुणे मासे चक्रे जागरणं शुभम् ।
तेन सातीवधर्मात्मा राजाऽसौ लोकविश्रुतः ॥७४४॥

पाद्मे—

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ।
सर्वपापहरा ह्येताः कर्त्तव्याः फलकांक्षिभिः ॥७४५॥
द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्वसु ।
नाम्ना सा तु जयाख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥७४६॥
तामुपोष्य नरो घोरे नरके नैव मज्जति ।
अग्निष्टोमादियज्ञानां फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥७४७॥

ब्रह्मपुराण में लिखा है--किसी पापी व्याध का एक इतिहास है, यद्यपि वह भक्त नहीं था तथापि प्रसंगवश फाल्गुनमें पुष्ययुक्त द्वादशी का कभी उसने व्रत और जागरण किया जिससे वह अति धर्मात्मा यशस्वी राजा हुआ ।।७४३-७४४।।

पद्मपुराण में—जया-विजया जयन्ती, पापनाशिनी ये चार महाद्वादशी बतलाई हैं इनके व्रत से साधक पापरहित हो जाता है, अतः फल चाहने वालों को उनका व्रत अवश्य ही करना चाहिये ।।७४५।।

शुक्लपक्ष की द्वादशी को यदि पुनर्वसु नक्षत्र हो तो जया महाद्वादशी कहलाती है ।।७४६।।

उस दिन उपवास करने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता, उसे अग्निष्टोमादि यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है ।।७४७

यदा च शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणो भवेत् ।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥७४८॥
यदा च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते ।
जयन्तीनाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥७४९॥
सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
क्षयं याति च गोविन्दं तस्यामभ्यर्च्य भक्तितः ॥७५०॥
यदा च शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ॥७५१॥
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना ।
तस्यामाराधितः कृष्णो दत्तवानखिलां भुवम् ॥७५२॥
वाचिकान्मानसात्पापात्कायिकाच्च विशेषतः ।
सप्तजन्मकृताद्घोरान्मुच्यते नात्र संशय ॥७५३॥

यदि शुक्लपक्ष की द्वादशी को श्रवण नक्षत्र हो तो वह सब पापों को हरने वाली विजया महाद्वादशी कहलाती है ॥७४८

शुक्लपक्ष की द्वादशी को रोहिणी नक्षत्र हो तो वह जयन्ती महाद्वादशी कहलाती है ॥७४९॥

उस दिन भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण की पूजा करने से सात जन्मों के जितने भी पाप हों वे सब विनष्ट हो जाते हैं ॥७५०॥

शुक्लपक्ष की द्वादशी को यदि पुष्य नक्षत्र हो तो वह महापुनीत पापनाशिनी महाद्वादशी कहलाती है ॥७५१॥

सगर ककुत्स्थ धुन्धुमार गाधि आदि ने उस दिन भगवान श्रीकृष्ण की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें समस्त पृथ्वी का राज्य प्रदान किया ॥७५२॥

सात जन्मों तक के कायिक वाचिक मानसिक घोर पापों से साधक मुक्त हो जाता है ॥७५३॥

इमामेवमुपोष्येत पुष्यनक्षत्रसंयुताम् ।
एकादशी सहस्रस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा ॥७५४॥

स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायो देवतार्च्चनम् ।
यदस्यां क्रियते किञ्चित्तदनन्तगुणं भवेत् ॥७५५॥

तस्मादेषा प्रयत्नेन कर्त्तव्या फलकाङ्क्षिभिः ।
फाल्गुणे च विशेषेण विशेषः कथितो नृप ॥७५६॥

आमलक्या व्रतं पुण्यं विष्णुलोकप्रदं नृणाम् ।
आमलक्यामधोगत्वा जागरं तच्च कारयेत् ॥
कृत्वा जागरणं विष्णोर्गोसहस्रफलं लभेत् ॥७५७॥

विष्णुः—

आदौ गुरुगृहे गत्वा पश्चान्नियमं तु कारयेत् ।

पुष्य नक्षत्रयुक्त द्वादशी के व्रत का फल हजारों एकादशियों के व्रत से भी विशेष होता है ॥७५४॥

स्नान, दान, तप, होम, देवताओं के अर्चन का उस दिन अनन्त फल मिलता है ॥७५५॥

इसलिये इसका व्रत अवश्य करना चाहिये, फाल्गुन में और भी विशेष महत्व बतलाया है ॥७५६॥

आमलकी का व्रत विष्णुलोक प्रदान करता है। आंवला के वृक्ष के नीचे जाकर उस दिन जागरण करना चाहिये जिससे हजारों गोदान जैसा फल मिलता है ॥७५७॥

विष्णुस्मृति में कहा है—पहले गुरुदेव के घर जाकर इस मन्त्र से नियम लेना चाहिये। हे अच्युत ! एकादशी को निरा-

तत्र नियममन्त्रः—

एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैव परेऽहनि ।
भोक्ष्येऽहं जामदग्नीश शरणं मे भवाच्युत ॥७५८॥

एवं कृत्वा नियमं तु न वदेत्पतितैः सह ।
नाचरेन्निन्द्यकर्माणि ततः स्नायाद्विधानतः ॥७५६॥

आदौ भक्त्या जामदग्निं कारयित्वा हिरण्मयम् ।
माषकेण सुवर्णेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥७६०॥
देवार्चनगृहे गत्वा गीतवादित्र निःस्वनैः ।
ततः आमर्द्दकीं गच्छेत् सर्वोपस्करसंयुतः ॥७६१॥
तस्याधः सजलं कुम्भं स्थापयेन्मन्त्रसंयुतम् ।
पञ्चरत्नसमायुक्तं दिव्यगन्धादिवासितम् ॥७६२॥
विधायोपानहौ छत्रं श्वेतव्यजनचामरे ।
तस्योपरि न्यसेत् पात्रं दिव्यैर्वान्नैः प्रपूरितम् ॥७६३॥

हार रहकर दूसरे दिन मैं भोजन करूंगा, मैं आपकी शरण में हूँ आप मेरी सहायता करें ।।७५८।।

इस प्रकार नियम करके विधानपूर्वक स्नान करे, निन्द्य कर्म न करे पतितों से सम्भाषण न करे ।।७५६।।

एक या आधामासा सुवर्ण से जामदग्नि की प्रतिमा बनावे । देव मंदिर में जाकर फिर गायन वादन सहित आंवला के वृक्ष के पास जाय । उसके नीचे जल से भरे हुए कुम्भ की स्थापना करे उसमें पञ्चरत्न और कपूर आदि सुगन्धित वस्तुयें डाले ।।७६०-७६२।।

उपानह छत्र-सफेद वीजना छत्र चमर आदि को रक्खे । उस कुम्भ पर अन्न का भरा पात्र रक्खे, उसके ऊपर श्री परशुराम जी की प्रतिमा को विराजमान करे ।

तत्रोपरि न्यसेद्देवं जामदग्न्यं विशोकजम् ।
ॐ विशोकाय नमः पादौ जानुनी विश्वरूपिणे ॥७६४॥
हयग्रीवाय तथोरूकटिं दामोदराय च ।
कन्दर्पाय नमोगुह्यं नाभिं च पद्ममालिने ॥७६५॥
चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः ।
वैकुण्ठाय नमः कंठमास्यं यज्ञमुखाय वै ॥७६६॥
नासायां शोकनिधने वासुदेवाय चक्षुषि ।
ललाटं वामनायेति रामायेति पुनर्भ्रुवौ ॥७६७॥
नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत् ।
एवं सम्पूज्य देवेशं जामदग्न्यं जगद्गुरुम् ॥७६८॥
स्वशक्त्या विविधैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विलेपनैः ।
पत्रपूगाक्षतैरर्घैर्नारिकेलादिभिः फलैः ॥७६९॥

फिर निम्नांकित मन्त्रों से न्यास करे—'ओं विशोकाय नमः' बोल करके दोनों पैरों के, विश्वरूपिणे से घुटनों के, हयग्रीवाय से जांघों के, दामोदरायसे कमर के, कन्दर्पाय नमः कहकर गुह्य-स्थलको स्पर्श करे । पद्ममालिने नमः बोलकर नाभि को,चक्रिणेसे वाम भुजा को, गदिने से दक्षिण भुजा को वैकुण्ठाय नमः बोल-कर कंठ को,यज्ञमुखाय नमः से मुख को,शोकनिधनेसे नासिका के वासुदेवाय से दोनों चक्षुओं को,वामनाय से ललाट को, रामाय से दोनों भ्रकुटियोंको, सर्वात्मने नमः बोलकर शिरको स्पर्श करे इस प्रकार न्यास के द्वारा जगद्गुरु श्री परशुरामजी का पूजन करे ॥७६३-७६८॥

पान सुपारी अक्षत अर्घ्य नारियल आदि फलों को अर्पित करे, आंवला की १०८ या अठाईस परिक्रमा करे,

प्रदक्षिणं ततः कुर्यादामल्या विधिवत्तदा ।
शतमष्टाधिकं चैव अष्टाविंशतिमेव च ॥७७०॥
ततः प्रभातसमये कृत्वा नीराजनं हरेः ।
पूजयित्वा गुरुं सम्यक् तस्मै सर्वं निवेदयेत् ॥७७१॥
जामदग्निः स्वयं छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ ।
जामदग्निस्वरूपो स्वीकरोतु मम केशवः ॥७७२॥
तत आमलकीं श्रेष्ठां कृत्वा चैव सुदक्षिणाम् ।
कृत्वा स्नानं तु विधिवद्वैष्णवान्भोजयेत्ततः ॥७७३॥
ततस्तु स्वयमश्नीयात् कुटुम्बेन समन्वितः ।
एवं कृते तु यत्पुण्यं सर्वदानैश्च यत्फलम् ॥७७४॥
सर्वयज्ञाधिकं चैव लभते नात्र संशयः ।
प्रतिपक्षं प्रतिमासं वर्षे कृष्णानुशीलनम् ॥७७५॥
स्वनाम्ना पृथगायुधानि चक्रादीनि पूजयेद्धरेः ।
ओं श्रीं मित्यादिना नाम मन्त्रेण सर्वपूजनम् ॥७७६॥

फिर प्रभात समय आरती करके गुरुदेव की पूजा करे। और फल पुष्पादि समर्पण करे ॥७६९-७७१॥

छत्र युगलवस्त्र, उपानह का दान करे और आंवला की प्रदक्षिणा व भेट करके स्नान करके विधिपूर्वक वैष्णवों को भोजन करावे ॥७७२-७७३॥

फिर अपने कुटुम्ब सहित स्वयं भोजन करे। इस प्रकार करने से जो फल सम्पूर्ण दान और यज्ञों के द्वारा प्राप्त होता है उससे भी अधिक फल इस व्रत से मिल जाता है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। प्रतिवर्ष प्रत्येक मास और प्रत्येक पक्ष में इस प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना करनी चाहिये ॥७७४-७७५

ओं श्रीं सुदर्शनाय नमः, ओं श्रीं पाञ्चजन्याय नमः ।
ओं श्रीं कौमोदिक्यै नमः ॥७७७॥
एवं पद्माय धनुषे वाणाय चर्मणे नमः ।
खड्गाय मुसलादिभ्यः सर्वास्त्रेभ्यो नमोनमः ॥७७८॥
एवं सम्पूज्य देवेशं अर्घ्यं पूजकतोर्पयेत् ।
नालिकेरेण शुभ्रेण भक्तियुक्तेन चेतसा ॥७७९॥
अर्घ्य-मन्त्रः—
नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोनमः ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं आमल्या सहितो हरे ॥७८०॥
आमलकीसहिताय श्रीपरशुरामायार्घ्यं नमः ।
त्वत्प्रसादाद्भार्गवेश सर्वं संयातु कायिकम् ॥७८१॥
वाचिकं मानसं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ।
परिक्षयं तथारोग्यं धनधान्यसुसम्पदः ॥७८२॥

भगवान के चक्रादि आयुधों की पूजा करे 'ओं श्रीं' इन बीजों के पश्चात् उन आयुधों के नामों का उच्चारण करे जैसे—ओं श्रीं सुदर्शनाय नमः । ओं श्रीं पाञ्चजन्याय नमः । ओं श्रीं कौमोदक्यै नमः । इसी प्रकार पद्म, धनुष, वाण, चर्म, खड्ग, मूशल आदि समस्त अस्त्रों को नमस्कार करे । इस प्रकार भगवान की अर्घ्य आदि से पूजा करके शुभ्र नारियल भेंट धरे ॥७७६-७७९॥

अर्घ्य देने का मन्त्र—हे देव ! देव जामदग्न्य आपको नमस्कार है, मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य को स्वीकार कीजिये, आमलकी सहित श्रीपरशुराम को नमस्कार है । हे भार्गवेश ! आपकी कृपा से समस्त कायिक वाचिक मानसिक पाप जो जान अजान में

सन्तानस्तस्य सौभाग्यं विपुलं तु कुलं भवेत् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति दिव्यसौख्यं निरन्तरम् ॥७८३॥
अन्ते तु वासुदेव मे भक्तिस्त्वच्चरेण प्रभो ।
जनार्द्न हृषीकेश भूतावास सुरार्चित ॥७८४॥
रामराम महाबाहो कार्तवीर्यविनाशन ।
एतत्सर्वं मया दत्तं ज्ञानज्ञेय-तवाच्युत ॥७८५॥
मामुद्धर जगन्नाथ दयां कृत्वा ममोपरि ।
इति श्रीपरशुरामप्रार्थनामन्त्र वर्गकः ॥७८६॥
अथ धात्रीसिञ्चन मन्त्राः—
पितामहा गताः सर्वे ह्यपुत्रा ये च गामिनः ।
वृक्षयोनिगता ये च ये च ब्रह्माण्डमध्यगाः ॥७८७॥

बन गये हों वे सब विनष्ट हो जायें एवं आरोग्य धन-धान्य सम्पदाओं की वृद्धि हो ॥७८०-७८२॥

इस प्रकार साधना करने वाले के सन्तान सौभाग्य और कुल की वृद्धि होती है। और समस्त कामनाओं की पूर्ति हो, तथा निरन्तर दिव्य सुख प्राप्त होता रहे ॥७८३॥

हे जनार्दन ! हे वासुदेव ! हे भूतावास ! अन्त में आपके चरणकमलों की भक्ति मुझे प्राप्त हो ॥७८४॥

हे महावाहो ! हे राम ! हे कार्तवीर्य के विनाशक ! हे अच्युत ! यह सब कुछ मैंने आपको अर्पित किया। आप कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये। यह सब श्रीपरशुराम की प्रार्थना मंत्र वर्ग पूर्ण हुआ ॥७८५-७८६॥

धात्री आंवला सींचने का मंत्र--पितामह आदि एवं निस्संतान व्यक्ति जो ब्रह्माण्ड में वृक्षयोनि को प्राप्त हुए अथवा क्रूर पिशाच योनि को प्राप्त हुए वे सब मेरे द्वारा धात्री मूल में दिया हुआ यह जल उन सबको प्राप्त होवे ॥७८७॥

पिशाचयोनिं च ये प्राप्ताः क्रूरतां गताश्च ये।
पिबन्तु ते मया दत्तं धात्रीमूले सदापयः ॥७८८॥
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु धात्रीमूलनिषेवणात्।
ततो जागरणं कृत्वा भक्तिभावेन चेतसा ॥७८९॥
वाद्यनैर्गीतनृत्यैश्च धर्माख्यानैः परैरपि।
वैष्णवैश्च कथाख्यानैः क्षिपयेच्छर्वरी च ताम् ॥७९०॥
शुभग्रहा भूतपतिर्यक्षवर्या
ब्रह्मादयो ये च गणाः प्रसन्नाः।
लक्ष्मीः स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च
गोविन्दभक्तिं वहता नराणाम् ॥७९१॥
एवमाराधयेद्विद्वान् भगवन्तं श्रिया सह।
कृतकृत्यो भवेन्नित्यं विश्वस्योद्धारणे प्रभुः ॥७९२॥
फाल्गुणपञ्चदश्यां तु वसन्तदोलमुत्सवम्।
शुक्लायां कारयेत्कार्ष्णिस्तथा च सनकादयः ॥७९३॥

वे सब धात्री मूल के सेवन से तृप्त हो जायें। ऐसी प्रार्थना के पश्चात् भक्तिभाव से जागरण करे ॥७८८-७८९॥

वाजे बजावे, नृत्य करे, धार्मिक प्रवचन करे, वैष्णवों के साथ कथा प्रवचन द्वारा रात्रि व्यतीत करे ॥७९०॥

भगवान की भक्ति करने वालों पर भूतपति यक्ष और समस्त ग्रह अनुकूल हो जाते हैं ब्रह्मा आदिक देवगण प्रसन्न, लक्ष्मी उनके स्थिर होकर निवास करने लगती है ॥७९१॥

इस प्रकार विद्वान् साधक श्रीराधाकृष्ण की आराधना करे तो वह स्वयं तो कृतकृत्य हो ही जाय और विश्व का उद्धार करने में भी समर्थ हो जाता है ॥७९२॥

फाल्गुन की पूर्णमासी को कृष्णभक्त वसन्त डोल का उत्सव करें। ऐसा सनकादिकों का आदेश है ॥७९३॥

फाल्गुणस्य च राकायां मंडयेद्दोलमंडपम् ।
पश्चात्सिंहासनं पुष्पैर्नूतनैर्वस्त्र—चित्रकैः ॥७९४॥
क्रमोत्राग्रमुपवने कृत्वा मंडपसंस्क्रियाम् ।
चूतपल्लवबल्लरी कदलीस्तम्भमुख्यकैः ॥७९५॥
तन्मध्ये वेदिकां न्यस्त्वा तत्रकोणप्रभृतिषु ।
दिव्यस्तम्भप्रभृतिकान् दोलावयवकान् क्रमात् ॥७९६॥
छत्रचामरसवृन्तध्वजपताकिकादिभिः ।
कारयित्वा ह्युपस्करैश्चिह्नितं सर्वतोदिशम् ॥७९७॥
राधाकृष्णौ समानयेत् तत्र सुवैष्णवैः सह ।
गीतनृत्यादिभिर्यानैर्वेदवादित्र — निःस्वनैः ॥७९८॥
रीत्या स्नेहेन तोषयेन्महाभोगप्रभृतिभिः ।
केसरादिबहुरागैः सुरभिकृतवारिभिः ॥७९९॥
विविध चूर्णितरंगै राधाकृष्णौ निषेचयेत् ।
दोलारूढौ श्रियं कृष्णं नानारागविचित्रितौ ॥८००॥

फाल्गुन की पूर्णिमा को डोल के मण्डप को सजावे, उसमें नवीन वस्त्रों से सिंहासन को सजावे ॥७९४॥

यहां मण्डप संस्कार का क्रम इस प्रकार जानना चाहिये–उपवन (बगीचे) में आम के पत्तों की झालर, केला के स्तम्भों से मण्डप को सजा करके उसके मध्य में वेदिका और कोणों में दिव्य स्तम्भों को रोपण करके डोल बनावे ॥७९५-७९६॥

छत्र चंवर और ध्वजा पताका आदि चारों ओर लगावे। श्रीराधाकृष्ण को उसमें विराजमान करे, गाना बजाना और नृत्य करे, महाभोग (नैवेद्य) अर्पण करे, केशर आदि से मिश्रित रंग-विरंगे जल श्रीराधाकृष्ण पर छिड़के। डोल पर विराजमान श्रीराधाकृष्ण को गानवादन पूर्वक धीरे-धीरे झुलावे। मुख्य

आन्दोलयेद्रज्ञनया मन्दं मन्दं सुगीतिभिः ।
मुख्योज्ज्वलरसाभिज्ञो यथाभावं व्यवहरेत् ॥८०१॥
नानारसमयी लीला वसन्तकालनिर्मिताः ।
नानाभाषाप्रबन्धैश्च वसन्तरागसूचिताः ॥८०२॥
समानोपासकैः सद्भिः गापयेद्रसवेदिभिः ।
गायकान् शेषरागाद्यैश्चर्चयेच्च प्रतोषयेत् ॥८०३॥
विविधराग विकीर्णान् महाप्रसादपूरितान् ।
यथोचितकृतनतीन् सत्कृत्य तान् विसर्ज्जयेत् ॥८०४॥
तैर्हि सह यथागति श्रीकृष्णं स्वाश्रयं नयेत् ।
एवं कृते महोत्सवे भजनानन्दमाप्नुयात् ॥
श्रीकृष्णः श्रीमुखेनाह भविष्योत्तरके तथा ॥८०५॥

उज्ज्वल (मधुर) रस का ज्ञाता अपने भावों के अनुसार आराधना करे ।।७९७-८०१।।

बसन्तकाल की नाना प्रकार की रसमयी लीलाओं में जो नाना प्रकार की भाषाओं के पदों में सूचित हैं, उनका रसवेत्ता समान भाव वाले उपासकों से गायन करवावे । तत्पश्चात् गायकों (समाजियों) का सम्मान करके उन्हें सन्तुष्ट करे ।।८०२-८०३।।

महाप्रसादयुक्त रंग-विरंगे वस्त्र नमन पूर्वक उन्हें देवें । सत्कार करके नमस्कार पूर्वक उनकी विदाई करे ।।८०४।।

उन सब समाजियों के साथ फिर श्रीकृष्ण को अन्दर पधरावे । इस प्रकार महोत्सव करने पर भजनानन्द की प्राप्ति होती है । ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण ने "भविष्योत्तर-पुराण" में कहा है ।।८०५।।

वृत्ते तुषारसमये सितपंचदश्यां
प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च।
सम्प्राप्य चूतकुसुमं सहचन्दनेन
सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽब्दशतं सुखी स्यात् ॥८०६॥

एवमाराध्य राकायां दोलारूढे हरिश्रियौ।
फाल्गुणे कृतकृत्यः स्याद् विश्वस्योद्धारणे क्षमः ॥८०७॥

अथ चैत्रे सतां कृत्यं सूचितं सनकादिभिः।
मधुमासे सिते पक्षे श्रीरामनवमीव्रतम् ॥८०८॥

एकादश्यां भवेद्दोला द्वादश्यां दमनार्पणम्।
तत्र रामनवम्यास्तु चान्वयव्यतिरेकतः ॥८०९॥

अगस्त्यसंहितायां वै नित्यता सूचिता मया।
चैत्रमासे नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूद्वहः ॥८१०॥

प्रादुरासीत्पुरा ब्रह्मन् परब्रह्मैव केवलम्।
तस्मिन् दिने प्रकर्त्तव्यमुपवासं व्रतं सदा ॥८११॥

जब ठंड बीत जाय तब शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को वसन्त के समय प्रातःकाल आम्रमंजरी चन्दन सहित प्रभु का अर्चन करे तो वह साधक दीर्घायु (सौ वर्ष तक की आयुवान्) हो ॥८०६॥

इस प्रकार फाल्गुन शुक्ला १५ को डोल पर विराजमान श्रीराधाकृष्ण की आराधना करके स्वयं कृतकृत्य और विश्व के उद्धार करने में समर्थ हो सकता है ॥८०७॥

अब चैत्र कृत्यों का वर्णन किया जाता है—श्रीसनकादिकों ने कहा है कि चैत्र शुक्लपक्ष में श्रीराम नवमी, एकादशी को डोल और द्वादशी को दमनक का समर्पण करे। इनमें रामनवमी की हमने अगस्त्य संहिता में नित्यता बतलाई है। चैत्र शुक्ला

प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः ।
उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाके स पच्यते ॥८१२॥
निर्णयोऽथ नवमी च शुद्धा विद्धा द्विधा मता ।
तत्रोपोष्या तु शुद्धैवागस्त्यसंहितया तथा ॥८१३॥
नवमी वाऽष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम् ॥८१४॥
यदा तु नवमीक्षयो ग्राह्या विद्धाऽपि सा तदा ।
दशम्यामेव पारणानुज्ञानान्नात्र संशयः ॥८१५॥
चैत्रे मासि नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥८१६॥

नवमी को परब्रह्म परमात्मा श्रीरघुनाथजी का आविर्भाव हुआ था, उस दिन सभी साधकों को प्रतिवर्ष उपवास करना चाहिये ॥८०८-८११॥

जो मूर्ख रामनवमी का व्रत नहीं करता है वह कुम्भी-पाक नरक में पड़ा-पड़ा दुःख भोगता है ॥८१२॥

वह रामनवमी शुद्धा और विद्धा के प्रभेद से दो प्रकार की होती है, अगस्त्य संहिता के अनुसार शुद्ध रामनवमी को ही व्रत करना चाहिये ॥८१३॥

नवमी एवं अष्टमी दोनों शुद्ध हों उसी में वैष्णव व्रत करें, नवमी को उपवास करके दशमी को पारणा करना चाहिये ॥८१४॥

कदाचित् नवमी का क्षय हो तो विद्धा में राम जन्मोत्सव व्रत कर सकते हैं, क्योंकि दशमी को पारणा का विधान तभी संगत हो सकता है ॥८१५॥

अथाऽयं विधिरष्टम्यां दन्तधावनपूर्वकम् ।
हविष्यान्नैकभोजन-भूशयनादिना यतिः ॥८१७॥
श्रीरामं चिन्तयंस्तिष्ठन् मध्याह्ने नवमीदिने ।
सतश्चाहूय सूतिकागृहादिकं विधाय्य च ॥८१८॥
रामाविर्भावमात्मना विभाव्य वैष्णवोत्तमः ।
महास्नानं ततः पंचामृतेन विधिनार्पयेत् ॥८१९॥
महानैवेद्यमुच्छिष्टैर्महोत्सवं च कारयेत् ।
तत्र विभवभूयस्त्वे ससीतां रामप्रतिमाम् ॥८२०॥
सौवर्णीं विधिनाभ्यर्च्य विनिर्माप्य समर्पयेत् ।
वैष्णवकुलसूताय सुप्रसिद्धद्विजातये ॥
एकादश्यां तु कर्त्तव्यो दोलोत्सवो महाबुधैः ॥८२१॥

पुनर्वसु नक्षत्र युक्त चैत्र शुक्ला नवमी को स्वयं हरि श्रीराम का आविर्भाव हुआ था। इसलिये वह तिथि सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली मानी जाती है ॥८१६॥

रामनवमी व्रत का विधान इस प्रकार है—यति वैष्णव को चाहिये कि अष्टमी को दान्तुन आदि नित्यक्रिया, हविष्याऽन्न सेवन, एकवार भोजन, पृथ्वी पर सोना, भगवान् श्रीराम का चिन्तन करता रहे। नवमी को मध्याह्न के समय सूतिका गृह आदि बनाकर उसमें श्रीराम के आविर्भाव की भावना करे, फिर भगवत्प्रतिमा का विधिपूर्वक पञ्चामृत से महाभिषेक करे ॥८१७-८१९॥

महानैवेद्य का भोग लगावे और उत्सव करे। यदि शक्ति हो तो श्रीसीताराम की स्वर्ण प्रतिमा बनवाकर सदाचारी वैष्णव ब्राह्मण को दान करै। इसके पश्चात् एकादशी को डोल का उत्सव करै ॥८२०-८२१॥

तथा कुमाराः—

चैत्रे मासि सिते पक्षे एकादश्यां नरोत्तमः ।
दोलारूढं महाविष्णुं कुर्याद्भक्त्या महोत्सवम् ॥८२२॥

सदोला मंडपं कृत्वा दोलाश्रितं श्रिया हरिम् ।
सम्पूज्यान्दोलयेन्मासं कलौ महोपचारकैः ॥
दक्षिणाभिमुखं सार्धं देवदेवं जनार्द्दनम् ॥८२३॥

गारुडे—

चैत्रे मासि सिते पक्षे दक्षिणाभिमुखं हरिम् ।
दोलारूढं समभ्यर्च्य मासमान्दोलयेत्कलौ ॥
तत्रापि तु श्रिया सहैवांदोल्यो वैष्णवैर्हरिः ॥८२४॥

तथा ब्राह्मे—

चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ।
आन्दोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः ॥८२५॥

सनत्कुमारों ने कहा है—चैत्र शुक्ला एकादशी को महाविष्णु भगवान् को 'डोल' पर विराजमान करके भक्तिपूर्वक महोत्सव करे ।।८२२।।

हिण्डोला सहित मण्डप बनाकर डोल पर विराजमान श्रीराधाकृष्ण की पूजा करके एक मास तक उन्हें झुलावे, वैष्णवों को भोजन और भेंट दक्षिणा प्रदान करे ।।८२३।।

गरुड़पुराण में भी श्रीजी सहित भगवान् को झुलाने का विधान है ।।८२४।।

इसी प्रकार ब्राह्मपुराण में लिखा है—चैत्र शुक्ला एकादशी को वैष्णवों को चाहिये कि श्रीसहित श्रीहरि को डोल पर झुलावे, उस डोल और झूलन के दर्शन का बहुत महत्व माना

दोलां दोलन-दर्शनमाहात्म्योक्त्युपदेशतः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां नित्यता गारुडे तथा ॥८२६॥
दक्षिणाभिमुखं देवं दोलारूढं सुरेश्वरम् ।
सकृद्दृष्ट्वा तु गोविन्दं मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥८२७॥
दोलारूढं प्रपश्यन्ति कृष्णं कलिमलापहम् ।
अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते घूर्णने कृते ॥८२८॥
तावत्तिष्ठन्ति पापानि जन्मकोटिकृतान्यपि ।
यावन्नान्दोलयेद्भूप कृष्णं कंसविनाशनम् ॥८२९॥
आन्दोलनदिने प्राप्ते रुद्रेण सहिताः सुराः ।
कुर्वन्ति प्रांगणे नृत्यं गीतं वाद्यं च हर्षिताः ॥८३०॥

है, उनके दर्शन करने से पुण्य और न करने से पाप लगता है, इस प्रकार अन्वय और व्यतिरेक से गरुड़पुराण में इस महोत्सव की गणना नित्य महोत्सवों में की है ।।८२५-८२६।।

डोल पर विराजमान दक्षिणाभिमुख गोविन्द का जो एक-बार भी दर्शन कर लेता है, वह ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाता है ।।८२७।।

डोल पर विराजमान पतितपावन श्रीकृष्ण का जो दर्शन करते हैं वे हजारों अपराधों से मुक्त हो जाते हैं ।।८२८।।

जब तक कंस विनाशक श्रीकृष्ण को डोल पर नहीं झुलाता तब तक ही उस व्यक्ति के जन्म जन्मान्तरों के पाप रहते हैं ।।८२९।।

डोल के दिवस शङ्कर सहित समस्त देव उस प्रांगण में आकर हर्षित हो होकर गाते बजाते और नाचते हैं ।।८३०।।

ऋषिगणाश्च गन्धर्वा रम्भाद्यप्सरसां गणाः ।
वासुकिप्रमुखानागास्तथा देवाः सुरेश्वराः ॥८३१॥
दोलायात्रां समायान्ति विष्णुदर्शनलालसाः ।
दोलायात्रानिमित्तं तु दोलाह्ने मधुमाधवे ॥८३२॥
भूतानि सन्ति भूपृष्ठे ये केचिद्देवयोनयः ।
समायान्ति महीपाल कृष्णे दोलाश्रिते ध्रुवम् ॥८३३॥
विष्णुं दोलास्थितं दृष्ट्वा त्रैलोक्यस्योत्सवो भवेत् ।
तस्मात्कार्यंशतं त्यक्त्वा दोलाह्ने उत्सवं कुरु ॥८३४॥
प्रह्लादे तु समायाते विष्णुदोलावरोहणम् ।
कुरुते पाण्डवश्रेष्ठ वरदं तमनुस्मरन् ॥८३५॥
दोलास्थितस्य कृष्णस्य येऽग्रे कुर्वन्ति जागरम् ।
सर्वपुण्यफलावाप्तिर्निमिषैकेन जायते ॥८३६॥

ऋषिगण गन्धर्व रम्भा आदि अप्सरायें, वासुकी आदिक नाग, इन्द्र आदिक देवता भगवान् के दर्शनों की लालसा से चैत्र वैशाख वाली डोल यात्रा में सम्मिलित होते हैं ॥८३१-८३२

हे महीपाल ! पृथ्वी पर जितने भी भूतप्राणी और देव-योनि वाले हैं वे सब भगवान के डोल उत्सव दर्शनार्थ आते हैं ॥८३३॥

डोल पर विराजमान भगवान के दर्शनों से त्रिलोकी में उत्सव होता है,इसलिये सैकड़ों कार्यों को भी छोड़ करके डोलोत्सव करना चाहिये ॥८३४॥

डोलोत्सव में जागरण करने वाले को एक पलभर में समस्त पुण्यों का फल प्राप्त हो जाता है ॥८३५-८३६॥

दोलासंस्थं तु ये कृष्णं पश्यन्ति मधुमाधवे।
क्रीडन्ति विष्णुना साकं वैकुण्ठे देववन्दिताः ॥८३७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दोलायात्रामहोत्सवः ।
कार्यः सर्वफलावाप्त्यै सर्वपापहरः शुभः ॥
अन्वयेन सूचयित्वा व्यतिरेकेण नित्यता ॥८३८॥

कुमाराः—

एकादशीवारमुपेत्यशुक्ले
पक्षे न क्षेत्रे कुरुते यथार्हम्।
दोलोत्सवं कृष्णसमर्चको यः
पूजा मृषा तस्य बहिर्मुखस्य ॥८३९॥

पाद्मे—

ऊर्जे व्रतं मधौ दोलां श्रावणे तन्तुपर्व च।
चैते दमनकारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥
द्वादश्यां वैष्णवैः कार्यस्त्वथ दमनकोत्सवः ॥८४०॥

चैत्र वैशाख में जो डोल पर विराजमान श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं वे देवों द्वारा वन्दित होकर विष्णु भगवान के साथ वैकुण्ठ में क्रीड़ा करते हैं ॥८३७॥

इसलिये समस्त फलों की प्राप्ति के लिये समस्त पापों को नष्ट करने वाले डोल उत्सव को अवश्य करना चाहिये ॥८३८॥

सनत्कुमारों ने कहा है—चैत्र शुक्लपक्ष एकादशी को जो कृष्णोपासक डोल उत्सव नहीं करता है उस वहिर्मुखके द्वारा की हुई समस्त पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥८३९॥

पद्मपुराण में स्पष्ट कहा है—कार्त्तिक में व्रत, चैत्र में डोल, श्रावण में पवित्रा और चैत्र का दमनक उत्सव जो नहीं

तथा कुमाराः—

मधुमासे सिते पक्षे द्वादश्यां दमनोत्सवम् ।
आगमोक्तेन मार्गेण कुर्याद्भक्तो ह्यतन्द्रितः ।।८४१।।

नारदः—

चैत्रे मासि तथा विष्णोः कार्यो दमनकोत्सवः ।
वैष्णवैः श्रद्धया पुण्यो जनतानन्दवर्द्धनः ।।८४२।।

तत्सिद्ध्यै कृष्णप्रार्थना तथोक्ता सनकादिभिः ।
उपवासेन त्वां देव तोषयामि जगत्पते ।।८४३।।

कामक्रोधादयो ये ते न मे स्युर्व्रतघातकाः ।
एवं विज्ञाप्य सद्गुरोराज्ञामादाय संनतः ।।८४४।।

करता वह पतित हो जाता है। चैत्र शुक्ला १२ को दमनक उत्सव करना चाहिये ।।८४०।।

सनत्कुमारों ने कहा है—आगमोक्त रीति से निरालस होकर भक्त चैत्र शु० १२ को दमनक महोत्सव करे ।।८४१।।

श्रीनारदजी के वाक्यों का भी यही आशय है। जनता के आनन्द को बढ़ाने वाला यह पवित्र दमनक उत्सव वैष्णवों को अवश्य करना चाहिये ।।८४२।।

उसकी सिद्धि के लिये सनकादिकों ने श्रीकृष्ण की प्रार्थना करना बतलाया है—हे देव ! जगत्पते ! इस उपवास के द्वारा आपको मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ ।।८४३।।

व्रत को भंग करने वाले काम क्रोध आदि मेरे हृदय में उद्भूत न होवें। ऐसी प्रार्थना करके विनम्र होकर गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त करे ।।८४४।।

प्रातःस्नानं ततः कृत्वा महापूजाविधानतः ।
राधाकृष्णौ समभ्यर्च्य सन्ध्याकाले स्वयं व्रजेत् ॥८४५॥

शुद्धो दमनकस्थाने कामदेवं तु तत्र वै ।
समभ्यर्च्य तदाज्ञयाऽवचिनुयाद्दमनकम् ॥८४६॥

अवचयमन्त्रः—

राधिकाकृष्णपूजार्थं त्वां गृह्णामि दमनक ।
त्वामाश्रित्य करिष्यामि त्वदुत्सवं हरिप्रियम् ॥८४७॥

इति प्रार्थ्यावचित्याथ ततः सम्प्रोक्षणादिभिः ।
संस्कृत्याशोकमूलं तं नयेद्विधानकोविदः ॥८४८॥

तदलाभे स्थलं सम्यग्विधाय तत्र तं स्मरेत् ।
अशोकं प्रार्थयेत्कार्ष्णि बौधायने मनुस्तथा ॥८४९॥

प्रातःकाल स्नान करके श्रीराधाकृष्ण का महाभिषेक करे फिर सायंकाल शुद्ध होकर स्वयं दमनक के स्थान में जाय। वहां कामदेव की पूजा करके उनकी आज्ञा से दमनक का चयन करे ॥८४५-८४६॥

चयन मन्त्र—हे दमनक ! श्रीराधाकृष्ण की पूजा के लिये मैं तुम्हारा चयन करता हूं तुम्हारे द्वारा भगवत्प्रिय तुम्हारा उत्सव करूंगा ॥८४७॥

ऐसी प्रार्थना करके अवचयन और सम्प्रोक्षण आदि करके विधानज्ञ व्यक्ति उसको अशोक वृक्ष के नीचे ले जाय ॥८४८॥

अशोक का मूल न मिले तो पेड़ के नीचे जगह ठीक करके उसका स्मरण करे, जिस प्रकार बोधायन में मनु ने बतलाया है उसी प्रकार प्रार्थना करे ॥८४९॥

अशकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशनः ।
शोकार्त्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ॥८५०॥

इति सुगन्ध-पुष्पाद्यैरशोकमर्च्य वै ततः ।
वसन्तकालमाच्चर्चयेन्मन्त्रोवसन्तपूजने ॥८५१॥

वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताप्रिय ।
सहस्रमुखसंवाहकालरूप नमोऽस्तु ते ॥
ततो दमनमभ्यर्च्य कामदेवं च पूजयेत् ॥८५२॥

तत्र मन्त्रः—

नमोऽस्तु पुष्पवाणाय जगदाह्लादकारिणे ।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीति प्रियाय ते ॥८५३॥

इतीष्ट्वा कामदेवं तं निजगृहं समानयेत् ।
अथाधिवासनं रात्रौ कृत्वाग्रे कृष्णराधयोः ॥८५४॥

हे कामस्त्री के शोक नाशक अशोक तुमको नमस्कार है, मेरी चिन्ता और शोक को हरकर मुझे आनन्द दीजिये ।।८५०।।

इस प्रकार सुगन्धित पुष्पादि से अशोक की पूजा करके वसन्त समय की अग्रिम मंत्र से पूजा करे ।।८५१।।

हे वृक्ष गुल्म लताओं का प्रिय वसन्त आपको नमस्कार है, सहस्रमुख संवाह हे कालरूप आपको नमस्कार है । फिर दमनक और कामदेव की पूजा करे । उसके मन्त्र ये हैं—पुण्यवान जगत को आह्लादित करने वाले जगत के नेता रतिपति के प्रिय मन्मथ आपको नमस्कार है ।।८५२-८५३।।

इस प्रकार कामदेव को नमन करके अपने घर लावे, फिर रात्रि में श्रीराधाकृष्ण के आगे अधिवासन करके सर्वतो-

सर्वतोभद्रमण्डलं बद्ध्वा परिवितानकम् ।
संस्थाप्य तत्र कलशं तत्र चैव दमनकम् ॥८५५॥
सुगन्ध-सुमनोधूपदीपनैवेद्यमुख्यकैः ।
उपचारैः सुसम्पूज्य समाह्वयन्मनुस्तथा ॥८५६॥
पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः ।
दमन त्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः ॥८५७॥
इति संवाह्य संस्थाप्य कामदेवरती ततः ।
सन्निधाप्य दमनके सम्पूजयेद्विधानतः ॥८५८॥
क्लीं कामदेवाय नमः, ह्रीं रत्यै नमः ।
इति ऐन्द्रयां गन्धपुष्पादिना दिशि कामं
सभार्यमर्चयेत् ॥
एवं भस्मशरीराय नम इत्याग्नेय्याम् ।
अनन्ताय नम इति दक्षिणायाम् ॥

भद्र मण्डल बनावे, मंडप सजाकर कलस की स्थापना करे, वहां ही दमनक को रख देवे ।।८५४-८५५।।

सुगन्धित फूल धूप दीप नैवेद्य आदि उपचारों से पूजा करके दमनक के आवाहन का अग्रिम मंत्र बोले ।।८५६।।

देव देव लक्ष्मीपति श्रीविष्णु भगवान् की पूजा के लिये हे दमनक आप यहां आइये आपको नमन करता हूं ।।८५७।।

इस प्रकार आवाहन आसन प्रदान के अनन्तर रति और कामदेव की दमनक में संस्थापना की भावना करके दोनों की विधिपूर्वक पूजा करे ।।८५८।।

"ॐ क्लीं कामदेवाय नमः, ॐ ह्रीं रत्यै नमः" इन दोनों मन्त्रों को बोलकर गंध, पुष्प आदि से रति और कामदेव की

मन्मथाय नम इति नैर्ऋत्याम् ।
वसन्तसखाय नम इति वारुण्याम् ॥
स्मराय नम इति वायव्याम् ।
इषुचापायनमः कौवेर्य्याम् ॥
पुष्पवाणाय नम इति दमनस्येशान्याम् ॥८५९॥

अक्षतगन्ध कुसुमैर्धूपदीपोपहारकैः ।
इक्षुताम्बूललाजाद्यैः पूजयित्वा दमनकम् ॥८६०॥

पुष्पवाणाय विद्महे कामदेवाय धीमहि ।
तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ॥ ॥८६१॥

इत्येवं कामगायत्र्याभिमन्त्र्याष्टोत्तरं शतम् ।
पूजयित्वा ततः कृष्णं प्रार्थयेत विशेषतः ॥८६२॥

तत्र मन्त्रः—

तुभ्यं निवेदयिष्यामि प्रातर्दमनकं शुभम् ।
सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे ॥८६३॥

पूर्व दिशा में पूजा करे। भस्मशरीराय नमः बोलकर अग्नि दिशा में, अनन्ताय नमः बोलकर दक्षिण दिशा में, मन्मथाय नमः बोलकर नैर्ऋत्य दिशा में, "वसन्तसखाय नमः" इससे पश्चिम दिशा में "स्मराय नमः" से वायव्य दिशा में "इषुचापाय नमः" बोलकर उत्तर दिशा में "पुष्पवाणाय नमः" से ईशान दिशा में पूजा करे ।।८५९।।

अक्षत गंध पुष्प धूप दीप इक्षु-ताम्बूल लाजा और उपहार आदि से दमनक की पूजा करके "पुष्पवाणाय विद्महे कामदेवाय धीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ।" इस प्रकार काम गायत्री से १०८ वार दमनक को अभिमंत्रित करके श्रीकृष्ण की विशेष प्रार्थना करे ।।८६०-८६२।।

इति सम्प्रार्थ्य दमनं तं कलशोपरिसंस्थितम् ।
अस्त्रावगुण्ठितं रक्षेन्नृसिंहैकाक्षरेरितः ॥८६४॥
सम्पूज्य हरिसद्गुरुंस्ततो जागरणं चरेत् ।
जागरे कृष्णमातोष्य प्रातःकृत्यं समाचरेत् ॥८६५॥
कृष्णं नत्वा यथास्नात्वा नित्यकृत्यं विधाय च ।
ततो दमनकोत्सवां–गतयाविधायपूजनम् ॥८६६॥
समादद्याद्दमनकं तदा दानमनुस्तथा ।
देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थ प्रदायक ॥८६७॥
हृत्स्थान् पूरय मे विष्णो कामान् कामेश्वर प्रिय ।
इत्यनेनैव मन्त्रेण हस्ताभ्यां तं दमनकम् ।
घंटाघोषादिनादाय श्रीकृष्णाय समर्पयेत् ॥८६८॥

श्रीकृष्ण प्रार्थना के मन्त्र—हे विष्णो ! प्रातःकाल यह सुन्दर दमनक आपके अर्पित किया जा रहा है, आप सब प्रकार से सदा सर्वदा मुझ पर प्रसन्न होवें ।।८६३।।

इस प्रकार प्रार्थना करके कलश पर स्थित दमनक को 'क्षौं' इस एकाक्षरी नृसिंह मंत्र से अभिमंत्रित करे ।।८६४।।

भगवान और गुरुदेव की पूजा करके जागरण करे, जागरण में श्रीकृष्ण को संतुष्ट करके फिर प्रातःकृत्य करे ।।८६५

श्रीकृष्ण को नमन करके स्नान नित्य कर्म आदि करे, फिर दमनक उत्सव के अंग रूप पूजा करके दमनक को अर्पण करे ।।८६६।।

अर्पित करने का मन्त्र—हे देवदेव ! जगन्नाथ ! समस्त-वांछित फलों को देने वाले, मेरी समस्त मनोकामनाओं को हे कामेश्वर प्रिय पूर्ण कीजिये । इस प्रकार प्रार्थना करते हुए

कुमाराः—

परमानन्दसमुद्भूता दिव्या दमनमंजरीः ।
निवेद्या विष्णवे भक्तैः सर्वपूजाफलेप्सुभिः ॥
तत्रापि मूलमन्त्रेण दमनं हरयेऽर्पयेत् ॥८६९॥

तत्र प्रार्थना-मन्त्रः—

इदं दमनकं देव गृहाण मय्यनुग्रहात् ।
इमां संवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय ।।८७०।।

ततः सम्पूज्य श्रीकृष्णं नानामणिप्रभृतिभिः ।
गन्धाद्यैर्महतीं पूजां कृत्वा परमवैष्णवैः ॥८७१॥

महोत्सवः प्रकर्त्तव्यो नृत्यवाद्यादिगीतिभिः ।
कृष्णाग्रे स्थापितकुम्भसलिलं कृष्णपादयोः ॥८७२॥

घंटा घोष के साथ दमनक को दोनों हाथों में लेकर श्रीकृष्ण के अर्पण कर देवे ।।८६७-८६८।।

सनत्कुमारों ने कहा है—दमनक की दिव्य मंजरी परम आनन्द से उत्पन्न हुई है, अतः समस्त पूजाओं के फल को चाहने वाले भक्तों के द्वारा मूल मंत्र से दमनक को भगवान के अर्पित करे ।।८६९।।

इस प्रकार प्रार्थना करे—हे देव ! मेरे ऊपर अनुग्रह करके इस दमनक को ग्रहण कीजिये और इस वार्षिकी पूजा को पूर्ण करिये ।।८७०।।

फिर श्रीकृष्ण की अनेक प्रकार की मणि आदि एवं गन्ध आदि से परम वैष्णवों के सहित भगवान की महापूजा करे ।।८७१।।

सन्निक्षिप्य जलक्रीड़ां तत्राह्नि कारयेद्धरिम् ।
ततः सम्पूज्य सद्गुरुं वासोलङ्कारबभ्रुभिः ॥८७३॥
श्रद्धया पूजयेत्सतस्ततोऽश्नीयात्सवैष्णवैः ।
राधाकृष्णावशेषान्नं गृहीत्वा तं दमनकम् ॥
वसन्तसमयपुष्पमाहात्म्यं सन्निशाम्यते ॥८७४॥

तथा स्कान्दे—

दमनकेन देवेशं सम्प्राप्ते हरिवासरे ।
सम्पूज्य गोसहस्रस्य मुने संलभते फलम् ॥८७५॥
मल्लिकाकुसुमैर्देवं वसन्ते गरुडध्वजम् ।
अर्चयेत्परया भक्त्या भक्तिभागी भवेत्तु सः ॥८७६॥

नृत्य वादन गायन के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण के सन्मुख महोत्सव करना चाहिये । संस्थापित कुम्भ के जल से श्रीकृष्ण के चरणों को धोकर उस दिन जलक्रीड़ा करवावे ।।८७२।।

फिर वस्त्र अलंकारों से श्रद्धापूर्वक सद्गुरु की पूजा करके वैष्णवों के सहित प्रसाद करे ।।८७३।।

श्रीराधाकृष्ण के समर्पित किये हुए दमनक को प्रसादी रूप से ग्रहण करे। वसन्त समय दमनक का बड़ा माहात्म्य सुना जाता है ।।८७४।।

स्कन्दपुराण में कहा है—वसन्त ऋतु के हरिवासर (एकादशी) को दमनक द्वारा भगवान की पूजा करने से हजारों गोदानों के समान फल प्राप्त होता है ।।८७५।।

जो वसन्त ऋतु में मल्लिका के पुष्पों से गरुडध्वज भगवान की परमभक्ति से पूजा करता है उसे भुक्ति-मुक्ति और भगवान की पराभक्ति प्राप्त हो जाती है ।।८७६।।

विष्णुधर्मे प्रह्लादः—
मरुको दमनश्चैव सद्यस्तुष्टिकरो हरेः।
यथा तुलसीकल्याणी मुकुन्दपदवल्लभा ॥८७७॥
अथ वैशाखकृत्ये तु श्रीनृसिंहचतुर्दशी।
तन्निर्णये तु नित्यता नारसिंहे हरिणोदिता ॥८७८॥
वैशाख शुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां समारभेत्।
मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥८७९॥
स्वातिनक्षत्रयोगेन शनिवारे हि मद्व्रतम्।
केवलं च प्रकर्त्तव्यं मद्दिनेनान्न कांक्षिभिः ॥८८०॥
वैष्णवैस्तु न कर्त्तव्या स्मरविद्धा चतुर्दशी।
विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लङ्घयेत्स तु पापभाक् ॥८८१॥

विष्णुधर्म में प्रह्लादजी के वाक्य हैं—जिस प्रकार कल्याण कारिणी तुलसी ठाकुरजी को प्यारी लगती है, उसी प्रकार मरुवा का दमनक भी भगवान को शीघ्र ही सन्तुष्ट करने वाला है ।।८७७।।

वैशाख के कर्तव्य—वैशाख के उत्सव-महोत्सवों में श्री-नृसिंह चतुर्दशी विशेष उल्लेखनीय है। उसका निर्णय करते समय नृसिंहपुराण में भगवान् ने उसे नित्य बतलाया है ।।८७८।।

भगवान ने कहा है—वैशाख शुक्लपक्ष की चतुर्दशी के दिन मेरा आविर्भाव दिवस है उस दिन व्रत करने से समस्त पापों का क्षय हो जाता है ।।८७९।।

शनिवार और स्वाति नक्षत्र उस दिन हो तो वह विशिष्ट फलदायक हो जाता है। ऐसा योग न भी हो तब भी व्रत को न छोड़े। वैष्णव को चाहिये कि त्रयोदशी से विद्धा हो तो उस चतुर्दशी को व्रत न करे। दूसरे दिन व्रत करे, परन्तु व्रत अवश्य

एवं ज्ञात्वा प्रकर्त्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् ।
अन्यथा नरकं याति यावदिन्द्रदिवाकरौ ॥८८२॥
सर्वेषामेव लोकानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते ।
मद्भक्तैस्तु विशेषेण प्रणेयं मत्परायणैः ॥८८३॥
चतुर्दशीमहाव्रते तत्रायं विधिरुच्यते ।
प्रातःस्नानादिकं कृत्वा मन्दिरसंस्क्रियां शुभाम् ॥८८४॥
आहूय वैष्णवान्सतः सन्ध्याकाले हि नृहरेः ।
जन्म सम्भाव्य विधिना स्नापं चामृतादिभिः ॥८८५॥
महानैवेद्यमर्पयेत्सर्वं कृत्यं च कारयेत् ।
लीलामुद्दीपयेद्धरेर्वैष्णवशास्त्ररीतितः ॥८८६॥

करे, जो नृसिंह चतुर्दशी का व्रत नहीं करते हैं उन्हें बड़ा पाप लगता है, ऐसा समझकर नृसिंह चतुर्दशी का व्रत अवश्य करे ॥८८०-८८१॥

नृसिंह चतुर्दशी का व्रत न करने से नरक यातना भोगनी पड़ती है। भगवान् ने कहा है कि मेरे व्रत करने में सबका अधिकार है। मेरे आश्रित भक्तों को तो विशेष रूप से करना ही चाहिये ॥८८२-८८३॥

नृसिंह चतुर्दशी व्रत की विधि इस प्रकार है—प्रातः स्नान आदि करके मंदिर को सजावे ॥८८४॥

फिर सायंकाल वैष्णवों को बुला करके पंचामृत से ठाकुरजी का अभिषेक करे ॥८८५॥

विशेष भोग धरे आरती आदि सब कार्य करके पुराण-शास्त्र आदि के अनुसार नृसिंह लीला का अनुसंधान एवं अनुकरण करे ॥८८६॥

नृसिंहचरितं ख्यायाल्लीलानृसिंहसन्निधौ ।
रात्रौ जागरणं कृत्वा राकाकृत्यमथाचरेत् ॥८८७॥

तथा कुमाराः—

वैशाखपौर्णमास्यां तु जलस्थं जगदीश्वरम् ।
शुक्लस्यैकादशी यावत्पूजयेत्सु प्रहर्षितः ॥८८८॥

नारदः—

वैशाखपौर्णमास्यां वै जलस्थं जगदीश्वरम् ।
पूजयेद्वैष्णवो भक्त्या कृत्वोत्साहं मुदान्वितः ॥८८९॥
गीतवाद्यपताकाद्यैः कृत्वा पुण्यमहोत्सवम् ।
ज्येष्ठस्यैकादशी शुक्ला यजेत्तावत्प्रहर्षितः ॥८९०॥

गारुडे—

घनागमे प्रकुर्वन्ति जलस्थं वै जनार्दनम् ।
ये जना नृपतिश्रेष्ठ तेषां न नरको भवेत् ॥८९१॥

नृसिंह चरित्र की कथा करे शक्ति हो तो लीलानुकरण रात्रि जागरण करके प्रातः पूर्णिमा के कृत्यों को करे ।।८८७।।

सनत्कुमारों ने कहा है—वैशाख शुक्ल पूर्णिमा से ज्येष्ठ शुक्ला ११ तक भगवान् को जल में शयन करावे, और जल में विराजमान करके ही पूजन करे ।।८८८।।

यही आशय श्रीनारदजी के वाक्य का है। गायन वादन ध्वजा पताकादि द्वारा यह उत्सब ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी तक करे ।।८८९-८९०।।

गरुड़पुराण में कहा है—हे राजन् ! घनागम (ज्येष्ठ मास) के समय जल में विराजमान जनार्दन भगवान् की पूजा करने वालों को नरक यातना नहीं मिलती ।।८९१।।

स्वर्णपात्रेऽथवा रूप्ये ताम्रे वा मृण्मयेऽपि वा ।
तोयस्थं योऽर्चयेद्देवं शालिग्रामसमुद्भवम् ॥८६२॥
चक्रांकितं च भूपाल निवृत्ते मधुमाधवे ।
प्रतिमां च महाभाग तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥८६३॥
यावद्धराधरालोके यावद्रत्नाकरो भुवि ।
तावत्तस्य कुले कश्चिन्न भवेद्भूप नारकी ॥८८४॥
तस्माज्ज्येष्ठे सदा भूप तोयस्थं पूजयेद्धरिम् ।
वीततापो नरस्तिष्ठेद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥८८५॥
कृत्वा सुशीतलैस्तोयैस्तुलसीदलवासितैः ।
शुचि शुक्रगते काले पूजयेद् धरणीधरम् ॥८६६॥
शुचिशुक्रगते काले येऽर्चयिष्यन्ति केशवम् ।
जलस्थं विविधैः पुष्पैर्मुच्यन्ते यमयातनात् ॥८६७॥

सोना चांदी तांबा अथवा मृत्तिका के पात्र में जल भरकर उसमें चक्रांकित शालिग्राम भगवान् को विराजमान करके जो गर्मी में पूजा करते हैं उनको अनन्त पुण्यफल मिलता है ॥८८२-८६३॥

जब तक पृथ्वी और समुद्र रहेंगे तब तक उस वैष्णव के कुल में कोई भी नरक का भागी नहीं होगा ॥८८४॥

इसलिये हे भूपाल ! ज्येष्ठ मास में जल में विराजमान करके भगवान् की पूजा करे, उसे प्रलय पर्य्यन्त सन्ताप नहीं होगा ॥८८५॥

ज्येष्ठ में तुलसीदलों से सुवासित ठण्डे जल से धरणीधर प्रभु की सेवा करनी चाहिये ॥८६६॥

ज्येष्ठ में जलस्थ भगवान की सेवा करने वाले यम-यातना से मुक्त हो जाते हैं ॥८८७॥

जलस्रष्टा यतो विष्णुर्जलशायी जलप्रियः ।
तस्माद् ग्रीष्मे विशेषेण जलस्थं पूजयेद्धरिम् ॥८९८॥

नीरमध्यस्थितं कृत्वा शालिग्रामशिलोद्भवम् ।
येनार्चितो महाभक्त्या स हि वै कुलपावनः ॥८९९॥

कर्कराशिगते सूर्ये मिथुनस्थे विशेषतः ।
येनार्चितो हरिर्भक्त्या जलमध्ये महीपते ॥९००॥

द्वादश्यां तु विशेषेण जलस्थ जलशायिनः ।
येनार्चनं कृतं तेन यज्ञकोटिशतं भुवि ॥९०१॥

निक्षिप्य जलपात्रे तु मासे माधवसंज्ञके ।
माधवं येऽर्चयिष्यन्ति देवतास्ते नरा नहि ॥९०२॥

भगवान ने जल को उत्पन्न किया है और वे जल में शयन करते हैं, उन्हें जल बहुत प्रिय लगता है। इसीलिये ग्रीष्म में विशेष करके जलस्थ भगवान् की पूजा करे ।।८९८।।

जिसने जल में विराजमान करके शालिग्राम की जेठ मास में पूजा की हो उसका कुल पवित्र हो जाता है ।।८९९।।

मिथुन या कर्क राशि का सूर्य हो तब हे राजन् जल में ही भगवान् की पूजा करता रहे ।।९००।।

पूरे मास भी न हो सके तो ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी एकादशी को ही जल में ठाकुरजी की पूजा करने पर भी करोड़ों यज्ञों जैसा फल मिल जाता है ।।९०१।।

माधव (वैशाख) मास में जो जल पात्र में विराजमान करके भगवान् की सेवा करते हैं उन्हें मनुष्य नहीं देवता ही समझना चाहिये ।।९०२।।

पात्रे गन्धोदकं कृत्वा यः क्षिपेद् गरुडध्वजम् ।
द्वादश्यां पूजयेद्रात्रौ मुक्तिभागी भवेद्धि सः ॥९०३॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न पूजाफल भागिनः ॥९०४॥
उष्णस्य तारतम्येन वैशाखे ज्येष्ठ एव वा ।
प्रीणयेद्गन्धवारिणापांमध्ये हि समर्पयेत् ॥९०५॥
महाभोगं भगवते कर्त्तव्यं सर्वमाचरेत् ।
जलक्रीडार्थसामग्रीं सर्वां सदुपयोगिनीम् ॥९०६॥
जलविहारमन्वहं सम्पाद्य कारयेद्धरिम् ।
तत्तद्धतूद्भवैः पुष्पैः पूजयेद् विविधैर्विभुम् ॥९०७॥

सुगन्ध पूर्ण जल के पात्र में ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी की रात्रि में जो भगवान् की पूजा करते हैं, वे अवश्य मुक्त हो जाते हैं ।।९०३।।

ध्यान रहे—श्रद्धाहीन, पापी चित्त वाले, नास्तिक और सन्देह युक्त तथा ढोंगी इन पांचों को पूजा का फल नहीं मिल सकता ।।९०४।।

गर्मी के तारतम्य से वैशाख और ज्येष्ठ दोनों ले लिये गये हैं, सारांश है–अधिक गर्मी हो तब सुगन्धित जल में विराजमान करके भगवान की सेवा करे ।।९०५।।

जलक्रीड़ा के उपयोगी सब सामग्री और विशेष भोग धरे ।।९०६।।

प्रतिदिन जलविहार करवाकर उस ऋतु में होने वाले पुष्पों से भगवान की पूजा करे ।।९०७।।

कृष्णार्पणेन वर्णितं तन्माहात्म्यं चतुःसनैः।
केशवः केतकीपुष्पैर्मिथुनस्थे दिवाकरे ॥९०८॥
येनार्चितो हरिर्भक्त्या प्रीतो मन्वन्तरं मुने।
कर्कराशिगते सूर्ये केतकीपत्रकोमलैः ॥९०९॥
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं सम्प्राप्ते दक्षिणायने।
कृत्वा पापसहस्राणि महापापशतानि च ॥९१०॥
तेऽपि यास्यन्ति विप्रेन्द्र यत्र विष्णुः श्रिया सह।
ज्येष्ठकृत्यं समुदितप्रायमपि त्वनूद्यते। ९११॥

कुमाराः—

ज्येष्ठे तु मासि सम्पूर्णे जलमध्ये हरिं श्रिया।
सेवयोपचरेन्नित्यमुपचारैरुपार्जितैः ॥
शुक्लपक्षे तु निर्जलामेकादशीमुपोषयेत् ॥९१२॥

तथा पाद्मे व्यासः—

वृषस्थे मिथुनस्थेऽर्के शुक्ला ह्येकादशी यदा।
ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥९१३॥

सनकादिकों ने कहा है—मिथुन के सूर्य में केशव भगवान् को केतकी के पुष्प चढ़ावे। कर्क राशि के सूर्य में केतकी के कोमल पत्रों से भी पूजा करे तो हजारों पाप और महापापों से छुटकारा मिल जाता है। अर्थात् पापी भी विष्णुलोक को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार ज्येष्ठ मास के कर्म कहे गये, उनका ही समर्थन अन्य वाक्यों से भी अब किया जाता है ॥९०८-९११॥

सम्पूर्ण ज्येष्ठ मास में जल में विराजमान करके भगवान की पूजा करे और शुक्लपक्ष की एकादशी को निर्जल व्रत रक्खे ॥९१२॥

स्नाने चाचमने चैव वर्जयित्वोदकादिकम् ।
अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशद्वादशीव्रतम् ।।९१४।।

आषाढ़कृत्यमथ तद्दतुपुष्पैर्हरिं भजेत् ।
कादम्बाद्यैस्तथोदितं तन्माहात्म्यं चतुःसनैः ।।९१५।।

जातरूपनिभैर्विष्णुं कदम्बकुसुमैर्मुने ।
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं न तेषां सौरिजं भयम् ।।९१६।।

घनागमे घनश्यामः कदम्बकुसुमार्चितः ।
ददाति वाञ्छितान्कामान् शतजन्मानि सम्पदः ।।९१७।।

कदम्बकुसुमैर्देवं घनवर्णं घनागमे ।
येऽर्चयन्ति मुनिश्रेष्ठ तैराप्तं जन्मनः फलम् ।।९१८।।

पद्मपुराण में व्यासजी के वचन हैं—वृष या मिथुन के सूर्य में जब ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी आवे तब निर्जल व्रत करे । यहां तक कि–स्नान और आचमन में भी जल का प्रयोग न करे तो विना ही श्रम के बारह द्वादशियों का फल मिल जाता है ।।९१३-९१४।।

अब आषाढ़ के कृत्य बतलाते हैं—आषाढ़ में कदम्ब के पुष्पों से पूजा करने का सनकादिकों ने विशेष फल बतलाया है ।।९१५।।

हे मुने ! सुवर्ण सदृश कदम्ब के पुष्पों से जो आषाढ़ में भगवान की पूजा करते हैं उन्हें यम का भय नहीं रहता ।।९१६।।

आषाढ़ में कदम्ब के फूलों से पूजे हुए घनश्याम सम्पूर्ण मनोकामनायें पूरी कर देते हैं । इतनी सम्पत्ति दे देते हैं जो सैकड़ों जन्मों तक भी क्षीण नहीं होती ।।९१७।।

कदम्बकुसुमैर्हृद्यैर्येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ।
तेषां यमालयो नैव न जायन्ते कुयोनिषु ॥९१९॥

न तथा केतकीपत्रैर्मालतीकुसुमैर्नहि ।
तोषमायाति देवेशः कदम्बकुसुमैर्यथा ॥९२०॥

दृष्ट्वा कदम्बकुसुमं प्रीतो भवति माधवः ।
किं पुनः पूजितो विप्र सर्वकामप्रदो हरिः ॥९२१॥

यथा पद्मालयं प्राप्य प्रीतो भवति माधवः ।
कदम्ब-कुसुमं दृष्ट्वा तथा प्रीणाति लोककृत् ॥९२२॥

सकृत्कदम्बकुसुमैर्हेलया हरिरर्चितः ।
सप्तजन्मानि देवर्षे तस्य लक्ष्मीरदूरगा ॥९२३॥

घनागम के समय मेघ के समान वर्ण वाले प्रभु की जो भक्त कदम्ब के पुष्पों से पूजा करते हैं, हे मुनिश्रेष्ठ ! उन्होंने अपने जीवन का फल प्राप्त कर लिया ।।९१८।।

कदम्ब के पुष्पों से पूजा करने वालों को यमयातना और हीन योनियों में जन्म लेने का भय नहीं रहता ।।९१९।।

भगवान कदम्ब पुष्पों से जितने प्रसन्न होते हैं उतनी प्रसन्नता उन्हें केतकी पत्र और मालती के पुष्पों से भी नहीं होती ।।९२०।।

कदम्ब के पुष्पों से पूजा करने की तो बात ही क्या उन्हें देखते ही भगवान प्रसन्न होकर समस्त कामनायें पूरी कर देते हैं ।।९२१।।

माधव भगवान् जिस प्रकार पद्मालय की प्राप्ति होने पर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार कदम्ब के फूलों को देखते ही प्रसन्न हो जाते हैं ।।९२२।।

कदम्बपुष्पगन्धेन केशवार्चासुपूजिता ।
जन्मायुतार्जितस्तेन निहतः पापसञ्चयः ॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य तप्तमुद्राश्च धारयेत् ॥९२४॥

तथा कुमाराः—

शयन्या चैव बोधिन्यां दीक्षातीर्थे तथैव च ।
शंखचक्रविधानेन बह्निपूजो भवेन्नरः ॥९२५॥

स्कान्दे कृष्णः—

दीक्षाकाले शयन्यां च सुबोधिन्यां यथाविधि ।
द्वारकायां सदाधार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः ॥९२६॥
तत्रायं विधिरादौ तु मुद्रांगत्वेन माधवम् ।
षोडशोपस्करैरिष्ट्वा शंखचक्रे प्रपूजयेत् ॥९२७॥

एक बार हास्यविनोद में भी कदम्ब के फूलों से कोई भगवानकी पूजाकर लेता है तो हे देवर्षि ! सात जन्मों तक उसके घर से लक्ष्मीजी दूर नहीं जाती ॥९२३॥

भगवान् की पूजा में कदम्ब के फूलों की गन्ध भी आजाय तो उस आराध्यक के हजारों जन्मों के सञ्चित पाप दोष नष्ट हो जाते हैं। आषाढ़ शुक्ला एकादशी एवं द्वादशी को तप्तमुद्रायें धारण करनी चाहिये ॥९२४॥

सनत्कुमारों को यह आदेश है—देवशयनी अथवा देव-प्रबोधिनी (कार्तिक शुक्ला ११) को जो भक्त शंख चक्र की तप्त-मुद्रा धारण करता है वह नर पवित्र हो जाता है ॥९२५॥

स्कन्दपुराण में श्रीकृष्ण के भी ऐसे ही वाक्य है—आषाढ़ शुक्ला और कार्तिक शुक्ला एकादशी को वैष्णव द्वारका में शंख चक्र की तप्त मुद्रा धारण करे ॥९२६॥

निर्मितेषु प्रतिष्ठया निवेदितोपहारके ।
प्रणमेदनेन मन्त्रेण कृष्णप्रसादपूजिते ॥९२८॥

सुदर्शन नमोऽस्तु तेऽज्ञानध्वान्त विदारण ।
पाञ्चजन्य नमस्तुभ्यं प्रपन्नभयभञ्जन ॥९२९॥

सत्संस्कारोक्तविधिना स्थाप्याग्निं मूलमन्त्रतः ।
अष्टोत्तरशतं वाऽष्टाविंशतिमभिमन्त्र्य च ॥९३०॥

चक्रं तु कामगायत्र्या प्रोक्षयेदुपगृह्य तत् ।
ततोऽग्नौ चक्रमास्थाप्य प्रार्थयेन्मनुना सुधीः ॥९३१॥

सुदर्शन महाबाहो सूर्यकोटिसमप्रभ ।
अज्ञानान्धस्य मे नित्यं विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥९३२॥

उसका विधान इस प्रकार है—पहले भगवान् की षोडश उपचारों से पूजा करके शंख चक्र की पूजा करे ॥९२७॥

शंख चक्र बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा की जाय, फिर भगवत-प्रसादी से पूजा करके अग्रिम मन्त्र से प्रणाम करे ॥९२८॥

अज्ञानान्धकार के नाशक सुदर्शन ! तथा पाञ्चजन्य ! शरणागतवत्सल आपको नमस्कार है ॥९२९॥

फिर मूल मन्त्र से १०८ बार अथवा २८ बार अभिमंत्रित करके शंख को अग्नि पर स्थापित करे ॥९३०॥

इसी प्रकार काम गायत्री से चक्र को अभिमंत्रित एवं प्रोक्षण करके अग्नि पर स्थापित करके अग्रिम मंत्र से प्रार्थना करे ॥९३१॥

हे करोड़ों सूर्यों के समान तेज वाले सुदर्शन ! मुझ अज्ञानी को भगवन्मार्ग दिखलाइये ॥९३२॥

मनुनानेन चादाय तद्गायत्रीं समुच्चरेत् ।
सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि ॥६३३॥
तन्नश्चक्रं प्रचोदयादित्यानम्य रमापतिम् ।
सतो गुरुं च तद्धस्ताद्दक्षिणभुजमूलके ॥६३४॥
चक्रं लायात्तदलाभे निजैतिह्यस्थितेः सतः ।
स्वयं वान्यान्यतो सत ऐतिह्यधर्मरक्षकः ॥६३५॥
ततः प्रोक्ष्य दरं कामगायत्र्याऽग्नौ निधाय च ।
पाञ्चजन्य निजध्वानध्वस्तपातकसञ्चय ॥६३६॥
पाहि मां पापिनं घोरं संसारार्णव पातिनम् ।
इति प्रार्थ्य च गायत्रीमादायोच्चारयेद्दरम् ॥६३७॥
पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि ।
तन्नः शंखः प्रचोदयादिति शंखं च धारयेत् ॥६३८॥

सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् । इस गायत्री मंत्र का उच्चारण करके भगवान् और गुरुदेव को नमस्कार करे । गुरुदेव वहां ही हों तब तो गुरुदेव के हाथ से दाहिने भुजा पर चक्र को धारण करे । गुरुदेव न हों तो अन्य स्व साम्प्रदायक संत के हाथ से अथवा अपने ही हाथ से चक्र को धारण कर लेवे ।।६३३-६३५।।

फिर काम गायत्री से शंख को अभिमंत्रित करके अग्नि पर स्थापित करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—हे पाञ्चजन्य ! आप अपनी ध्वनि से पापों के संचय को नष्ट कर देते हो, घोर संसार में पड़े हुए मुझ पापी की आप रक्षा कीजिये । फिर गायत्री मंत्र का उच्चारण करे—पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि तन्नः शंखः प्रचोदयात् । इसे बोलकर वांयीं भुजा पर शंख को धारण करे ।।६३६-६३८।।

वामदोर्मूल एवं हि गदापद्मप्रभृतिकम् ।
सम्प्रदायानुसारेण ब्राह्मे चतुःसनस्तथा ॥८३८॥
चक्रं च दक्षिणे वाहौ शंखं वामेऽपि दक्षिणे ।
गदां वामे गदाऽधस्तात् पुनश्चक्रं च धारयेत् ॥६४०॥
शंखोपरि तथा पद्मं पुनः पद्मं च दक्षिणे ।
उभयोर्नाममुद्रां मे सम्प्रदायानुसारतः ॥८४१॥
सर्वांगं चिह्नितं यस्य शस्त्रैर्नारायणोद्भवैः ।
प्रवेशो नास्ति पापस्थ कवचं तस्य वैष्णवमिति ।
विष्णुकवचतयोक्तैः सर्वांगेष्वपि वैष्णवैः ॥८४२॥
धारणीयानि शस्त्राणि स्वसम्बन्धिषु वैततः ।
वैष्णवत्वमुपदधत्पश्वादिष्वपि धारयेत् ।।८४३॥

इसी प्रकार गदा पद्म आदि आयुधों को सम्प्रदाय की मर्यादा के अनुसार धारण करे, जैसाकि सनकादिकों ने ब्रह्म-पुराण में कहा है ॥८३८॥

चक्र दक्षिण भुजा पर और शंख वांयीं और दक्षिण भुजा पर, गदा वांयीं भुजा पर फिर उसके नीचे चक्र को धारण करे। इसी प्रकार शंख के ऊपर पद्म वायीं भुजा पर धारण करके दक्षिण भुजा पर भी पद्म को धारण करे ॥८४०॥

सम्प्रदाय के अनुसार दोनों भुजाओं पर भगवान् की नाम मुद्रायें धारण करे ॥८४१॥

जिसके सम्पूर्ण अँगों में भगवान के आयुधों के चिह्न हों उनके शरीर में पापों का प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि वैष्णव कवच से यह सुरक्षित हो जाता है ॥८४२॥

अपने सम्पूर्ण अंगों में भगवान के आयुधों को धारण करे

तथा वाराहे—
अंकयेत्तप्तचक्राद्यै रात्मनो बाहुमूलयोः ।
कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिष्वपि सम्पदि ।।६४४।।
द्वाश्यामेव क्षीराब्धिशयनोत्सव ईह्यते ।
राधाकृष्णौ तदा सम्यक् सम्पूज्याहूय वैष्णवान् ।।६४५।।
तोषयित्वा यथाविधि वसनचन्दनादिभिः ।
सुछत्रचामरध्वजपताकसहितं हरिम् ।।६४६।।
नरयानैर्जलाभ्यासं नयेन्नृत्यप्रपूर्वकम् ।
दुग्धं च तत्र भूयिष्ठं जलालाभे निधापयेत् ।।६४७।।
गृहे हि भावयेन्नीरं सर्वोपचारपूर्वकम् ।
तीरे पुष्पाञ्जलिं दत्वा सिंहासनोपरि हरिम् ।।६४८।।

और अपने सम्बन्धियों को धारण करवावै इतना ही नहीं अपने घोड़े आदि पशुओं को भी चक्र आदि से अंकित कर दे ।।६४३।।

इसी प्रकार वाराहपुराण में कहा है—तप्त शंख चक्र आदि से अपनी भुजाओं का मूल और अपनी स्त्री पुत्र नौकर पशु आदि सम्पत्ति को भी चक्र आदि से अंकित कर देवे ।।६४४।।

आषाढ़ शुक्ला द्वादशी को ही भगवान को क्षीर समुद्र में शयन कराने का उत्सव करे—वैष्णवों को बुला करके पहले श्रीराधाकृष्ण की पूजा करे ।।६४५।।

वैष्णवों को वस्त्र चन्दन आदि से सन्तुष्ट करे । भगवान के छत्र चमर ध्वजा पताका आदि की सजावट करे ।।६४६।।

विमान में विराजमान करके नाचते गाते हुए समुद्र या सरोवर पर भगवान को लेजा करके जल में या पृथ्वी पर विराजमान करे । अथवा घर पर ही भावना कर लेवे, सम्पूर्ण उपचारों के पश्चात् पुष्पाञ्जलि देवे, सिंहासन पर भगवान की

धूपादिकोपहारान्तं दत्त्वार्थयेत् मन्त्रतः ।
सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् ॥६४६॥
विबुद्धे तु विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत ।
चातुर्मास्यनियमांश्च तत्राददीत मन्त्रतः ॥६५०॥
चतुरो वार्षिकान्मासान् देवस्योत्थापनावधि ।
करिष्ये नियममिमं निर्विघ्नं कुरुमेऽच्युत ॥६५१॥
नित्यता भाविष्ये—
यो विना नियमं मर्त्यो व्रतं वा जप्यमेव च ।
चातुर्मास्यं नयेन्मूर्खो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥६५२॥
कुमाराः—
जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नराणां समुपार्जितम् ।
अकृत्वा नियमं विष्णोश्चातुर्मास्यव्रते कृते ॥
संक्षयं याति देवर्षे सर्वथा नात्र संशयः ॥६५३॥

धूप दीप आदि से पूजा करके–यह मंत्र उच्चारण करे। हे देव जगन्नाथ ! आपके सोने पर समस्त जगत् सोता है और आपके जागने पर जागता है । इसी दिवस चातुर्मास का नियम ले लेना चाहिये ॥६४७-६५०॥

हे अच्युत ! इस वर्ष के देवोत्थान पर्य्यन्त चार महीने का मैं नियम ले रहा हूं, इसे आप निर्विघ्न पूर्ण कीजिये ॥६५१॥

नियम लेने की भविष्यपुराण में यह नित्यविधि मानी गई है—जो व्यक्ति विना नियम लिये हुए व्रत या जप करता है एवं चातुर्मास करता है वह मूर्ख जीता हुआ भी मृतक के समान है ॥६५२॥

सनत्कुमारों ने कहा है—हे नारद ! विना नियम लिये जो चातुर्मास व्रत करते हैं उनका जन्म भर किया हुआ समस्त पुण्य क्षीण हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है ॥६५३॥

प्रार्थना-मन्त्रः—

इदं व्रतं महाविष्णो गृहीतं पुरतस्तव।
निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ॥६५४॥

गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि मे भवेत्।
तदा भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्द्दन ! ॥६५५॥

तत्रतु श्रावणे शाकं भाद्रपदे दधि त्यजेत्।
पय आश्विने चोर्जे विशेषमन्यदुत्तरे ॥६५६॥

निष्पावराजमाषादि भक्तिकामनया त्यजेत्।
चातुर्मास्ये निषिद्धं हि तथोक्तं सनकादिभिः ॥६५७॥

निष्पावान् राजमाषांश्च सुप्ते देवे जनार्दने।
यो भक्षयति विप्रेन्द्र चाण्डालादधिको हि सः ॥६५८॥

भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करे—हे महाविष्णो ! आपके समक्ष मैंने यह चातुर्मास व्रत ग्रहण किया है, हे केशव ! आपकी कृपा से ही यह सम्पन्न हो सकेगा ॥६५४॥

व्रत लेने पर कदाचित् मेरी मृत्यु भी हो जाय तब भी हे प्रभो ! आपकी कृपा से यह पूर्ण होगा ॥६५५॥

श्रावण में शाक भाद्रपद में दही आश्विन और कार्तिक में दूध का त्याग रक्खे ॥६५६॥

सनकादिकों ने कहा है—हरि भक्ति चाहने वाला चातुर्मास्य व्रत लेने पर निष्पाव राजमास (उड़द) आदि का भक्षण न करे ॥६५७॥

देव शयन के पश्चात् हे विप्रेन्द्र जो इन निष्पाव राजमास (उड़द) आदि का भक्षण करता है उसे चाण्डाल से भी बुरा समझना चाहिये ॥६५८॥

कार्तिके तु विशेषेण राजमाषांश्च भक्षयेत् ।
निष्पावान् मुनिशार्दूल यावदाहूतनारकी ॥६५९॥
कलिंगानि पटोलानि वृन्ताकं सन्धितानि च ।
एतानि भक्षयेद् यस्तु सुप्ते देवे जनार्द्दने ॥९६०॥
शतजन्मार्जितं पुण्यं दहते नात्र संशयः ।
विहितं वर्णितं तत्र कर्त्तव्यं सनकादिभिः ॥९६१॥
आविकेन तु वस्त्रेण नरो मासचतुष्टयम् ।
यस्तु पूजयते देवं शंखचक्रगदाधरम् ॥९६२॥
विष्णुसालोक्यतां याति विष्णुलक्षणलक्षिताम् ।
यस्तु यत्नकृतां वृत्ति वर्षमासानदन्नृप ॥९६३॥
सर्वेषामपि नियमानां फलमाप्नोति मानवः ।
एवं गृहीतनियमः श्रीकृष्णं जलतीरतः ॥९६४॥

विशेष करके कार्तिक में जो उड़द और निष्पाव खाता है वह प्रलय पर्यन्त नरकगामी होता है ॥९५९॥

कलिंग (तरबूज) पटोल (परवर) वृन्तांक (बैंगुन) इनको देवशयन के पश्चात् जो कोई भक्षण करता हो उसके सैकड़ों जन्मों के संचित पुण्य जल जाते हैं, इसलिये सनकादिकों ने जिन-जिन कर्त्तव्यों का वर्णन किया है, वही करना चाहिये ॥९६०-९६१॥

इन चार मासों में जो ऊनी वस्त्र पहनकर शंख चक्र गदा-धारी प्रभु का पूजन करता है वह विष्णुलोक प्राप्त करके विष्णु के सदृश हो जाता है। जो अपना कमाया हुआ चतुर्मास में खाता है उसको समस्त नियमों का फल प्राप्त हो जाता है। उपर्युक्त रूप से नियम लेकर जलाशय के तट से बाजे गाजे के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को मन्दिर में वापिस लाकर विराजमान

यथागतं स्वमन्दिरं गीतनृत्यादिना नयेत् ।
ततः सतो गुरुपूर्वान् वस्त्रालंकारमुख्यकैः ॥
सम्पूजयेद्विधानेन श्रावणकृत्यमथाचरेत् ॥६६५॥

तत्र नारदः--
द्वादश्यां श्रावणे मासि सिते पक्षे पवित्रकम् ।
श्रीकृष्णाय प्रदातव्यं वैष्णवीभिश्च वैष्णवैः ॥६६६॥

विष्णुरहस्ये---
पवित्रारोपणं विष्णोर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
स्त्रीपुंकीर्तिप्रदं पुण्यं सुखसम्पद्धनावहम् ॥६६७॥

कुमाराः--
पवित्रारोपणं विष्णोः कर्त्तव्यं श्रावणे बुधैः ।
सम्पूर्णा जायते तस्मात्पूजा सांवत्सरीकृता ॥६६८॥

करे । गुरुदेव और साधु-सन्तों का वस्त्र अलंकार आदि से सम्मान एवं विधिपूर्वक पूजन करे, फिर श्रावण के कृत्यों का करना आरम्भ करे ।।६६२-६६५।।

श्रीनारदजी ने कहा है—श्रावण शुक्ला द्वादशी को वैष्णव नर-नारियों द्वारा श्रीकृष्ण को पवित्रा धारण कराना चाहिये ।।६६६।।

विष्णुरहस्य में भी कहा है—भगवान् के पवित्रा धारण कराने से भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाते हैं, इससे नर-नारियों की कीर्ति पुण्य और सुख-सम्पदा एवं धन की वृद्धि होती है ।।६६७।।

सनत्कुमारों ने कहा है—वुधजन श्रावण में भगवान् को पवित्रा धारण करावें, उससे वर्ष भर की पूजा पूर्ण होती है ।

पवित्रोत्सवमवश्यं कुर्युः शास्त्रेण वैष्णवाः ।
सर्वकालफलावाप्त्यै यशः कीर्तिविवर्द्धनम् ॥६६९॥

बह्वृचपरिशिष्टे नित्यता--
विधिना शास्त्रदृष्टेन यो न कुर्यात्पवित्रकम् ।
हरन्ति राक्षसास्तस्य वर्षपूजादिकं फलम् ॥६७०॥

असम्भवे तु कारयेत् कार्तिकावधि यथाविधि ।
कस्यांचिच्छुक्लपक्षस्य द्वादश्यां सनकास्तथा ॥६७१॥

पवित्रारोपणं विप्राः श्रावणे न भवेद् यदि ।
कार्तिकावधि शुक्लार्के कर्त्तव्यमिति नारदः ॥६७२॥

तत्राऽयं विधिरुन्नेयं हेमरौप्याब्जतंतुभिः ।
क्षौमकोषेयकार्पासैः पवित्राणि यथारुचि ॥६७३॥

वैष्णव पवित्रा धारण उत्सव अवश्य करे। इससे समस्त फलों की प्राप्ति होती है यश और कीर्ति बढ़ती है ॥६६८-६६९॥

ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग में पवित्रा धारण के विधान को नित्य बतलाया है—जो शास्त्रदर्शित विधि से भगवान् के पवित्रा धारण नहीं करता है उसके द्वारा की हुई भगवत्पूजा के फल को राक्षस हरण कर लेते हैं ॥६७०॥

कदाचित् श्रावण शुक्ला १२ को पवित्रा धारण नहीं करा सके तो कार्तिक तक किसी भी मास की शुक्ला द्वादशी को धारण करा देवें, ऐसा श्रीसनकादिकों का आदेश है ॥६७१॥

ऐसा ही भाव–नारदजी के वाक्य का है ॥६७२॥

पवित्रा बनाने की विधि—सोना या चाँदी अथवा कमल के तन्तु या ऊन रेशम अथवा सूत के धागों का अपनी रुचि के अनुसार पवित्रा बनावे ॥६७३॥

वैष्णवीकर्त्तितैः सूत्रैर्यथाशक्त्यैव कारयेत् ।
ततस्त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य संस्कृतम् ।।९७४।।
पञ्चगव्येन कवचमन्त्रेणाद्भिः समूक्षयेत् ।
सूत्रं श्रीकृष्णमन्त्रेणाष्टोत्तरशतसंख्यया ।।९७५।।
प्रजप्य कृष्णगायत्र्या शंखोदकेन चोक्षयेत् ।
नन्दपुत्राय विद्महे राधाप्रियाय धीमहि ।।९७६।।
तन्नः कृष्णः प्रचोदयादिति श्रीकृष्ण त्रिपदी ।
सूत्रं शुष्कं ततः कृत्वा निर्मापयेत् पवित्रकम् ।।९७७।।
तत्र श्रीकृष्णजानूरुनाभिप्रमाणकानि च ।
क्रमेण त्रीणि चाद्यं तु साष्टशतेन कारयेत् ।।९७८।।
चतुःपञ्चाशतामध्यं कनिष्ठं सप्तविंशतेः ।
वत्सरदिनतदर्द्धं तदर्द्धं दिनसंख्यया ।।९७९।।

वैष्णवी स्त्री द्वारा काते हुए सूत को तेहरा करके उसका संस्कार करे ।।९७४।।

कवच मंत्र से, पञ्चगव्य से एवं जल से स्नान करावे । फिर १०८ बार श्रीकृष्ण मन्त्र का जाप करे—फिर श्रीकृष्ण गायत्री से शंखोदक से प्रोक्षण करावे । श्रीकृष्ण गायत्री इस प्रकार है—नन्दपुत्राय विद्महे–राधाप्रियाय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् । फिर सूत को सुखा करके पवित्रा बनावे ।।९७५-९७७।।

भगवान् श्रीकृष्ण के जानु (गोंडे) जंघा नाभि इन तीनों नापों के अनुसार १०८ सूत के तीन प्रकार के पवित्रा बन सकते हैं ।।९७८।।

चौपन का मध्यम और सत्ताईस सूत का पवित्रा कनिष्ठ

यद्वा सूत्रेण कार्याणि पवित्राणि यथाभवम् ।
षट्‌त्रिंशग्रन्थयस्त्वाद्ये मध्ये चर्तुविंशतिः ॥६८०॥
कनिष्ठे द्वादश प्रोक्तास्तथा विष्णुरहस्यके ।
कनिष्ठे द्वादश प्रोक्ता मध्यमे द्विगुणा मताः ॥६८१॥
त्रिगुणाश्चोत्तमे प्रोक्ता ग्रन्थयश्च पवित्रके ।
चतुर्थं वनमालाख्यमारभ्य मुकुटं हरेः ॥६८२॥
आपादाभ्यामष्टोत्तरसहस्रसूत्रकेण तत् ।
ग्रन्थयस्तत्र कार्यास्तु अष्टोत्तरशतं बुधैः ॥६८३॥
तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सहशतस्त्रिभिः ।
सप्तत्यासहितं द्वाभ्यां पवित्रं मध्यमं स्मृतम् ॥६८४॥
साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत् समाचरेत् ।
यद्वाऽष्टोत्तरशतेन तदर्धार्धेन सूत्रतः ॥६८५॥

माना जाता है । वर्ष दिन ३६० अथवा उनके आधे १८० अथवा उनके भी आधे ६० सूत्रों का भी पवित्रा यथासम्भव बन सकता है । इनमें पहले में छत्तीस, मध्यवाले में चौबीस और कनिष्ठ (तीसरे) में वारह ग्रन्थियां लगाने का विधान है । कनिष्ठ से मध्यम में दुगुनी और उत्तम में तिगुनी ग्रन्थी लगावे । चौथा पवित्रा मुकुट से लेकर चरणकमलों तक जो लम्बा होता है उसको वनमाला भी कहते हैं । उसमें एक हजार आठ ग्रन्थियां होनी चाहिये । वुधजन एकसौ आठ ग्रन्थियां भी लगाते हैं ॥६७६-६८३॥

उत्तम पवित्रा तीनसौ साठ ग्रन्थियों का, दोसौ सत्तर का मध्यम, एकसौ अस्सी का कनिष्ठ माना जाता है । अथवा एक-सौ आठ का उत्तम, चौपन का मध्यम और सत्ताईस ग्रन्थियों का कनिष्ठ मानना चाहिये । मुकुट से लेकर जितने सूत्रों की भी

तदुत्तमाद्यनुक्रमात्पवित्रत्रिकमाचरेत् ।
आरभ्य मुकुटं यावत्सूत्रैर्विरचिता शुभा ॥९८६॥
आपादलम्बिनीमाला वनमाला प्रकीर्तिता ।
गुरोः सतां पवित्रकं यथासम्भवमात्मनः ॥९८७॥
साधारणपवित्रं तु त्रिभिः सूत्रैश्च कारयेत् ।
ग्रन्थीन् विष्वक्समीचीनान् कुर्यात्तथा चतुःसनः ॥९८८॥
ग्रन्थीन् कुर्वीत सर्वत्र सुवृत्तान् सुमनोहरान् ।
न वै विषमसंख्याकान् ग्रन्थीन् कुर्वीत कुत्रचित् ॥९८९॥
ततः संरज्य काश्मीरागुरुगोरोचनादिना ।
वस्त्रेणाच्छाद्य वैष्णव—पटले तन्निधापयेत् ॥९९०॥
अथाधिवासनम्—
एकादशीदिने सायंकाले स्नानं विधाय च ।
महास्नानादिनाऽभ्यर्च्य महानैवेद्यमर्पयेत् ॥९९१॥

माला हो यदि वह चरणकमलों तक की लम्बी हो तो उसे वन-माला कहते है । अपनी शक्ति के अनुसार गुरुदेव एवं सज्जनों की अनुमति से यथा सम्भव पवित्रा बनावे ।।९८४-९८७।।

साधारण पवित्रा तो तीन सूत्रों का ही बन जाता है उसके पूरे में सुन्दर ग्रन्थी लगा देवे । ऐसी सनकादिकों की आज्ञा है ।।९८८।।

ग्रन्थियां लगावे, वे मनोहर गोल-गोल हों । विषम संख्या वाली न हों ।।९८९।।

केशर अगर गोरोचन आदि से उसे रँग देवे । वस्त्र से ढंक कर वेणु (वांस) के पटल में रख लेवे ।।९९०।।

उसके अधिवासन की विधि इस प्रकार है—एकादशी के

राधाकृष्णौ च वैष्णवानाहूय कृष्णमन्दिरम् ।
सम्यग्ध्वजपताकाद्यैः कुर्वीत समलङ्कृतम् ।।९९२॥
सर्वतो मंडलं ततः श्रीकृष्णाग्रे विधाय च ।
प्राग्भागे कृष्णराधयोः सामग्री सकलां न्यसेत् ॥९९३॥

तथा कुमाराः—

देवस्य पूर्वतः स्थाप्यं दन्तकाष्ठं जलं कुशाः ।
मृत्तिका च हरिद्रा च कुष्ठगोरोचनानि च ॥९९४॥
पादुकोपानहौ छत्रं चामरं व्यजनं तथा ।
व्रीह्यादीनि च धान्यानि पुरतः स्थापयेद्धरेः ॥९९५॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च स्तोत्रैर्नानाविधैस्तथा ।
एवं महाविभूतिभिः कृष्णं सम्पूज्य वै ततः ॥९९६॥
श्रीगुरुं प्रणिपत्य च पवित्रपूजनं चरेत् ।
सर्वतो मंडले पूर्णं संस्थाप्य कलशं तथा ॥९९७॥

दिन सायंकाल स्नान करके भगवान् का महाभिषेक करे फिर वृहद् भोग धरे । बैष्णवों को बुलाकर मन्दिर को ध्वजा पताका आदि से सजावे । सर्वतोमंडल लिखे, समस्त सामग्री श्रीप्रिया-प्रियतम के आगे रख देवे ।।९९१-९९३।।

सनकादिकों ने कहा है—भगवान् के आगे दान्तुन जल कुशा, मृत्तिका हरिद्रा कूट गोरोचन, पादुका उपानह छत्र चमर व्यंजन और चावल आदि सातों धान्य रख देवे ।।९९४-९९५।।

फिर दण्ड की भाँति चरणों में गिरकर प्रणाम करे । अनेंक प्रकार के स्तोत्रों का पाठ करे । इस प्रकार महाविभूतियों से श्रीकृष्ण की पूजा करे ।।९९६।।

कार्ष्णस्तदुपरि सूत्रे पवित्रावाहनं चरेत् ।
सांवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः ॥९९८॥
विष्णुलोकात्पवित्रक आगच्छेह नमोऽस्तु ते ।
इति स्वमन्त्रपूर्वकं निजमूलमनुस्मरेत् ॥९९९॥
ततः कृष्णपवित्रकं मूलमन्त्रं पठन् सुधीः ।
सान्निध्यं चिन्तयेद्राधापवित्रं मन्त्रपूर्वकम् ॥१०००॥
श्रीमन्तौ राधिकाकृष्णौ विधिनोपचरेत्ततः ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्दिव्यैः सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ॥१००१॥
धूपं दीपं च नैवेद्यं पवित्राय ततोऽर्पयेत् ।
नह्येद्वितस्तिमात्रकं कृष्णकरे च डोरकम् ॥१००२॥
तथा कुमाराः—
अथ देववरे विद्वान् गन्धसूत्रसमुद्भवम् ।
वितस्तिमात्रकं डोरं बध्नीयान्मंगलात्मकम् ॥१००३॥

फिर श्रीगुरुदेव को नमन करे, पवित्रा का पूजन करे। सर्वतोमंडल पर कलश रक्खें। उसके ऊपर श्रीकृष्ण को विराजमान करे। फिर पवित्रा का आवाहन करे। वार्षिक याग को पवित्र करने के लिये, हे पवित्रक ! आप विष्णुलोक से पधारिये। आपको नमस्कार है। इसी प्रकार स्वमन्त्र पूर्वक निजमूल में रात्रिका स्मरण करे। फिर मूलमन्त्र पढ़ते हुए श्रीकृष्णसे पवित्रा के सानिध्य का चिन्तन करे। इसी प्रकार श्रीराधा को पवित्रा धारण करावे ॥९९७-१०००॥

फिर विधिपूर्वक श्रीराधाकृष्ण की पूजा करे, गन्ध अक्षता पुष्प धूप दीप नैवेद्य ठाकुरजी के और पवित्रा के भी चढ़ावे। फिर भगवान के करकमल में एक वीता (वितास्ति) का डोरा बांधे ॥१००१-१००२॥

ततः श्रीराधिकाकृष्णौ गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् ।
ततः संस्तुत्य राधेशं श्रीकृष्णं सन्निधापयेत् ॥१००४॥
आमन्त्रितोऽसि देवेश श्रिया राधिकया सह ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥१००५॥
ततः श्रीकृष्णमानम्य कुर्यात्पवित्रपूजनम् ।
अस्त्रेण रक्षणं कुर्यात् कवचेनावगुंठनम् ॥१००६॥
चक्रेण रक्षणं चापि नृसिंहबीजतस्ततः ।
गुरुं सम्पूज्य वस्त्राद्यैर्जागरणं च कारयेत् ॥१००७॥
॥ इत्यधिवासनम् ॥
ततः प्रातः समुत्थाय स्नानादिकं विधाय च ।
नित्यसेवां हरेः कुर्यात् पवित्रकं च पूजयेत् ॥१००८॥

श्रीसनकादिकों ने कहा है—सुगन्धित सूत्रों से बनाया हुआ एक वितस्त परिमाण का डोरा भगवान् के करकमलों में बांधे ।।१००३।।

फिर श्रीराधाकृष्ण की पूजा करके स्तुति करे—हे प्रभो श्रीकिशोरीजी सहित मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ । प्रातः-काल आपकी पूजा करूंगा, आप अवश्य सन्निहित होवें, आपको नमस्कार है ।।१००४-१००५।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण को नमन करके पवित्रा का पूजन करे । अस्त्रमन्त्र से रक्षण, कवच मन्त्र से अवगुण्ठन तथा चक्र-मन्त्र एवं नृसिंह बीज से रक्षण करे, फिर वस्त्र आदि से गुरुदेव की पूजा करके जागरण करे । यह अधिवासन की विधि है ।।१००६-१००७।।

फिर अग्रिम दिन प्रातःकाल उठ करके स्नानादि से

पवित्रांगतया ततः सम्पूज्य कृष्णराधिके ।
कृत्वा नीराजनं जयघोष वादित्रपूर्वकम् ॥१००९॥

गन्धदूर्वाक्षतयुक्तैरुपचारैः सुपूजितम् ।
श्रिये कृष्णाय मन्त्रं चोच्चरन् दद्यात्पवित्रकम् ॥१०१०॥

तथा मन्त्रः—

कृष्णकृष्ण नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रद ॥१०११॥

ततः सम्पूज्य नीराज्य तत्तन्मन्त्रैः पवित्रकम् ।
अंगोपांगेभ्य आयच्छेत्ततः पूजां विधाय तु ॥१०१२॥

गुरवे वस्त्रभूषाद्यैः समर्पयेत् पवित्रकम् ।
ततस्तथैव वैष्णवांस्ततः समाप्य चोत्सवम् ॥१०१३॥

निवृत्त हो भगवान् की नित्य सेवा के अनन्तर पवित्रा का पूजन करे। श्रीराधाकृष्ण की पूजा और वाद्य वृन्द बजाते हुए आरती करके जयघोष करे। गन्ध दूर्वा अक्षत आदि से पूजे हुए पवित्रा को मन्त्रोच्चारण पूर्वक श्रीराधाकृष्ण के अर्पण करे ॥१००८-१०१०॥

पवित्रा धारण कराते समय इस प्रकार प्रार्थना करे— वार्षिक पूजा के फल के प्रदाता हे श्रीकृष्ण ! आपको प्रणाम है, इस पवित्रा को अङ्गीकार करिये ॥१०११॥

पूजा आरती और उन मन्त्रों से पवित्रा की पूजा करके अङ्ग उपांगों में धारण करावे। फिर वस्त्र-भूषण आदि के सहित गुरुदेव को पवित्रा पहनावे। अन्य वैष्णवों को भी पवित्रा पहनावे ॥१०१२-१०१३॥

वैष्णवः सह कृष्णार्थी महाप्रसादमाहरेत् ।
मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा ॥१०१४॥

देवे तत्सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया ।
प्रत्यहं स्नानकार्यादौ सूत्राण्युत्तार्य कारयेत् ॥१०१५॥

अभिषिच्यार्च्य तोयेन पुनर्देवं निवेशयेत् ।
अथ भाद्रपदकृत्यं कार्यं कृष्णपरायणैः ॥१०१६॥

कृष्णपक्षे तु भाद्रके चाष्टमी कृष्णवल्लभा ।
उपोष्या सर्वपुरुषैर्वैष्णवैस्तु विशेषतः ।।
प्रत्यवायश्रवणत्वात् करणे नित्यता तथा ॥१०१७॥

विष्णुरहस्ये—

शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्य भोजने ।
यत्पापं लभते पुम्भिर्जयन्त्यां भोजने कृते ॥१०१८॥

फिर वैष्णवों के साथ महाप्रसाद लेवे । इस प्रकार एक मास या एक पक्ष अथवा तीन दिन या एक ही रात दिन पवित्रा धारण कराये रहैं ।।१०१४।।

इस उत्सव के सम्बन्ध में इतना ध्यान अवश्य रक्खा जाय, देशकाल के अनुसार अभिषेक के समय पवित्रा उतार करके ही भगवान् को स्नान कराया जाय । अभिषेक के अनन्तर पूजा करके फिर से पवित्रा धारण करवा देवें ।।१०१५-१०१६।।

अब भाद्रपद मास के कर्त्तव्य बतलाते हैं—भाद्रपद कृष्ण-पक्षकी अष्टमी श्रीकृष्णको बड़ी प्रिय लगती है उस दिन सभी को उपवास करना चाहिए, विशेष करके वैष्णवों को तो करना ही चाहिए । क्योंकि इसका नित्य विधान है, उस दिन उपवास न करने से दोष लगता है ।।१०१७।।

गृध्रमांसं खरं काकं श्येनं वा मुनिसत्तम।
मांसं च द्विपदां भुंक्ते भुक्ते जन्माष्टमीव्रते ॥१०१६॥

जन्माष्टमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम।
त्रैलोक्यसम्भवं पापं भुक्तं तेन न संशयः ॥१०२०॥

स्कान्दे---

कृष्णजन्माष्टमीं त्यक्त्वा योऽन्यव्रतमुपाचरेत्।
नाप्नोति सुकृतं किञ्चिद्दृष्टं श्रुतमथाऽपि वा ॥१०२१॥

ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमी व्रतम्।
धर्मबाह्यास्तु ते ज्ञेया दैत्येया दानवा हि ते ॥१०२२॥

विष्णुरहस्य में कहा गया है—शूद्र एवं मुर्दे से छुए हुए भोजन करने से जो पाप लगता है वही पाप कृष्ण जयन्ती के दिन अन्न खाने से लगता है ॥१०१८॥

हे मुनि सत्तम ! जिसने जन्माष्टमी को व्रत न रखकर अन्न खा लिया उसने समझलो वह गीध गधा कौआ वाज एवं मनुष्य चिड़िया आदि का मांस ही खा लिया ॥१०१६॥

अधिक क्या कहा जाय जिसने जन्माष्टमी के दिन अन्न खाया, उसने त्रिलोकी का समस्त पाप ही खा लिया ॥१०२०॥

स्कन्दपुराण का वाक्य है---श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत को छोड़कर जो अन्याऽन्य व्रत करते हैं वे दृष्ट श्रुत कुछ भी सुकृत प्राप्त नहीं कर सकते ॥१०२१॥

जो जानते हुए भी कृष्ण जन्माष्टमी व्रत नहीं करते उन्हें धर्म से वहिर्मुख दैत्य दानव समझना चाहिये ॥१०२२॥

वर्षे वर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमी व्रतम् ।
न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने ॥१०२३॥

भाद्रके बहुले पक्षे न करोति यदाष्टमीम् ।
क्रूरायुधाः क्रूरमुखा ग्रसन्ति यमकिंकराः ॥१०२४॥

अतीतानागतं तेन कुलमेकोत्तरं शतम् ।
पातितं नरके घोरे भुंजतां कृष्णवासरे ॥१०२५॥

कृष्णाष्टमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम ।
त्रैलोक्यसम्भवं पापं भुक्तं तेन न संशयः ॥१०२६॥

एवं नित्यत्वमाज्ञाय कार्यं कृष्णाष्टमीव्रतम् ।
साधितं व्यतिरेकेण माहात्म्येनान्वयेन तु ॥१०२७॥

तथा स्कान्दे—

कृष्ण-जन्माष्टमी लोके प्रसिद्धा पापनाशिन ।
क्रतुकोटिसमा ह्येषा तीर्थायुतशतैः समा ॥१०२८॥

जो स्त्री प्रतिवर्ष कृष्ण जन्माष्टमी व्रत नहीं करती, हे महाप्राज्ञ वह वन में सर्पिणी बनती है ॥१०२३॥

भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी को जो व्रत नहीं करते उन्हें क्रूर आयुध वाले यम के किंकर पकड़कर ले जाते हैं ॥१०२४॥

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी को जो अन्न खाता है वह भूत भविष्यत् एक सौ एक कुल वालों को नरक में डालता है ॥१०२५

हे द्विजोत्तम ! कृष्ण जन्माष्टमी के दिन जो अन्न खाता है उसने त्रिलोकी का पाप आत्मसात् कर लिया ॥१०२६॥

इस प्रकार कृष्णाष्टमी के व्रत की नित्यता अन्वय व्यतिरेक द्वारा सिद्ध होती है ॥१०२७॥

स्कन्दपुराण में कहा है—कृष्ण जन्माष्टमी समस्त पापों

कापिलं गोसहस्रं तु यो ददाति दिने दिने।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्याः समुपोषणे ॥१०२९॥
वापीकूपसहस्राणि देवायतनानि च।
कन्याकोटिप्रदानेन यत्फलं कविभिः स्मृतम् ॥१०३०॥
मातापित्रोर्गुरूणाञ्च भक्तिमुद्वहतां फलम्।
हेमभारसहस्रं तु कुरुक्षेत्रे प्रयच्छति ॥१०३१॥
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्याः समुपोषणे।
रत्नकोटिसहस्राणि यो ददाति द्विजोत्तमे ॥१०३२॥
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्याः समुपोषणे।
गवार्थे वैष्णवार्थे च स्वाम्यर्थे संत्यजेत्तनुम् ॥१०३३॥
आपन्नार्तिहराणाञ्च तीर्थसेवारतात्मनाम्।
सत्यव्रतानां यत्पुण्यं जयन्त्याः समुपोषणे ॥१०३४॥

को नाश करने वाली है, ऐसा लोक में प्रसिद्ध है। करोड़ों यज्ञ और हजारों लाखों तीर्थों के समान पुण्यदायी है ॥१०२८॥

जो प्रतिदिन हजारों गायों का दान करे उसके समान ही एक बार कृष्ण जयन्ती के व्रत करने से फल प्राप्त होता है ॥१०२९॥

हजारों कूप बावड़ी देव मन्दिरों का निर्माण और करोड़ों कन्यादान का जो फल कवियों ने बतलाया है। माता पिता और गुरुदेव की सेवा का और कुरुक्षेत्र में हजारों तोला सोना दान करने का जो फल मिलता है वह जयन्ती के व्रत करने से मिल जाता है। उत्तम ब्राह्मण को सहस्रों करोड़ रत्नों के दान का जो फल मिलता है, गऊ वैष्णव एवं स्वामी के लिये जो तन का त्याग कर देते हैं, दुखियों के दुख को दूर करने से एवं

वर्णाश्रमेषु वसतां तापसानान्तु यत्फलम् ।
राजसूयसहस्त्रैस्तु शतवर्षाग्निहोत्रतः ॥१०३५॥
एकेनैवोपवासेन जयन्त्याः समुपोषणे ।
प्रह्लादाद्यैस्तु भूपालैः कृता कृष्णाष्टमी शुभा ॥१०३६॥
श्रद्धया परया विष्णोः प्रीतये कृष्णवल्लभा ।
कृत्वा राज्यं महीं भुक्त्वा
प्राप्य कीर्त्तिं च शाश्वतीम् ॥१०३७॥
जयन्त्याश्चोपवासेन विष्णुमूर्त्तौ लयं गताः ।
धर्ममर्थं च कामं च मुक्तिं च मुनिपुंगव ।
ददाति वाञ्छितान् कामान् भाद्रके चासिताष्टमी ॥१०३८
वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ।
प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता नभस्ये चासिताष्टमी ॥१०३९॥

तीर्थ सेवा से जो फल मिलता है वही फल श्रीकृष्ण जयन्ती के व्रत करने से मिल जाता है ॥१०३० से १०३४॥

वर्णाश्रमधर्म पालन करने वाले एवं तपस्वियों को सैकड़ों वर्ष तक हग्निहोत्र करने से और हजारों राजसूय यज्ञों से जो फल प्राप्त होता है वही फल श्रीकृष्ण की जयन्ती के व्रत करने से साधक को मिल जाता है ॥१०३५॥

प्रहलाद आदि नरेशों ने कृष्णवल्लभा जन्माष्टमी का व्रत परम श्रद्धा से किया था जिससे पृथ्वी का राज्य और सुयश को प्राप्त किया था ॥१०३६-१०३७॥

जन्माष्टमी के व्रत से धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और वह विष्णु भगवान में लीन हो जाता है ॥१०३८

भगवान् की प्रसन्नता के लिये प्रतिवर्ष जन्माष्टमी का व्रत करना चाहिये । रोहिणी नक्षत्र से युक्त भाद्रपद कृष्णाष्टमी

आजन्मोपार्जितं पापं प्रहरार्द्धे विलीयते।
रात्रौ जागरणे विप्र दृष्टे नश्यति देहिनाम् ॥१०४०॥
जन्माष्टमीव्रतं ये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः।
कारयन्ति च विप्रेन्द्र लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा ॥१०४१॥
न वेदैर्न पुराणैश्च मया दृष्टं महामुने।
यत्समं वाऽधिकं चापि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ॥१०४२॥
नियमस्थं नरं दृष्ट्वा कृष्णाष्टम्यां द्विजोत्तम।
विवर्णवदनो भूत्वा तल्लिपिं मार्जयेद्यमः ॥१०४३॥
जयन्तीबुधवारेण रोहिणीसंयुता यदि।
भवते मुनिशार्दूल किं कृतैर्व्रतकोटिभिः ॥१०४४॥

के व्रत से जन्म भर के पाप आधे प्रहर में समाप्त हो जाते हैं। हे विप्र ! रात्रि जागरण के दर्शन से देह धारियों के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१०३९-१०४०॥

जो सज्जन जन्माष्टमी का व्रत करते और कराते हैं उनके लक्ष्मी सदा स्थिर हो जाती है ॥१०४१॥

हे महामुने ! कृष्ण जन्माष्टमी व्रत के समान अन्य कोई पुण्य न मैंने वेदों में देखा न पुराणों में ॥१०४२॥

कृष्ण जन्माष्टमी के नियम में स्थिर पुरुष को देखकर यमराज उदास हो जाता है और उसके समस्त पापों के लेखा-जोखा को समाप्त कर देता है ॥१०४३॥

यदि जन्माष्टमी बुधवार और रोहणी नक्षत्र से युक्त हो तो हे मुनिशार्दूल ! वह जयन्ती कहलाती है। उसके व्रत करने पर अन्य करोड़ों व्रतों की आवश्यकता नहीं रहती ॥१०४४॥

एवं माहात्म्ययुक्तत्वात्कृष्णाष्टमीं ध्रुवं धरेत् ।
तर्हि किं लक्षणा सेत्यपेक्षायां निर्णयस्तथा ॥१०४५॥

पाद्मे—

पंचगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मधुसंयुतम् ।
रविविद्धा सदा त्याज्या रोहिणीसंयुताष्टमी ॥१०४६॥
॥ रविः सप्तमी ॥

पुत्रान् हन्ति पशून् हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम् ।
हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताष्टमी ॥१०४७॥

रोहिणी बुध संयुक्ता अष्टमी च यदा भवेत् ।
सा प्रयत्नेन कर्तव्या दृश्यते सप्तमी यदि ॥१०४८॥

आग्नेये—

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी ।
विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमी संयुताष्टमी ॥१०४९॥

ऐसे माहात्म्य वाली कृष्णाष्टमी का व्रत अवश्य करै । उसके लक्षणों का आगे निर्णय किया जा रहा है ॥१०४५॥

पद्मपुराण में कहा है--जिस प्रकार मधु से युक्त पंचगव्य त्याज्य हैं उसी प्रकार सप्तमी से विद्धा अष्टमी; चाहे वह रोहिणी से युक्त भी क्यों न हो त्याज्य ही है ॥१०४६॥

क्योंकि सप्तमी विद्धा अष्टमी पुत्र पशु राज्यराष्ट्र जात-अजात सबको नष्ट कर देती है ॥१०४७॥

रोहिणी और बुधवार से युक्त भी अष्टमी हो तो भी सप्तमी विद्धा होने पर न करे ॥१०४८॥

रोहिणी रहित भी हो तो नवमी विद्धा अष्टमी का ही व्रत करे, सप्तमी विद्धा में व्रत न करे ॥१०४९॥

अविद्धायां सऋक्षायां जातो देवकिनन्दनः ।
प्रेतयोनिगतानां च प्रेतत्वं नाशितं नरैः ॥१०५०॥
यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता ।
किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः ॥१०५१॥
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ।
वासरे वा निशार्द्धेऽपि सप्तम्यां च यदाष्टमी ॥१०५२॥
पूर्वमिश्रा सदा त्याज्या प्राप्य ऋक्षं यदा बहु ।
अर्द्धरात्रमतिक्रम्य सप्तमी दृश्यते यदि ।।१०५३॥
विनापि ऋक्षं कर्त्तव्यं नवम्यां चाष्टमीव्रतम् ।
जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि ।
विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्यव्रतमाचरेत् ॥१०५४॥

रोहिणी युक्त शुद्ध अष्टमी में भगवान् का अवतार हुआ था। जिन्होंने रोहिणी सहित बुध या सोमवार की अष्टमी का व्रत किया उन्होंने प्रेत योनि में गये हुए अपने पूर्वजों की भी प्रेत योनि छुड़ा दी ।।१०५०-१०५१।।

नवमी युक्त अष्टमी का तो कहना ही क्या ? करोड़ों कुल वालों को वह मुक्त कर देती है। दिन में या अर्ध रात्रि में जब सप्तमी में अष्टमी आ जाय तो पूर्वमिश्रा अष्टमी को त्याग दे चाहे उस दिन कैसा ही पवित्र नक्षत्र क्यों न हो। यदि अर्ध-रात्रि के बाद भी सप्तमी हो तो दूसरे दिन व्रत न करे ।।१०५२-१०५३।।

नवमी विद्धा अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र न हो तो भी उसी दिन व्रत करे, क्योंकि पूर्वविद्धा नक्षत्र युक्त सम्पूर्ण अष्टमी को छोड़कर शुद्ध नवमी विद्धा में व्रत करना उत्तम है ।।१०५४।।

पितामहः—

मुहूर्त्तेनापि सम्पूर्णा संयुक्ता साष्टमी भवेत् ।
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ॥१०५५॥

ब्रह्मवैवर्ते—

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी ।
विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमी संयुताष्टमी ॥
पूर्वमिश्रा तदा त्याज्या प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥१०५६॥

स्कान्दे—

सकलाऽपि सऋक्षाऽपि नवमीसंयुताऽपि च ।
जन्माष्टमी पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कदाचन ॥१०५७॥
पलवेधेऽपि विप्रेन्द्र सप्तम्यामष्टमीं त्यजेत् ।
सुरया बिन्दुना स्पृष्टं गंगांभः कलशं यथा ॥१०५८॥
पुरा देवै ऋषिगणैः स्वपदच्युतिशंकया ।
सप्तमीव्रतजालेन गोपितं चाष्टमीव्रतम् ॥१०५९॥

पितामह ने कहा है—एक घडी अष्टमी भी नवमी युक्त हो तो करोड़ों कुल वालों को मुक्त कर देती है ।।१०५५।।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा है—सप्तमी युक्त अष्टमी में व्रत न करे, नवमी युक्त अष्टमी नक्षत्र रहित भी हो तो नक्षत्र युक्त पूर्वविद्धा अष्टमी से उत्तम है ।।१०५६।।

स्कन्दपुराण में कहा है—नक्षत्र युक्त नवमी युक्त भी अष्टमी यदि पूर्वविद्धा हो तो उस दिन व्रत न करे ।।१०५७।।

हे विप्रेन्द्र ! मदिरा की एक बूंद गिरने पर भी गंगाजल का घडा जिस प्रकार त्याज्य माना जाता है उसी प्रकार सप्तमी के एक पल का वेध होने पर भी अष्टमी को त्याग देवे ।।१०५८।।

विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमीसंयुताष्टमी।
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी ॥१०६०॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्याज्या सैवाशुभा बुधैः।
वेधे पुण्यं क्षयं याति तमः सूर्योदये यथा ॥१०६१॥
उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि।
विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत् ॥१०६२॥
कुमाराः—
उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि।
जन्माष्टमी सोपोष्या मखकोटिफलप्रदा ॥१०६३॥

पहले देवता और ऋषि गणों ने अपने पद से च्युत हो जाने की शंका से शुद्ध अष्टमीके व्रत को छिपाकर सप्तमी व्रत का जाल फेला दिया था ॥१०५६॥

अतएव बिना रोहिणी के भी नवमी संयुक्त अष्टमी का व्रत कर ले किन्तु सप्तमी युक्त रोहिणी वाली अष्टमी का भी व्रत न करे ॥१०६०॥

इसलिये वुधजनों को चाहिये—अशुभ विद्धा अष्टमी को व्रत न करें, क्योंकि जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार वेध से पुण्य क्षीण हो जाता है ॥१०६१॥

यदि तिथि के उदय काल में थोड़ी सी भी अष्टमी हो फिर दिन भर नवमी ही हो तो सप्तमी विद्धा अष्टमी को छोड़कर शुद्ध नवमी में भी कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत कर लेना चाहिये ॥१०६२॥

सनत्कुमारों ने कहा है—तिथि उदय काल में पल भर भी अष्टमी हो फिर सम्पूर्ण नवमी हो तो उसी में व्रत करे। उससे करोड़ों यज्ञों के समान पुण्य होता है ॥१०६३॥

उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि।
प्राजापत्यर्क्ष संवीता सैवोपोष्या महाफला ॥१०६४॥

भाविष्ये---

नवम्यां योगनिद्राया जन्माष्टम्यां हरेरतः।
नवम्या सहितोपोष्या रोहिणीबुधसंयुता ॥१०६५॥

इन्दुः पूर्वेऽहनि ह्यो वा परे चेद्रोहिणीयुता।
केवला चाष्टमी विद्धा सोपोष्या नवमीयुता ॥१०६६॥

शैवाः सौरा गाणपत्याः शाक्ताश्चान्योपसेवकाः।
पूर्वविद्धानि व्रतानि कुर्वन्ति कारयन्ति च ॥१०६७॥

विष्णुव्रतं सदा विप्र पूर्वविद्धं न कारयेत्।
वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसहिताऽष्टमी।
सऋक्षाऽपि न कर्त्तव्या सप्तमीसहिता यदि ॥१०६८॥

ऐसी नवमी में रोहिणी हो चाहे न हो, उसका बहुत महत्व माना है ॥१०६४॥

भविष्यपुराण में कहा है—अष्टमी को भगवान् का और नवमी को योगमाया का आविर्भाव हुआ था इसलिये बुधवार और रोहिणी नक्षत्र सहित नवमी में व्रत करे ॥१०६५॥

पूर्व दिन चन्द्रवार हो और दूसरे दिन रोहिणी नक्षत्र आ जाय तो भी पूर्व विद्धा अष्टमी में व्रत न करे। वार नक्षत्र रहित अष्टमी ही अच्छी। सौर शाक्त गाणपत्य शाक्त आदि पूर्व-विद्धा तिथि में व्रत करते कराते है किन्तु वैष्णव व्रत पूर्वविद्धा तिथि में न करे। सप्तमी युक्त अष्टमी चाहे रोहिणी युक्त भी क्यों न हो उसमें व्रत न करे ॥॥१०६६-१०६८॥

याज्ञवल्क्यः--

सम्पूर्णा चार्द्धरात्रे तु रोहिणी यदि लभ्यते ।
कर्त्तव्या सा प्रयत्नेन पूर्वविद्धां विवर्जयेत् ॥१०६९॥
जयन्ती रोहिणीयोगे सोक्ता विष्णुधर्मे तथा ।
अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणी संयुता यदा ॥१०७०॥
भवेत् प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता ।
प्राजापत्यर्क्ष संवीता कृष्णा नभसि चाष्टमी
मुहूर्त्तमपि लभ्येत सैवोपोष्या महाफला ॥१०७१॥

वैष्णवे--

कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र रोहिणी नृपनन्दनः ।
जयन्तीनाम सा ज्ञेया उपोष्या सा प्रयत्नतः ॥
एवं निर्णीय कर्तव्या तत्राऽयं विधिरुच्यते ॥१०७२॥

तथा स्कान्दे--

सर्वपापप्रशमनं सर्वपुण्यफलप्रदम् ।
अष्टम्यां रोहिणीयोगे जयन्तीनाम सुव्रतम् ॥१०७३॥

याज्ञवल्क्य का भी यही मत है—अष्टमी सम्पूर्ण हो और अर्द्ध रात्रि के समय भी यदि रोहिणी नक्षत्र लग जाय तो उसी दिन व्रत करे, पूर्वविद्धा में व्रत न करे ॥१०६९॥

रोहिणी का योग होने से कृष्ण अष्टमी की संज्ञा जयन्ती हो जाती है, अतः उस नक्षत्र से युक्त शुद्ध अष्टमी हो तो उसी दिन व्रत करे उसका विशेष फल माना है। ऐसी अष्टमी एक-घडी भी हो तो श्रेष्ठ है ॥१०७०-१०७१॥

विष्णुपुराण में भी जयन्ती का लक्षण ऐसा ही किया है, व्रत का विधान स्कन्दपुराण में इस प्रकार किया है ॥१०७२॥

गृह्णीयान्नियमं पूर्वं दन्तधावन--पूर्वकम् ।
नियमात्फलमाप्नोति न श्रेयो नियमं विना ॥१०७४॥
आदौ गुरुगृहे गत्वा पश्चान्नियममाचरेत् ।
स्वं शिरः पादयोः कृत्वा पादौ स्पृष्ट्वा च मौलिना ॥१०७५
कृतांजलिपुटो भूत्वा श्रीगुरुं प्रार्थयेत्ततः ।
नियमं देहि भो स्वामिन्नष्टम्यां च मम प्रभो ॥
इति गुरुक्त-मन्त्रेण स्वीकुर्यान्नियमं बुधः ॥१०७६॥
मन्त्रः--

जयन्त्यां तु निराहारः श्वो भूते परमेश्वर ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं चरणौ तव ॥१०७७॥
उपोषितस्तु मध्याह्ने स्नात्वा कृष्णतिलैः शुचिः ।
कृत्वा मूर्ध्नि फलं धात्र्या महापुण्यविवृद्धये ॥१०७८॥

कृष्ण जयन्ती व्रत सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर देने वाला और समस्त पुण्यों का फलदायक है ।।१०७३।।

दन्तधावन आदि करने के पश्चात् नियम लेना चाहिये, बिना नियम (संकल्प) के कल्याण नहीं होता ।।१०७४।।

गुरुदेव की सन्निधि में पहुँच करके चरण स्पर्श और नमस्कार करके नियमों का आचरण करे ।।१०७५।।

हाथ जोड़कर गुरुदेव से प्रार्थना करे, हे स्वामिन् ! अष्टमी व्रत के नियम बतलाइये फिर गुरु जो नियम बतलावें उनका पालन करे ।।१०७६।।

नियम मन्त्रों का भाव यह है—हे पुण्डरीकाक्ष ! आज मैं श्रीकृष्ण जयन्ती को निराहार रहकर कल भोजन करूँगा, आपके चरणों की शरण में हूँ। उपवास किया हुआ व्यक्ति

कृत्वा मध्याह्निकं कर्म स्थापयेदव्रणं घटम् ।
पञ्चरत्नसमायुक्तं पवित्रोदकपूरितम् ॥१०७९॥
सुचन्दनगन्धयुक्तं कर्पूरागुरुवासितम् ।
सधूपवासितं शुभ्रं पुष्पमालाऽभिशोभितम् ॥१०८०॥
तस्योपरि न्यसेत् पात्रं सौवर्णं श्रद्धयान्वितः ।
तदलाभे तु वै रूप्यं ताम्रं वेणुमयं मुने ॥१०८१॥
तस्योपरि न्यसेद्देवं हैमं लक्षणसंयुतम् ।
ददमाना तु पुत्रस्य स्तनं वै विस्मितानना ॥१०८२॥
पिबमानः स्तनं सोऽथ कुचाग्रं पाणिना स्पृशन् ।
अवलोकमानः प्रेम्णा मुखं मातुर्मुहुर्मुहुः ॥१०८३॥
कृत्वा चैवं तु वैकुण्ठं मात्रा सह जगद्गुरुम् ।
क्षीरादिस्नपनं कृत्वा देवमावाहयेत्ततः ॥१०८४॥

मध्याह्नमें काले तिलोंसे युक्त जलसे स्नान करे, आंवले से मस्तक धोवे। फिर मध्याह्न के कृत्य करके घट की स्थापना करे, उसमें पञ्चरत्न सहित शुद्ध जल भर देवे ।।१०७७-१०७९।।

चन्दन कपूर अगर उसमें मिला दे, धूप देकर पुष्पमाला चढ़ावे ।।१०८०।।

उस पर श्रद्धापूर्वक सुवर्ण का अथवा चांदी या तांवा अथवा वेणू का पात्र रक्खे ।।१०८१।।

उस पर भगवान को विराजमान करे। पुत्र के मुख में स्तन देती हुई विस्मित मुख वाली माता और उसके स्तनों का पान करने वाले एवं कुच के अग्रभाग को स्पर्श किये हुए माता के मुख को बारम्बार देखते हुए ठाकुर का ध्यान करे ।।१०८२-१०८३।।

इस प्रकार माता के सहित भगवान का दूध से स्नान कराकर भगवान् का आवाहन करे ।।१०८४।।

मन्त्र--

एहि एहि जगन्नाथ वैकुण्ठात् पुरुषोत्तम ?।
परिवारगुणोपेतो लक्ष्म्या सह जगत्पते ॥१०८५॥

प्रतिष्ठा-मन्त्र---

श्रीकृष्णाय सपरिवाराय पीठदेवता सहितायासनं।
दत्तमास्यतां भगवते नमः ॥१०८६॥

आवाहिते तु देवेशे अर्घादीनुपकल्पयेत्।
उपचर्य विधानेन चन्दनेन विलेपनम् ॥१०८७॥
कुंकुमेन महाभाग कर्पूरागुरुर्चाचितम्।
पद्मकोशीरगन्धैश्च मृगनाभिविमिश्रितम् ॥१०८८॥
श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं पुष्पमालासुशोभितम्।
मल्लिकामालतीपुष्पैश्चम्पकैः केतकीदलैः ॥१०८९॥
बिल्वपत्रैरखण्डैश्च तुलसीदलकोमलैः।
अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैः करवीरैः सितासितैः ॥१०९०॥

हे जगन्नाथ ! परिवारगण एवं लक्ष्मीजी के सहित आप यहां पधारिये ।।१०८५।।

सपरिकर श्रीकृष्ण के लिये यह आसन है, यहां पर विराजिये ।।१०८६।।

आवाहन आसन अर्घ्य देकर चन्दन का लेपन कुंकुम कपूर अगर का चर्चन करे। पद्म खस कस्तूरी भी उसमें मिलावे ।।१०८७-१०८८।।

दो श्वेत वस्त्रों को धारण करावे, पुष्पमाला पहनावे। मल्लिका, मालती, चम्पक, केतकी, विल्व पत्र, कोमल तुलसी-दल, लाल सफेद कनीर यूथिका आदि समय-समय पर होने वाले पुष्पों से जनार्दन भगवान की पूजा करे ।।१०८९-१०९१।।

यूथिका-शतपत्रैश्च तथाऽन्यैः कालसम्भवैः ।
पूजनीयो महाभाग महाभक्त्या जनार्दनः ॥१०८१॥
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्दाडिमैः शुभैः ।
बीजपूरैः पूगफलैः सुमिष्टान्नैः सुशोभनैः ॥१०६२॥
द्राक्षाफलैर्जातिफलैः फलै रम्भासमुद्भवैः ।
नैवेद्यैर्विविधैः शुभ्रैर्घृतपक्वैरनेकधा ॥१०८३॥
दीपकं कारयित्वा तु तथा कुसुममंडपम् ।
तमालसम्भवैर्दिव्यैः फलैर्नानाविधैर्मुने ॥१०८४॥
पनसादिफलैर्विप्र मेध्यवृक्षसमुद्भवैः ।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं स्वयं भक्त्या तु नारद ॥१०८५॥
शान्तिपाठं शास्त्रपाठं गीतगानं तृतीयकम् ।
सहस्रनामचतुर्थं पञ्चमं नागमोक्षदम् ॥
बालस्य चरितं विष्णोः पठनीयं पुनः पुनः ॥१०८६॥

कुम्हडा नारियल खजूर दादिम वीजपुर सुपारी और सुन्दर मिष्ठान, दाख जायफल केला और घृतपक्व विभिन्न पदार्थों का भोग लगावे ॥१०८२-१०८३॥

दीपक लगावे, पुष्पों का मण्डप बनावे, तमाल के सुन्दर फल, कटहर आदि का भोग लगावे। भक्तिपूर्वक गान नृत्य करे, वाद्य बजावे ॥१०६४-१०६५॥

शान्तिपाठ, शास्त्रपाठ, गान सहस्र नामों का और गजेन्द्र मोक्ष का पाठ तथा श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का पाठ करे ॥१०८६॥

हे नारद ! इस प्रकार अपने वैभव के अनुसार भक्तिपूर्वक गुरुदेव और भगवान की पूजा करे ॥१०८७॥

एवं कृत्वा विधानं तु यथाविभवं नारद।
गुरुं सम्पूज्य सद्भक्त्या अर्चनीयस्ततो हरिः ॥१०९७॥

श्राद्धे दाने पर्वणि च तीर्थे व्रतमखेषु च।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत अन्यैर्धर्मप्रयोजनैः ॥१०९८॥

जीवतां याति यः कालो जयन्तीवासरं विना।
तत् खण्डमायुषो व्यर्थं नराणामुपजायते ॥१०९९॥

अतिक्रम्य नरो यस्तु गुरुं धर्मोपदेशकम्।
विप्रेन्द्र स्वेच्छया पुण्यं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥११००॥

अभिवाद्य गुरुं तस्माद्धर्मकार्याणि साधयेत्।
धर्ममर्थं च कामं च यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥११०१॥

दद्यात् स्वं शक्तितो भक्त्या गोमहीकांचनं वसु।
इष्टं धान्यं च वस्त्रं च भूषणं मधुरं वचः ॥११०२॥

श्राद्ध दान पर्व पर तीर्थ, व्रत, यज्ञ आदि में द्रव्य का अभिमान न करे। अन्य-अन्य धर्मों के प्रयोजन में जिसका जयन्ती व्रत के विना जीवन जाय वह आयु भाग व्यर्थ ही समझना चाहिये ॥१०९८-१०९९॥

धर्मोपदेशक गुरु के उपदेश का उल्लंघन करके जो मनुष्य अपनी इच्छानुसार पुण्य करता हो वह नरकगामी होता है ॥ ११००॥

इसलिये जो अपना हित चाहे वह गुरुदेव की आज्ञानुसार ही धर्म अर्थ काम साधक कार्यों को करे ॥११०१॥

अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक गऊ, पृथ्वी, कंचन, धन-धान्य, सुन्दर वस्त्र-भूषण मधुर वाणी से देवे ॥११०२॥

जन्माष्टम्यर्धरात्रे च कृत्यं कुर्याद् यथाविधि ।
पूर्वं स्थलद्वयं कल्प्यं जन्मस्थानं च गोकुलम् ॥११०३॥
पूर्वं गोष्ठं त्वलंकारैर्ध्वजतोरणमौक्तिकैः ।
पूगीफलयुतैः स्तम्भैः कदलीभिश्च चित्रकैः ॥११०४॥
वर्णकैर्विविधैश्चैव शय्याभोजनपानकैः ।
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैरलंकुर्वीत वैष्णवः ॥११०५॥
भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यविशेषान् साधवेत्तथा ।
सूपादिपायसान्तानि सर्वाण्येव च कारयेत् ॥११०६॥
व्रजेश्वरं व्रजेश्वरीं गोपान् गोपीश्च वेशयेत् ।
गाश्च वत्सान् वत्सतरीः संपाय्यैवं च गोरसान् ॥११०७॥
यथास्थानमलकृत्य गोष्ठमित्यादिरीतितः ।
जन्मस्थाने तु श्रीकृष्णप्रादुर्भावं विभाव्य च ॥११०८॥

जन्माष्टमी की अर्ध रात्रि में विधिपूर्वक जन्मस्थान और गोकुल बनावे, गोष्ठ को अलंकार ध्वजा लेखा आदि से सजावे, केला के खम्भ बनावे उनमें सुपारी आदि लगा देवे ।।११०३-४।।

अनेक प्रकार के चित्र शय्या भोजन पान और पुष्पों से वैष्णव अलंकृत करे ।।११०५।।

भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य, दाल पयपक्व आदि पदार्थ बनावे ।।११०६।।

व्रजेश्वर व्रजेश्वरी गोप गोपी गउ वत्स बछिया आदि को दूध पिलाकर यथास्थान गोष्ठ आदि की रीति से अलंकृत करे । फिर जन्मस्थान में श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की भावना करे ।।११०७ ११०८।।

फिर पञ्चामृत आदि से महास्नान करावे, देवकी और केशव का पूजन गुरुदत्त मन्त्र से करे ।।११०९।।

ततः पञ्चामृतादिभिर्महास्नानं विधाय च।
निशिपूजा विधातव्या देवक्या केशवस्य च॥
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र गुरुणाऽभिहितेन च॥११०९॥

मन्त्रः

देवकि कृष्णमातस्त्वं सर्वपापप्रणाशिनी।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भीतो भवभयस्य च॥
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र पूजयित्वाऽर्थयेश्च ताम्॥१११०॥

पूजिता तु यथा देवि प्रसन्ना त्वं वरानने।
यथाशक्त्या सुपूजिता प्रसादं कुरु सुव्रते॥११११॥

यथा पुत्रं हरिं प्राप्ता निर्वृत्तिं च परां ध्रुवाम्।
तामेव निर्वृत्तिं देवि स्वपुत्राद्धि ददस्व मे॥१११२॥

हे कृष्णमाता ! देवकी आप सब पापों को नष्ट करने वाली हो, अतः संसार समुद्र से डरा हुआ मैं आपकी पूजा करता हूँ। हे विप्रेन्द्र ! इस मन्त्र से पूजा करके ऐसी याचना करे— हे देवि ! यथाशक्ति की हुई इस पूजा से आप प्रसन्न हो ॥१११०-१।११॥

जिस हरि को पुत्र प्राप्त करके आपने परम निश्चित निवृत्ति प्राप्त करली वही निवृत्ति अपने पुत्र द्वारा मुझे दिलावो ॥१११२॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण का अर्चन करे। हे मधुसूदन ! आप हजारों अवतार धारण करते हो, भूतल पर उनकी संख्या कोई नहीं जानता ॥१११३॥

कृष्णार्चण मन्त्रः—

अवतारसहस्राणि करोषि मधूसूदन ।
न संख्या तेऽवताराणां कश्चिज्जानाति वै भुवि ॥१११३॥

देवा ब्रह्मादयोऽपि च स्वरूपं न विदुस्तव ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्संगसंस्थितम् ॥१११४॥

वाञ्छितं कुरु मे देव दुष्कृतं चैव नाशय ।
कुरुष्व मे दयां देव संसार्त्तिभयापह ॥१११५॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दं पात्रे तिलमये स्थितम् ।
ततस्तु दापयेदर्घ्यमिन्दोरुदयतः शुचिः ॥१११६॥

श्रीकृष्णाय प्रथमं वै देवकीसहिताय तु ।
अर्घ्यं मुनिवर श्रेष्ठं सर्वंकर्मफलप्रदम् ॥१११७॥

ब्रह्मा आदि देव भी आपके स्वरूप को नहीं जानते, अतः माता की गोद में विराजमान आपकी मैं पूजा करता हूँ ॥१११४

हे देव ! मेरे दुष्कृतों को नष्ट करके मुझे अभीष्ट वर दीजिये । संसार के भय को नाश करने वाले हे देव, मुझ पर दया कीजिये ॥१११५॥

तिलमय पात्र में विराजमान श्रीकृष्ण की इस प्रकार पूजा करके चन्द्रोदय के समय अर्घ्य प्रदान करे ॥१११६॥

हे मुनिवर ! सम्पूर्ण कर्मों का फल देने वाला अर्घ्य देवकी सहित श्रीकृष्ण को पहले दे और ऐसी प्रार्थना करे ॥१११७॥

हे प्रभो ! आप कंस का वध करके पृथ्वी के भार को

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च।
देवतानां हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥१११८॥
कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां हि वधाय च।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे ॥१११९॥
श्रीकृष्णाय देवकीसहिताय सगणसपरिवाराय।
श्रीलक्ष्मीसहितायार्घ्यं नमः ॥१,१२०॥
नालिकेरेण शुभ्रेण दद्यादर्घ्यं विचक्षणः।
कृष्णाय परया भक्त्या शंखोदेन विधानतः ॥११२१॥
सोमाय च विशेषेण दद्यादर्घ्यं तु पुत्रक।
अर्घ्यमिन्दो गृहाण त्वं रोहिण्या सहितो मम ॥११२२॥

हरने के लिये धर्म की स्थापना करके देवों का हित एवं दैत्य कौरवों का विनाश करने के लिये प्रकट हुए हैं ॥१११८-१११९॥

ऐसी प्रार्थना करके—"श्रीकृष्णाय देवकी सहिताय सगण सपरिवाराय श्रीलक्ष्मी सहिताय अर्घ्यं नमः" इस मन्त्र से अर्घ्य देवे ॥११२०॥

बुद्धिमान भक्त भक्तिपूर्वक शुभ्र नारियल से और शंखोदक से विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करे ॥११२१॥

फिर हे चन्द्र ! रोहिणी सहित आप मेरे द्वारा समर्पित अर्घ्य को ग्रहण कीजिये, ऐसा बोल करके हे पुत्रक ! चन्द्रमा को अर्घ्य देवे ॥११२२॥

उपर्युक्त प्रकार से अर्घ्य देने का फल सागर सहित समस्त पृथ्वी के दान के बराबर है। रात्रि में गायन वादन के साथ जागरण करे ॥११२३॥

दद्याद् वै सकलमुर्वी ससागरसमन्विताम् ।
अर्घ्यदानेन तत्पुण्यं लभते मानवो भुवि ॥
गीतवाद्यादिशास्त्रैश्च कुर्याज्जागरणं निशि ॥११२३॥
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं दापयेद्धरेः ।
फलानि सुविचित्राणि देयानि मधुसूदने ॥११२४॥
पक्वान्नानि सुहृद्यानि बहूनि विविधानि च ।
धूपनीराजनं भक्त्या कुर्याश्चैव पुनः पुनः ॥११२५॥
सर्वतो रमणीयं तु तस्मिन्नहनि कारयेत् ।
चरितं देवकीसूनोर्वाचनीयं विचक्षणैः ॥११२६॥
जागरे पद्मनाभस्य पुराणं पठते तु यः ।
जन्मकोटिकृतं पापं दहते तूलराशिवत् ॥११२७॥
महा नैवेद्यमर्घ्यं च देवकीसर्पिताय च ।
यमुनां कल्पितां ततः कृष्णमुल्लंघ्य गोकुले ॥११२८॥

भगवान् को धूप दीप नैवेद्य ताम्बूल सुन्दर फल अर्पण करे ॥११२४॥

सुन्दर-सुन्दर हृदय को बल देने वाले पक्वान्न अर्पित करे, धूप और आरती भक्तिपूर्वक करे ॥११२५॥

चारों ओर से मन्दिर को सजावे, देवकीनन्दन भगवान् के चरित्र का वाचन करे ॥११२६॥

भगवान् के जागरण में जो पुराण का पाठ करता है उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥११२७॥

महानैवेद्य अर्पित करके गोकुल गमन की लीला करे, यमुनाजी बनावे, उसका उल्लंघन करके गोकुल में नवजात बालक को रखकर पूर्ववत् वसुदेवजी की कारागार में स्थापना

बालकं पूर्वकल्पिते स्थापयेद् वसुदेववत् ।
ततः प्रभातसमयेनुदिते रविमंडले ॥११२९॥
कृत्वा मध्याह्निकं कर्म सत्यप्रवणमानसः ।
दापयेद्विधिवत्सर्वं श्रीगुरवे महामुने ॥११३०॥
दद्याद् वस्त्राणि सोष्णीषं कञ्चुकं मुद्रिकां तथा ।
गुरुरपि महारत्नदानानि सकलानि च ॥११३१॥
कारयेत्परया भक्त्या व्रतनिष्पत्तिहेतवे ।
ततो व्रजेश्वरीगेहे गोपस्त्रीणां समागतिम् ॥११३२॥
प्रसिद्धरीतितः कृत्वा महोत्सवं च कारयेत् ।
दधिकर्दमनामानं दधिपयःप्रभृतिभिः ॥११३३॥
तत्र पारणनिर्णयः करणीयो विदुत्तमैः ।
सर्वव्रतेषु पारणं प्रातः सामान्यतः कृतम् ।
विशेषतस्तु भाभावे तिथ्यन्ते चोभयान्तके ॥११३४॥

करे। फिर प्रातः सूर्योदय होने पर प्रातः और माध्याह्निक कर्म करे। सत्यप्रवण मन से हे महामुने! विधिवत् श्रीगुरुदेव को वस्त्र पगड़ी बगलबंदी मुद्रिका आदि आभूषण भेंट करे। गुरु भी सभी महारत्नों का दान करे ॥११२८ से ११३१॥

व्रत की पूर्ति के लिये भक्तिपूर्वक सभी कार्य करे। फिर व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजी के भुवन में गोपियों का समागम आदि लीला महोत्सव परम्परानुसार प्रसिद्ध रीति से दधिकादौं महोत्सव दूध दही से करे ॥११३२-११३३॥

फिर विद्वानों द्वारा पारणा का निर्णय करे। सभी व्रतों में प्रायः सामान्यतया प्रातःकाल पारणा का समय समझें, विशेष रूप से नक्षत्र के अभाव में तिथि या महोत्सव के अन्त में पारणा करे ॥११३४॥

तथा कुमाराः—

रोहिणीसंयुता चेयं विद्वद्भि समुपोषिता ।
वियोगे पारणं कुर्युर्मुनयो ब्रह्मवादिनः ।।११३५।।

वाह्न्ये—

भान्ते कुर्यात्तिथेर्वान्ते शस्तं भारत पारणम् ।।११३६।।

नारदः—

सांयोगिके व्रते प्राप्ते यत्रैकोऽपि वियुज्यते ।
तत्रैव पारणं कुर्यादेवं वेदविदो विदुः ।।११३७।।

ब्रह्मवैवर्त—

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं क्वचित् ।
हन्यात् पुराकृतं कर्म उपवासार्जितं फलम् ।।११३८।।

सनत्कुमारों ने कहा है—विद्वान् रोहिणी युक्त जन्माष्टमी का व्रत करते हैं। और उसके वियोग में ब्रह्मवादी पारणा करते हैं ।।११३५।।

वह्निपुराण में कहा है—हे भारत ! नक्षत्र एवं तिथि के अन्त में पारणा करना चाहिये ।।११३६।।

नारदजी का वाक्य है—सांयोगिक व्रत की प्राप्ति होने पर जहां एक का भी वियोग (अन्त) हो उसी में वेद विशेषज्ञ पारणा करते हैं ।।११३७।।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है—अष्टमी एवं रोहिणी में पारणा नहीं करना चाहिये क्योंकि उसमें पारणा करने से पुराकृत कर्म और उपवास का फल नष्ट हो जाता है ।।११३८।।

तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं तु चतुर्गुणम् ।
तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् ॥११३९॥

याज्ञवल्क्यस्तु किंचन सामान्यतो ह्यपावदत् ।
याः काश्चित् तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः ॥११४०॥

ऋक्षान्ते पारणं तासां श्रवणं रोहिणीं विना ।
नक्षत्रान्ते दिनान्ते च पारणं यत्र नोदितम् ॥
यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणम् ॥११४१॥

वयं तु साम्प्रदायिका उत्सवान्ते प्रमाणिकाः ।
सर्वथा पारणं कुर्मस्तथाहुः सनकादयः ॥
तिथ्यन्ते चोत्सवान्ते च व्रती कुर्वीत पारणम् ॥११४२॥

तिथि आठगुणा और नक्षत्र चौगुणा शुभाशुभ फल देते हैं। अतः तिथि और नक्षत्र के अन्त में पारणा करना चाहिये ॥११३९॥

याज्ञवल्क्य कुछ सामान्यतया अपवाद करते हैं—जो तिथि नक्षत्र के योग से पुनीत मानी जाती हैं उनमें केवल श्रवण और रोहिणी को छोड़कर नक्षत्र के अन्त में पारणा करना चाहिये। नक्षत्र या दिन के अन्त में जहां पारणा करने का उल्लेख न हो, तीन प्रहर से अधिक वाली उस तिथि में प्रातःकाल ही पारणा करना चाहिये ॥११४०-११४१॥

हम तो श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, उत्सव के अन्त में हमारे यहां पारणा किया जाता है। श्रीसनकादिकों नें ऐसा ही आदेश दिया है—व्रत करने वाले को चाहिये कि तिथि एवं उत्सव के अन्त में पारणा करना चाहिये ॥११४२॥

वायवीये—

यदीच्छेत् सर्वपापानि हन्तुं निरवशेषतः।
उत्सवान्ते सदा विप्र जगन्नाथान्नमाशयेत् ॥११४३॥

समाप्यैवोत्सवं तस्मात् कर्तव्यं पारणं बुधैः।
नवनीत-दधितक्रै र्हरिद्रादिविमिश्रितैः ॥११४४॥

परस्परं विनोदकैः परमवैष्णवैः सह।
ततः स्नात्वा तु नद्यादौ चान्योन्यजलसेचनैः ॥११४५॥

भगवदवशेषेण प्रियेणैव महात्मना।
वैष्णवान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्यात् प्रदक्षिणाम् ॥११४६

ततोऽश्नीयात् स्वयं भक्तो मित्रबन्धुसमन्वितः।
विधिनानेन सहितां जयन्ती च करोति यः ॥११४७॥

वायुपुराण में कहा है—यदि सम्पूर्ण पापों को नष्ट करना चाहे तो हे विप्र ! उत्सव के अन्त में भगवत्प्रसादी ग्रहण कर लेवे, उत्सव को समाप्त करके विद्वान् को पारणा करना चाहिये, हल्दी आदि मिलाकर नवनीत दही मठा परस्पर वैष्णव विनोद पूर्वक एक दूसरे पर छिड़कें, नदी आदि में स्नान करें, परस्पर में जल ऊपर डालें ॥११४३ से ११४४॥ ११४५॥

भगवत्प्रसादी द्वारा वैष्णवों को भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा देवे ॥११४६॥

फिर स्वयं अपने मित्र बन्धुओं सहित भोजन करे, इस प्रकार की विधि से जो जयन्ती व्रत करते है, उनमें स्त्री इक्कीस-पीढ़ियों के पुरुषों को तारती है। कलियुग में विशेष प्रभाव दिखाने वाली श्रीकृष्ण जयन्ती के व्रत को जो करते हैं वे अपने

नारी चोद्धरते पुंसः पुरुषानेक विंशतिम् ।
संक्षेपेण तु यः कुर्याज्जयन्तीं कलिवल्लभाम् ॥११४८॥
मनसेष्टफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति ।
एवं जन्माष्टमीं कृत्वा कर्त्तव्यं नावशिष्यते ॥
सर्वपुण्यफलं प्राप्य ह्यन्ते याति हरेः पदम् ॥११४९॥
तत्कालपुष्पमाहात्म्यं वर्णितं सनकादिभिः ।
वर्षाकाले सकलेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः ।
येऽर्चयन्ति न ते मर्त्या देवास्ते देववन्दिताः ॥११५०॥
शुक्लाष्टम्यां तु हरेर्वाराधाजन्ममहोत्सवः ।
करणीयोऽधिकः प्रेम्णा कृष्णजन्माष्टमीव्रतात् ॥११५१॥
एकादश्यां तु शुक्लायां कटिदानं हरेर्भवेत् ।
ततो जलाशयं कृष्णं नरयानेन गापयेत् ॥११५२॥

अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त करके विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार जन्माष्टमी व्रत एवं उत्सव कर लेने पर फिर कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता, सम्पूर्ण पुण्यों का फल प्राप्त करके वह अन्त में भगवद्धाम को प्राप्त करता है ॥११४८-११४९॥

उस समय होने वाले पुष्पों का माहात्म्य सनकादिकों ने बतलाया है—वर्षा के समय चम्पक के फूलों से श्रीसर्वेश्वर प्रभु की जो पूजा करते हैं वे मनुष्य मनुष्य नहीं देव वन्दित देव समझे जाने चाहिये ॥११५०॥

भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को श्रीराधा जयन्ती महोत्सव कृष्ण जन्माष्टमी से भी विशेष रूप से मनाना चाहिये ॥११५१॥

भाद्रपद शुक्ला एकादशीको भगवान् का कटि दान होता है, नरयान (पालकी) में विराजमान करके ठाकुरजी को जलाशय पर पधराना चाहिये ॥११५२॥

तथा भाविष्ये—

प्राप्ते भाद्रपदे मासि ह्येकादश्यां सितेऽहनि ।
कटिदानं भवेद्विष्णोर्महापातकनाशनम् ॥११५३॥
तत्रैव प्रार्थयेत्कृष्णं मन्त्रेण हरिमीश्वरम् ।
देवदेव जगन्नाथ योगिगम्य श्रियः पते ॥११५४॥
कटिदानं कुरुष्वाद्य मासे भाद्रपदे शुभे ।
क्रीडयित्वा जलयानैः पुनर्मन्दिरमानयेत् ॥११५५॥
तदा महोत्सवः कार्यः स्वशक्त्या वैष्णवैर्मुदा ।
गन्धादिगीतवाद्यैश्च पताकाचैलतोरणैः ॥११५६॥
द्वादश्यामथ शुक्लायां वामनजन्म-सूत्सवः ।
श्रवणद्वादशी सैव विजया नाम कीर्तिता ॥११५७॥

भविष्यपुराण में कहा है—भाद्रपद शुक्ला एकादशी को भगवान् का कटिदान महान् पातकों का नाश कर देता है ॥ ११५३॥

वहां निम्नांकित मन्त्र से भगवान् की प्रार्थना करे—हे देवदेव ! योगिगम्य रमानाथ ! आज इस भाद्रपद मास में आप कटिदान कीजिये । इस प्रकार नौका आदि द्वारा जलाशय में क्रीडा कराकर वापिस मन्दिर में ले आवे ॥११५४-११५५॥

फिर वैष्णवों सहित शक्ति के अनुसार महोत्सव करे, गन्धादि चढ़ावे, गीत वाद्य ध्वजा पताका तोरण आदि से मन्दिर को सजावे ॥११५६॥

फिर भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वामन जयन्ती महोत्सव करे, उस दिन श्रवण नक्षत्र हो तो वह विजया महाद्वादशी कहलाती है ॥११५७॥

तथा भागवते शुकः—[८।१८ श्लोक ५-६]
श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्त्तेऽभिजिति प्रभुः ।
सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्मदक्षिणम् ॥११५८॥
द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप ।
विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म हरेर्विदुः ॥११५९॥
भाविष्ये कृष्णः—
मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।
सर्वकामप्रदा पुण्या उपवासे महाफलम् ॥११६०॥
संगमे सरितां स्नात्वा ततस्तर्पणमाचरेत् ।
अघनाशमवाप्नोति द्वादश-द्वादशीफलम् ॥११६१॥
बुधश्रवणसंयुक्ता सा चैव विजया मता ।
द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति भारत ॥११६२॥

श्रीमद्भागवत ८।१८ श्लोक ५-६ में श्रीशुकदेवजी ने कहा है—भाद्रपद शुक्ला द्वादशी श्रवण नक्षत्र के अन्तर्गत अभिजित् मुहूर्त में प्रभु का अवतार हुआ, उस समय समस्त नक्षत्र तारा आदि ने प्रदक्षिणा की ।।११५८।।

मध्याह्न में सूर्य स्थित हो गया । उस द्वादशी का नाम विजया है जिसमें वामन भगवान् का आविर्भाव हुआ था ।।११५९

भविष्यपुराण में स्वयं श्रीकृष्ण के वाक्य हैं—श्रवण नक्षत्र युत भाद्रपद शुक्ला द्वादशी सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली है–उस दिन उपवास करने से बड़ा पुण्य होता है ।।११६०।।

नदी के संगम पर स्नान करके तर्पण करना चाहिये, जिससे बारह प्रकार के पापों का नाश हो जाता है ।।११६१।।

यदि उस दिन श्रवण नक्षत्र और बुधवार हो तो हे भारत ! नदियों के संगम पर स्नान करने से सैकड़ों यज्ञों के

संगमे सरितां स्नात्वा शतयज्ञाधिकं फलम् ।
जपोपवासमासाद्य नात्र कार्या विचारणा ॥११६३॥
ब्रह्मवैवर्ते—

मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे यदि हरेर्दिनम् ।
बुधश्रवणसंयोगः प्राप्यते तत्र पूजितः ॥११६४॥
प्रयच्छति शुभान् कामान् वामनो मनसि स्थितान् ।
विजयानाम सा प्रोक्ता तिथिः प्रीतिकरी हरेः ॥११६५॥
नारदः—

यदा च शुक्लद्वादश्यां नक्षत्र श्रवणं भवेत् ।
तदा सा तु महापुण्या द्वादशी विजया मता ॥११६६॥
मन्त्रदानोपवासाद्यमक्षयं तु प्रकीर्तितम् ।
श्रवणेनान्विता यत्र द्वादशी लभते क्वचित् ॥११६७॥

समान पुण्य फल प्राप्त होता है । जप उपवास इस दिन महत्वपूर्ण होते हैं, मुहुर्त्तादि के विचार करने की आवश्यकता नहीं होती ॥११६२-११६३॥

ब्रह्मवैवर्त में कहा है—भाद्रपद शुक्ला द्वादशी बुधवार और श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन पूजित वामन भगवान् समस्त मनोरथों की पूर्ति कर देते हैं । वह विजया तिथि भगवान् को बड़ी प्रिय है ॥११६४-११६५॥

श्री नारदजी ने कहा है—श्रवणयुक्त भाद्रपद शुक्ला द्वादशी विजया द्वादशी कहलाती है । उस दिन मन्त्र, जप, दान, उपवास आदि का अक्षय फल होता है । श्रवण नक्षत्र से युक्त वह द्वादशी हो तो एकादशी का व्रत भी उसी दिन करना चाहिये ॥११६६-११६७॥

उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यामर्चयेद्धरिम् ।
दशम्यां नियमं कृत्वा चैकादश्यां व्रतान्वितः ॥११६८॥
उपोष्य द्वादशीं तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ।
नत्वेवं विधिलोपः स्यात् सत्युत्तरोत्तरे व्रते ॥११६६॥
नैवं शास्त्राननुज्ञानात्तथाहुः सनका यः ।
मासिभाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ॥११७०॥
महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ।
एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमप्युपोषयेत् ॥११७१॥
न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः ।
असमाप्तव्रतो ह्येव कुर्याद्‌व्रतमिति श्रुतिः ॥११७२॥
भाविष्ये कृष्णः—
उपोष्यैकादशीं शुद्धां द्वादशीं समुपोषयेत् ।
न चैवं विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवता हरिः ॥११७३॥

दशमी को नियम कर लेवे, एकादशी को भी व्रत रखे, फिर द्वादशी को व्रत रखकर त्रयोदशी को पारणा करना चाहिये। इस प्रकार दो दिन व्रत करने पर भी विधि का लोप नहीं होता ॥११६८-११६६॥

इस प्रकार शास्त्र की आज्ञा है, ऐसा सनकादिकों ने कहा है—भाद्रपद शुक्ला द्वादशी श्रवण युक्त हो तो उसे महाद्वादशी समझें उस दिन उपवास का फल विशेष होता है। एकादशी और द्वादशी दोनों दिन उपवास करे ॥११७०-११७१॥

यहां विधि का लोप न समझें, क्योंकि दोनों के देवता एक ही भगवान् हैं। अतः एकादशी के व्रत की समाप्ति न करके द्वादशी का व्रत कर सकते हैं ॥११७२॥

मात्स्ये—

द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नभस्ये श्रवणे यदि।
उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादशीमप्युपोषयेत् ॥११७४॥

ब्रह्माण्डे—

द्वादश्यास्तु दिने भाद्रे हृषीकेशर्क्षसंयुते।
उपवासद्वयं कुर्याद्विष्णु —प्रीणनतत्परः ॥११७५॥
नक्षत्रमात्रस्पर्शापि सर्वज्या सनकास्तथा।
द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पूज्यतमा मता॥
न चासौ तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते ॥११७६॥

गोबिलः—

या तिथिर्भेन संयुक्ता यार्क्षयोगेन नारद।
मुहूर्तद्वयमात्रापि सा सर्वा हि प्रशस्यते ॥११७७॥

भविष्यपुराण के कृष्ण वाक्य का भी यही भाव है ॥११७३॥

मत्स्यपुराण में कहा है—भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को श्रवण नक्षत्र हो तो एकादशी और द्वादशी दोनों दिन व्रत करे ॥११७४॥

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है—भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को हृषीकेश नक्षत्र हो तो एकादशी द्वादशी दोनों दिन उपवास करे। इससे प्रभु प्रसन्न होते हैं। द्वादशी को चाहे पूरे दिन श्रवण नक्षत्र न भी हो तो क्षति नहीं; द्वादशी में श्रवण का स्पर्श मात्र भी हो तो वह प्रशंसनीय कहलाती है ॥११७५-११७६॥

गोविल का वाक्य है—हे नारद! जो तिथि नक्षत्र से

कुमाराः—
द्वादशी श्रवणस्पृष्टा पलमात्रं यदा नृप।
उपवासद्वयं कुर्याद् विष्णुप्रीणनतत्परः ॥११७८॥

मार्कण्डेये—
श्रवणर्क्षसमायुक्ता द्वादशी यदि लभ्यते।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥११७९॥

द्वादश्यां श्रवणं यर्हि स्वल्पमपि न लभ्यते।
एकादशी तदोपोष्या सैव चेच्छ्रवणान्विता ॥११८०॥

तथा कुमाराः—
श्रवणलेशवर्जिता वामनद्वादशी भवेत्।
एकादशी यदा वा स्याच्छ्रवणेन समन्विता॥
विजया सा तिथिः प्रोक्ता पापानां विजयप्रदा ॥११८१॥

युक्त पूर्ण योग वाली हो अथवा मुहुर्त्त मात्र का भी योग हो तो वह प्रशंसनी मानी जाती है ।।११७७।।

सनत्कुमारों ने कहा है—द्वादशी को एकपल भर भी श्रवण नक्षत्र का स्पर्श हो जाय तो एकादशी द्वादशी दोनों दिन उपवास करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं ।।११७८।।

मार्कण्डेय का वाक्य है—यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी हो तो उसी दिन एकादशी का व्रत करके त्रयोदशी को पारणा करे ।।११७९।।

यदि द्वादशी को श्रवण न मिले, एकादशी को श्रवण नक्षत्र हो तो फिर एकादशी को ही व्रत करे ।।११८०।।

यदि वामन द्वादशी को श्रवण नक्षत्र न हो और भाद्रपद शुक्ला एकादशी को श्रवण हो तो उस एकादशी को ही विजया-महाद्वादशी समझना चाहिये ।।११८१।।

नारदीये—

यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित् ।
एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता ॥११८२॥
एकादशी श्रवणं च द्वादशी स्युर्यदैकदा ।
तदा तु विष्णुश्रृंखलायोगः स परिकीर्तितः ॥११८३॥

तथा मात्स्ये—

द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि ।
स एव वैष्णवो योगो विष्णुश्रृंखलसंज्ञितः ॥११८४॥
व्रतद्वयासमर्थस्तु त्यक्त्वैवैकादशीमपि ।
द्वादशीं समुपवसेदुभयोः फलदायिकाम् ॥११८५॥

तथा वामने—

एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषयेत् ।
व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥११८६॥

नारदीयपुराण में यही कहा है—जब भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को श्रवण नक्षत्र न हो और एकादशी को श्रवण हो तो उसी दिन उपवास करे ॥११८२॥

एकादशी में द्वादशी का मेल हो और श्रवण नक्षत्र भी हो तो वह विष्णु श्रृंखल योग कहलाता है ॥११८३॥

यही आशय मत्स्यपुराण के वाक्य का है—श्रवण युक्त द्वादशी यदि एकादशी का स्पर्श करे तो वह वैष्णव विष्णु-श्रृङ्खल योग कहलाता है ॥११८४॥

यदि एकादशी द्वादशी दोनों दिनों के व्रत करने में असमर्थ हो तो एकादशी को व्रत न करके द्वादशी के दिन व्रत करने से दोनों का फल प्राप्त हो जाता है ॥११८५॥

बौद्धायनः—

एवमेकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।
पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥११८७॥
दिनद्वयेऽपि श्रवणाभावे तद्योगहानितः ।
एकादश्यामुपोष्यैव द्वादश्यां वामनं यजेत् ॥११८८॥
अनेन निर्णयेन तु महाग्रहोपवासिनाम् ।
व्रतद्वयेऽप्यसामर्थ्ये द्वादश्याः श्रैष्ठ्यमीरितम् ॥११८९॥
एवं कृतव्यवस्थयैकादशीद्वादशीमुभे ।
संविवेच्य सुनिश्चित्य विधिना समुपोषयेत् ॥११९०॥
कृष्णस्तं विधिमाह च भाविष्योत्तरके तथा ।
आदौ गुरुगृहं गत्वा पश्चान्नियमं तु कारयेत् ।
मन्त्रेण प्रार्थयन् विद्वान् वामनं व्रतदैवतम् ॥११९१॥

वामनपुराण में यही कहा है—द्वादशी व्रत से दोनों का फल निश्चित मिल जाता है ॥११८६॥

वौद्धायन के वाक्य हैं—द्वादशी व्रत करने से दोनों के व्रत का फल प्राप्त हो जाता है ॥११८७॥

यदि एकादशी द्वादशी दोनों ही दिन श्रवण नक्षत्र न हो तो एकादशी के दिन उपवास करके द्वादशी को वामन जयन्ती मनावे ॥११८८॥

इस प्रकार के निर्णय से ग्रहस्थियों का दो दिन व्रत करने का सामर्थ्य न हो तो उनके लिये भी द्वादशी का व्रत करना ही श्रेष्ठ है ॥११८९॥

इस व्यवस्था के अनु र एकादशी द्वादशी दोनों की विवेचना करके निश्चित विधि के अनुसार उपवास करना चाहिये ॥११९०॥

मन्त्रः--

प्रसन्नो भव देवेश कृपां कुरु ममोपरि।
द्वादश्यां च निराहारः स्थित्वा चैवापरेऽहनि ॥११९२॥
भोक्ष्ये त्रिविक्रमानन्त शरणं भव मेऽच्युत।
ततश्चोपोष्य मध्याह्ने श्रीवामनाविरस्तकाम् ॥११९३॥
ध्यात्वा पंचामृतादिभिर्महास्नानं विधाय्य च।
महाभोगादिसम्पाद्य गृहे परमवैष्णवान् ॥११९४॥
समाहूय समाहूतानवशेषप्रभृतिभिः।
गीतवादित्रनृत्याद्यैर्महोत्सवं च कारयेत् ॥११९५॥
द्वादश्यां सोपवासः सन् रात्रौ सम्पूजयेद्धरिम्।
जलपूर्णं स्थितं कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः ॥११९६॥

उसकी विधि श्रीकृष्ण भगवान् के वाक्यों से भविष्य-पुराण में इस प्रकार बतलाई है—गुरुदेव के घर जाकर पहले नियम लेवे, फिर निम्नांकित मन्त्र से व्रत के देवता (वामन भगवान) की प्रार्थना करे ।।११९१।।

हे प्रभो ! आप मुझ पर कृपा करें, मैं आज द्वादशी को निराहार रहकर कल प्रसाद ग्रहण करूँगा। हे अनन्त ! हे त्रिविक्रम ! हे अच्युत ! मुझे आप शरण में लेवें, ऐसे प्रार्थना और ध्यान करके उपवास करे और द्वादशी को मध्याह्न में वामन भगवान् के आविर्भाव का उत्सव मनावे। पञ्चामृत से महास्नान कराकर महाभोग समर्पण करे, परम वैष्णवों को आमन्त्रित करके घर पर बुलावे, महाप्रसाद (फलाहार) आदि से आदर करे। गायन वादन आदि द्वारा समाज गान पूर्वक वामन जयन्ती महोत्सव मनावे ।।११९२-११९५।।

पञ्चरत्नसमुपेतं सोपवीतं सुपूजितम् ।
तस्य स्कन्धे सुनिर्मितं स्थापयित्वा जनार्द्दनम् ॥११९७॥
स्वर्णमयं यथाशक्त्या शार्ङ्गशरविभूषितम् ।
स्नापयित्वा विधानेन सितचन्दनचर्चितम् ॥११९८॥
सितवस्त्र––समुपेत –– मुपानच्छत्रसंयुतम् ।
वैष्णवयष्टिसंयुक्तं साक्षकक्षापवित्रकम् ॥११९९॥
ॐ नमो भगवतेऽस्तु चतुर्भुजाय वै नमः ।
वासुदेव नमोऽस्तु शिरः सम्पूज्य भक्तितः ॥१२००॥
श्रीरामाय मुखं कंठं श्रीकृष्णाय नमस्तथा ।
श्रीपतये नमो वक्षो भुजौ शस्त्रास्त्रधारिणे ॥१२०१॥
व्यापकाय नमः कुक्षि कवीशायोदरं नमः ।
त्रैलोक्यजननायेति मेढ्संज्ञं नमो हरेः ॥१२०२॥

द्वादशी को उपवास रक्खे, रात्रि में भगवान की पूजा करे । पञ्चरत्न सहित जल से भरा हुआ घट स्थापित करे, उस पर यज्ञोपवीत रक्खे । उस पर वामन भगवान् की स्वर्ण प्रतिमा विराजमान करके विधिपूर्वक स्नान करावे, चन्दन चढ़ावे, सफेद वस्त्र धारण करावे । जूता, छाता और आंखों वाली वांस की लाठी रक्खे ॥११९६-११९९॥

चतुर्भुज भगवान् वामन को नमस्कार है, वासुदेवाय नमः इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक मस्तक की पूजा करे ॥१२००॥

'श्रीरामाय नमः' से मुख की, 'श्रीकृष्णाय नमः' से कण्ठ की, 'श्रीपतये नमः' से वक्षस्थल की, 'शस्त्रअस्त्रधारिणे नम' से भुजाओं की, 'व्यापकाय नमः' से कुक्षि की, 'कपीशाय नमः' से उदर की, 'त्रैलोक्यजननाय नमः' से मेढ् (लिंग) की, 'सर्वाधि-

सर्वाधिपतये जानु पादौ सर्वात्मने नमः।
अनेन विधिना सम्यक् पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ॥१२०३॥
ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं विविधं शुभम्।
सोदकं नवकुम्भं च भक्त्या दद्याद् विचक्षणः ॥१२०४॥
एवं सम्पूज्य राधेशं नानालीलानुकारिणम्।
जागरं तत्र कुर्वीत गीतवादित्रनर्त्तनैः ॥१२०५॥
प्रभाते विमले स्नात्वा सम्पूज्य गरुडध्वजम्।
पुष्पैर्नैवेद्यसंयुक्तैः फलैर्वस्त्रैः सुशोभनैः ॥१२०६॥
पुष्पाञ्जलिं ततः कृत्वा मन्त्रमेनमुदीरयेत्।
नमस्ते कृष्णगोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ॥१२०७॥
सर्वपापक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
दापयेच्छक्तितो भक्त्या गोमहीकांचनं वसु ॥१२०८॥

पतये नमः' से भगवान् के जानु (घुटनों) की और 'सर्वात्मने नमः' से दोनों पैरों की पुष्प धूप दीप आदि से विधिपूर्वक पूजा करे ॥१२०१-१२०३॥

फिर नैवेद्य का भोग धरे, जल से भरे हुए घट का दान करे ॥१२०४॥

इस प्रकार विविध लीला करने वाले श्रीराधिकानाथ की पूजा करके गायन वादन नृत्य पूर्वक जागरण करे ॥१२०५॥

फिर प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करके गरुडध्वज भगवान् की पुष्प नैवेद्य सुन्दर फल वस्त्र आदि पुष्पाञ्जलि करे, फिर यह मन्त्र बोलकर प्रार्थना करे—वुध श्रवण संज्ञा वाले—हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! मेरे समस्त पापों को नष्ट करके मुझे सब प्रकार के सुख प्रदान करें। तत्पश्चात् परम धर्म की शिक्षा देने वाले गुरु श्रीगुरुदेव की पूजा करे ॥१२०६-१२०८॥

धिष्ण्यं धान्यं च वस्त्रं च भूषणं मधुरं वचः ।
प्रार्थ्य श्रीवामनं विष्णुं सर्वं मन्त्रेण दापयेत् ॥१२०९॥

तत्र प्रार्थना—

प्रीयतां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन ।
गोदानं हेमदानं च भूदानं सम्प्रदीयताम् ॥१२१०॥

दानमन्त्रः—

वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम् ।
वामनोऽस्य प्रतिग्राही तेनेयं वामने रतिः ॥१२११॥

प्रतिग्रहमन्त्रः—

वामनः प्रतिगृह्णातु वामनो वै ददाति च ।
वामनोऽस्य प्रतिग्राही तेनेयं वामने रतिः ॥१२१२॥

भक्तिपूर्वक उन्हें गउ, पृथ्वी, सोना आदि धन धान्य मकान, वस्त्र-भूषण मधुर मीठे वचनों सहित देवे । वामन भगवान् की इस प्रकार प्रार्थना करे ॥१२०९॥

हे देवदेव ! जगन्नाथ ! मुझ पर प्रसन्न होकर गोदान, सुवर्णदान, भूदान दिलाइये ॥१२१०॥

दान मन्त्र का अर्थ—वामन ही बुद्धि देते हैं, द्रव्यस्थ वामन ही दान दिलाते हैं और वामन ही उस दान का ग्रहण करते हैं इसीलिए वामन में ऐसी रति होनी चाहिये ॥१२११॥

प्रतिग्रह मन्त्र का तात्पर्य—वामन ही प्रतिग्रहण कराते हैं, वामन ही दिलाते हैं । वामन ही ग्रहण करते हैं इसलिये वामन में ऐसी भक्ति है ॥१२१२॥

आदावर्घ्यः प्रदातव्यः पश्चात्प्रस्वापयेद्धरिम् ।
नालिकेरेण शुभ्रेण दद्यादर्घ्यं विचक्षणः ॥१२१३॥

अर्घ्यमन्त्रः—

वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वामनाय नमोऽस्तु ते ॥१२१४॥

अनेनैव विधानेन नद्यास्तीरे नरोत्तमः ।
निवर्त्तयेत्ततः सम्यगेकभक्तिरतोऽपि सन् ॥१२१५॥

समाप्ते तु व्रते तस्मिन् यत्पुण्यं तन्निबोध मे ।
चतुर्युगानि राजेन्द्र सप्तसप्ततिसंख्यया ॥१२१६॥

प्राप्य विष्णुपुरं राजन् क्रीडते फलमक्षयम् ।
इहागत्य भवेद्राजा प्रतिपक्ष क्षयंकरः ॥१२१७॥

पहले अर्घ्य देवे फिर भगवान को सुलावे, अर्घ्य शुभ्र नारियल से देवे ॥१२१३॥

अर्घ्य मन्त्र का भाव—त्रिलोकी के आक्राभण करने वाले वामन भगवान को नमस्कार है। यह अर्घ्य आपके समर्पित है, आपको नमस्कार है ॥१२१४॥

इस प्रकार नदी के तीर पर भक्ति रत होकर वामन व्रत का सम्पादन करे ॥१२१५॥

वामन व्रत समाप्त होने पर जो पुण्य होता है उसे सुनिये– हे राजेन्द्र ! सतहतरि चतुर्युगीयों तक वैकुण्ठ में अक्षय फल को भोगकर जब भूलोक आता है तो यहां राज्य करता है। तिपक्षियों को नष्ट कर देता है ॥१२१६-१२१७॥

एषा पुष्टिमयी ख्याता द्वादशी श्रवणान्विता ।
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना ॥१२१८॥
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र द्वादशी कामदा कृता ।
कर्त्तव्यं पारणादिकं जन्माष्टम्युक्तरीतितः ।
कार्यमेथाश्विने कृत्यं महाभागवतैर्बुधैः ॥१२१९॥

तत्र कुमाराः—
बिजयदशमीं ज्ञात्वा रामलीलानुसारिणम् ।
आश्विनस्य सिते पक्षे सीमातिक्रमणोत्सवम् ॥१२२०॥
दशम्यां वैष्णवः कुर्याद्गीतवाद्यैर्महाव्रतैः ।
महायानसमारूढं महाविष्णुं महत्तमैः ॥१२२१॥
कृत्वा कार्यः पताकाद्यैः सीमातिक्रमणोत्सवः ।
तत्रायं विधिरुचितो वैष्णवानां महात्मनाम् ॥१२२२॥
श्रीरामं रथमारोप्य सर्वानुकरणैः सह ।
समतिक्रामयेद्ग्रामं स्वसीमानं विधानतः ॥१२२३॥

यह श्रवण नक्षत्रयुत द्वादशी पुष्टिकारक मानी गई है, सगर, ककुत्स, धुन्धुमार, गाधि आदि राजाओं ने इसका व्रत किया था। इसका पारणा जन्माष्टमी प्रकरण में कही हुई रीति से करना चाहिये। अब आगे आश्विन मास के कर्तव्यों को करना चाहिये ॥१२१८-१२१९॥

सनकादिकों ने कहा है—आश्विन शुक्ला दशमी को श्रीरामलीला के अनुसार बिजया दशमी का उत्सव मनावे, सीमा तक जाय। बाजे-गाजे सहित भगवान को विमान में विराजमान करके ध्वजा पताका सहित ले जाय। सीमातिक्रमण उत्सव का वैष्णव महात्माओं के लिये ऐसा बिधान है ॥१२२०-१२२२॥

रावणादिविजयाय सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।
रामलीलां समुद्दिश्य रावणादिवधादिकम् ॥१२२४॥
सतः सन्तोष्य शेषाद्यैः पुनर्मन्दिरमानयेत् ।
अथ शमीतरुपूजा सत्कृत्या द्वादशी बुधैः ॥१२२५॥

तत्र नारदः—

आश्विनस्य सिते पक्षे द्वादश्यां राघवोत्सवः ।
शमीमूलस्थितं रामं पूजयेच्च यथाविधि ॥१२२६॥
तत्रायं विधिरुचितः सतां रामानुवर्तिनाम् ।
समीचीनं रथं कृत्वा राममारोप्य सश्रियम् ॥१२२७॥
शमीमूलं नयेत्तत्र सम्यक्तया सुपूज्य च ।
कृत्वोत्सवं सुवैष्णवान्वस्त्रादिभि सुपूजयेत् ॥१२२८॥

श्रीरघुनाथजी को रथ में बिठाकर समस्त शस्त्र-अस्त्रों सहित अपने नगर की सीमा से आगे तक ले जाय। वहां रावण विजय स्वरूप रावण वध लीला करे। फिर सीताजी और लक्ष्मण सहित वापिस मन्दिर में आवें। भगवान का भोग नैवेद्य सभी वैष्णवों को देवे। शमीवृक्ष की पूजा करे, फिर वुधजनों द्वारा द्वादशी का कृत्य किया जाय ॥१२२३-१२२५॥

नारदजी के वाक्य हैं—आश्विन शुक्ला द्वादशी को राघव उत्सव करे, शमी वृक्ष की जड़ों में श्रीराम को विराजमान करके विधिपूर्वक पूजा करे ॥१२२६॥

श्रीराम के भक्तों के लिये विजया दशमी का विधान इस प्रकार है—सुन्दर रथ में श्रीसीता सहित श्रीरामचन्द्र भगवान् को विराजमान करके शमी वृक्ष के नीचे रथ में ही पूजन करे, वैष्णवों का वस्त्रादिक से सन्मान करे ॥१२२७-१२२८॥

गीतवादित्रनृत्याद्यै रामं मन्दिरमानयेत् ।
अथ कार्तिककृत्यं तु सम्यक् कुर्वीत वैष्णवः ॥१२२९॥

कार्तिके तु विशेषेण कृष्णभक्तो यजेद्धरिम् ।
श्रीराधायास्तथा सेवामिच्छन् भक्तो भजेच्च ताम् ॥१२३०

तद्व्रतनित्यता स्कान्दे त्वन्वयव्यतिरेकतः ।
दुष्प्राप्यं मानुषं जन्म कार्तिकोक्तं चरेन्नहि ॥१२३१॥

धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठ स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ।
अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् ॥१२३२॥

तिर्यग् योनिमवाप्नोति सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
कार्तिके नरकं याति अकृत्वा वैष्णवं व्रतम् ॥१२३३॥

गायन वादन नृत्यादि के सहित भगवान् को फिर मन्दिर में लावे। उसके अनन्तर कार्तिक मास के कर्तव्य कार्य करे ॥१२२९॥

कार्तिक में भगवद्भक्त श्रीराधा के सहित भगवान् का विशेष पूजन करे। कार्तिक व्रत की नित्यता अन्वय व्यतिरेक प्रमाणों से स्कन्दपुराण में कही है। दुष्प्राप्य मानव देह को प्राप्त करके जो हे धार्मिकों में श्रेष्ठ! कार्तिक मास के बतलाये हुए कृत्योंको न करे एवं कृष्णवल्लभ कार्तिक मासको बिना व्रत किये व्यतीत कर देता है, वह नरक का भागी बनता है ॥१२३० से १२३२॥

जो कार्तिक में वैष्णव व्रत नहीं करता वह सर्व धर्म वहिष्कृत व्यक्ति सर्प आदि तिर्यक् योनियों में जन्म लेता है ॥१२३३॥

नियमेन विना विप्र कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः ।
कृष्णः पराङ्मुखस्तस्य यस्मादूर्जोऽस्य वल्लभः ॥१२३४॥

सत्पथे कार्तिकं मासं ये रता न जनार्द्दने ।
तेषां सौरिपुरे वासः पितृभिः सह नारदः ॥१२३५॥

स ब्रह्महा स गोहनश्च स्वर्णस्तेयी महानृती ।
न करोति मुनिश्रेष्ठ यो नरः कार्तिके व्रतम् ॥१२३६॥

व्रतं तु कार्तिके मासि यदा न कुरुते गृही ।
इष्टपूर्त्तादिकं नश्यन् यावदाभूतनारकी ॥१२३७॥

यतिश्च विधवा चैव विशेषेण वनाश्रमी ।
कार्तिके नरक याति अकृत्वा वैष्णवं व्रतम् ॥१२३८॥

नियम के बिना कार्तिक मास को व्यतीत कर देने वाले ब्राह्मण से भगवान् पराङ्मुख हो जाते हैं ।।१२३४।।

हे नारद ! सुन्दर कार्तिक मास में जो भगवान् की भक्ति नहीं करते हैं उनका अपने पूर्वजों सहित नरक में वास होता है ।।१२३५।।

कार्तिक व्रत न करने वाले को ब्रह्मघाती, गोहत्यारा, सुवर्ण चुराने वाले महापातकियों के समान समझना चाहिये ।।१२३६।।

जो ग्रहस्थी कार्तिक का व्रत नहीं करता उसके इष्टापूर्त आदि का पुण्य नष्ट हो जाता है और वह प्रलय पर्य्यन्त नरक भोगता है ।।१२३७।।

वैष्णव व्रत न करने वाला सन्यासी वानप्रस्थी एवं विधवा स्त्री सभी नरक भोगते हैं ।।१२३८।।

वेदैरधीतैः किं तस्य पुराणैः पठितैश्च किम् ।
कृतं यदि न विप्रेन्द्र कार्तिके व्रतमुत्तमम् ॥१२३६॥
जन्मप्रभृति यत्पुण्यं विधिवत् समुपार्जितम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिके व्रतम् ॥१२४०॥
पापपुञ्जाः कलौ ज्ञेया न ते मर्त्या महामुने ।
वैष्णवाख्यं व्रतं यैस्तु न कृतं कार्तिके शुभे ॥१२४१॥
सप्तजन्मार्जितं पुण्यं वृथा भवति नारद ।
अकृत्वा कार्तिके मासि वैष्णवं व्रतमुत्तमम् ॥१२४२॥
एकतः सर्वतीर्थानि सर्वयज्ञाः सदक्षिणाः ।
कार्तिकस्य तु मासस्य कोट्यंशमपि नार्हति ॥१२४३॥
एकतः पुष्करे वासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ।
एकतः कार्तिको मासः सर्वपुण्याधिको मतः ॥१२४४॥

जो कार्तिक का व्रत नहीं करते उनका वेद पुराण आदि पढ़ना पढ़ाना भी व्यर्थ है ।।१२३६।।

अधिक क्या जिसने कार्तिक का व्रत नहीं किया उसका जन्म भर किया हुआ सभी पुण्य भस्म हो जाता है ।।१२४०।।

हे महामुने ! जिन्होंने कार्तिक का व्रत नहीं किया उन मनुष्यों को कलियुग में पाप पुञ्ज समझना चाहिये ।।१२४१।।

कार्तिक व्रत न करने वालों के सात जन्मों के सुकृत समाप्त हो जाते हैं ।।१२४२।।

सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा एवं दक्षिणा सहित समस्त यज्ञ भी कार्तिक व्रत की समता नहीं कर सकते ।।१२४३।।

पुष्कर, कुरुक्षेत्र, हिमालय के निवास के पुण्य फल से भी कार्तिक व्रत का पुण्य विशेष है ।।१२४४।।

सुवर्णमेरुतुल्यानि सर्वदानानि चैकतः ।
एकतः कार्तिको वत्स सर्वदा केशवप्रियः ॥१२४५॥

यत्किञ्चित् क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्तिके ।
तदक्षयं भवेत्सर्वं सत्योक्तं तव नारद ॥१२४६॥

हुतं दत्तं तु विप्रेन्द्र तपश्चैव तथा कृतम् ।
तदक्षयं फलं प्रोक्तं विष्णुना लोकसाक्षिणा ॥१२४७॥

यथा नदीनां विप्रेन्द्र शैलानां चैव नारद ।
उदधीनां च विप्रर्षे क्षयो नैवोपपद्यते ॥१२४८॥

पुण्यं कार्तिकमासे तु यत्किञ्चित् क्रियते नरैः ।
न तस्यास्ति क्षयो ब्रह्मन् पापस्याप्येवमेव च ॥१२४९॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्मणा मनसा गिरा ।
पापं समाचरेन्नैव कार्तिके विष्णु-तत्परः ॥१२५०॥

मेरु तुल्य सुवर्ण का दान भी हे वत्स ! कार्तिक व्रत के समान नहीं है ॥१२४५॥

कार्तिक में विष्णु भगवान् के निमित्त जो भी कुछ पुण्य किया जाता है वह सब अक्षय होता है ॥१२४६॥

कार्तिक में हवन किया हुआ, दान दिया हुआ, तप किया हुआ सब अक्षय फलदायक होता है ॥१२४७॥

हे नारद ! जिस प्रकार नदी पर्वत समुद्र इन सबका नाश नहीं होता, उसी प्रकार कार्तिक मास में किये हुए पुण्य और पाप का नाश नहीं होता ॥१२४८-१२४९॥

इसलिये मन, वचन, कर्म से कार्तिक में पाप न करे ॥१२५०॥

सम्प्राप्तं कार्तिकं दृष्ट्वा पराऽन्नं यस्तु वर्जयेत् ।
दिने दिने स कृच्छ्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ १२५१ ॥
अवश्यं विष्णुसान्निध्यं दुर्लभा मुक्तिराप्यते ॥ १२५२ ॥
वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करेऽर्बुदे ।
गत्वा फलं यदाप्नोति व्रतं कृत्वा तु कार्तिके ॥ १२५३ ॥
नार्चितो भक्तियोगेन यैस्तु विप्रेन्द्र केशवः ।
नरकं ते गमिष्यन्ति यमदूतैस्तु यन्त्रिताः ॥ १२५४ ॥
यस्तु संवत्सरं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते ।
कार्तिके स्वस्तिकं कृत्वा सममेतन्न संशयः ॥ १२५५ ॥

कार्तिक मास लगते ही जो साधक दूसरे का अन्न छोड़ देता है। उसको प्रति दिन निःसंदेह कृच्छ्र चान्द्रायण का फल प्राप्त होता है ॥ १२५१ ॥

कार्तिक में जो शास्त्रविहित भक्ष्य पदार्थों का नियम कर लेता है उसे विष्णु सान्निध्यरूप दुर्लभ मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है। ॥ १२५२ ॥

वाराणसी कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य पुष्कर आबू की यात्रा से जो फल मिलता है वह सब कार्तिक व्रत करने से मिल जाता है ॥ १२५३ ॥

हे द्विजेन्द्र ! भक्ति पूर्वक केशव भगवान् की जो पूजा नहीं करते वे नरक में यमदूतों के आधीन रहते हैं ॥ १२५४ ॥

पूरे वर्ष भर अग्निहोत्र करने से जो फल प्राप्त होता है वह कार्तिक में स्वस्तिक से ही प्राप्त हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १२५५ ॥

शालिग्रामशिलाग्रे तु यः कुर्यात्स्वस्तिकं शुभम् ।
कार्तिके तु विशेषेण पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ १२५६ ॥
कार्तिके कार्तिकी यावत् स्वस्तिकं केशवाग्रतः।
या करोति महाभक्त्या सा स्वर्गाच्च्यवते नहि ॥ १२५७॥
कार्तिके या करोत्येव केशवालयमण्डनम् ।
स्वर्गेतु शोभते सा तु कपोती पक्षिणी यथा ॥ १२५८ ॥
यः करोति नरो नित्यं कार्तिके पत्रभोजनम् ।
न दुर्गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १२५९ ॥
भोजनं ब्रह्मपत्रेषु ●कथायाः श्रवणं हरेः ।
दर्शनं वैष्णवानां च महापातकनाशनम् ॥ १२६० ॥

जो कार्तिक में शालिग्राम के आगे स्वस्तिक लिखता है वह अपने सात कुलों को पवित्र कर देता है ॥ १२५६ ॥

जो स्त्री कार्तिक में पूर्णिमा तक भक्ति-पूर्वक भगवान् के आगे स्वस्तिक लिखती है वह कभी भी स्वर्ग से च्युत नहीं होती ॥ १२५७ ॥

जो साध्वी कार्तिक में ठाकुर जी के मन्दिर में मंडन करती है वह कपोती (कबूतरी) के समान स्वर्ग में शोभित होती है ॥ १२५७ ॥

जो साधक कार्तिक महीने में पत्रावली (पत्तल) में भोजन करता है उसकी चोदह इन्द्रों तक दुर्गति नहीं होती ॥ १२५९ ॥

जो कार्तिक में नित्य पलास की पत्तल में भोजन करे, कथा सुने, वैष्णवों का दर्शन करे तो उसके महान् पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १२६० ॥

● ब्रह्मपत्रेषु = पलाशपत्रेषु

मौनी पलाशभोजी च तिलस्नायी सदा क्षमी ।
कार्तिके क्षितिशायी च हन्यात् पापं पुराकृतम् ॥ १२६१ ॥
जागरं कार्तिके मासि यः करोत्यरुणोदये ।
दामोदराग्रे विप्रेन्द्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १२६२ ॥
जागरं पश्चिमे यामे यः करोति महामुने ।
कार्तिके सन्निधौ विष्णोस्तत्पदं करसंस्थितम् ॥ १२६३ ॥
परान्नं परवस्त्रं च परवादं परांगनाम् ।
सर्वदा वर्जयेत् प्रातः कार्तिके तु विशेषतः ॥ १२६४ ॥
तैलाभ्यंगं तथा शय्यां परान्नं कांस्यभोजनम् ।
कार्तिके वर्जयेद्यस्तु परिपूर्णव्रती भवेत् ॥ १२६५ ॥

कार्तिक में जो सदा क्षमा करे, तिल स्नान मौन होकर पलास (ढाक) की पत्तल में भोजन और पृथ्वी पर सोवे उसके सभी पुराने पाप समाप्त हो जाते हैं ॥ १२६१ ॥

हे द्विजेन्द्र ! जो कार्तिक में भगवान के मन्दिर में अरुणोदय पर्यन्त जागरण करे तो उसे हजारों गोदानों के समान फल मिलता है ॥ १२६२ ॥

हे महामुने ! जो कार्तिक की रात्रि के पिछले पहर तक ठाकुर मन्दिर में जो जागरण करता है मुक्ति उसके हाथ में आजाती है ॥ १२६३ ॥

पराया अन्न, वस्त्र, परनिन्दा और परस्त्री ये सर्वदा वर्जित हैं। कार्तिक में मुख्यरूप से इनका त्याग करना चहिये॥१२६४॥

जो बुद्धिमान तैलाऽभ्यंग (तेलमालिस) खाट पर सोना, पराया अन्न, कांसी के पत्र में भोजन इनको कार्तिक में त्यागता है उसी का कार्तिक व्रत पूर्ण होता है ॥ १२६५ ॥

साधुसेवा गवां ग्रासः कथा विष्णोस्तथार्चनम् ।
जागरं पश्चिमे यामे दुर्लभं कार्तिके कलौ ॥ १२६६ ॥

मालती- केतकीपत्रं तुलसी द्विविधा मुने ।
ददाति कार्तिके मासि दीपदानमहर्निशम् ॥ १२६७ ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य इष्टापूर्तादिकानि तु ।
कार्तिके परया भक्त्या वैष्णवैर्यश्च संविशेत् ॥ १२६६ ॥

दुर्लभं वैष्णवं शास्त्रं वैष्णवैः सह सत्कथा ।
दुर्लभं कार्तिके दानं विष्णुमुद्दिश्य यत्कृतम् ॥ १२६८ ॥

न तत्करोति विप्रेन्द्र पुंसः स्नाने त्रिमार्गगा: ।
यत्करोति महापुण्यं वैष्णवैः सह संगमः ॥ १२७० ॥

कार्तिक मास में साधु-सेवा, गोग्रास, कथा-श्रवण हरि की पूजा और रात्रि के पिछले पहर में निद्रा त्याग ये कलियुग में दुर्लभ माने गये हैं ॥ १२६६ ॥

कार्तिक में मालती, केतकी और दोनों प्रकार की तुलसी के पत्र और दिन रात दीपदान देता है, वह चाहे इष्टापूर्त आदि सभी साधनों को त्याग दे परन्तु परम प्रेम-भक्ति से वैष्णवों के साथ रहे ॥ १२६७-६८ ॥

वैष्णवशास्त्र का पठन वैष्णवोंके साथ सम्भाषण और विष्णु भगवान के भेंट चढ़ाना—ये कार्तिक में बड़े दुर्लभ हैं ॥१२६६॥

हे द्विजेन्द्र ! जैसा पुण्य फल वैष्णवों के समागम से मिलता है वैसा गङ्गा स्नान से भी नहीं मिलता ॥ १२७० ॥

जन्म कोटि सहस्रैस्तु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
कार्तिके चार्चितो विष्णुस्त्यक्त्वान्ते यमयातना ॥ १२७१ ॥

संनिहत्यां कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवा करे ।
सूर्यवारेण यः स्नाति तदेकाहेन कार्तिके ॥ १२७२ ॥

तुलसीपत्रलक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम् ।
पत्रे-पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥ १२७३ ॥

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोके भागवतं मुने ।
अष्टादशपुराणानां कार्तिके फलमाप्नुयात् ॥ १२७४ ॥

कार्तिके मुनिशार्दूल स्वशक्त्या वैष्णवं व्रतम् ।
यः करोति यथोक्तं तु मुक्तिस्तस्य सुनिश्चला ॥ १२७५ ॥

करोड़ों जन्मों के पश्चात् दुर्लभ मनुज शरीर को प्राप्त करके कार्तिक में जो भगवान की पूजा करता है वह यमयातना नहीं भोगता ।। १२७१ ।।

रविवारी अमावस्या को सूर्य ग्रहण के समय जो कुरुक्षेत्र के स्नान से फल मिलता है, वह कार्तिक के किसी एक दिन के स्नान से ही प्राप्त हो जाता है ।। १२७२ ।।

एकलाख पत्रों से कार्तिक में जो शाग्रिाम की पूजा करता हैं उसे एक-एक पत्र में मुक्ति के समान सुख प्राप्त हो जाता है ।। १२७३ ।।

जो कार्तिकमें भा०के एक श्लोक का नित्य पाठ करता है उसे अठारह पुराणों के पाठ का फल प्राप्त हो जाता है ।। १२७४ ।।

हे मुनि शार्दूल ! अपनी शक्ति के अनुसार जो वैष्णव व्रत करता है, उसकी निश्चय ही मुक्ति हो जाती है ।। १२७५ ।।

मालतीमालया विष्णु: पूजितो येन कार्तिके ।
पापाक्षरकृतां मालां स्फुटं सौरिः प्रमार्जति ॥ १२७६

मालतीमालया येन कार्तिके पुष्पमंडपम् ।
कृतं विष्णुगृहे पदं परमे विन्दते फलम् ॥ १२७७ ॥
अगस्त्य—कुसुमैर्देवं येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ।
देवर्षे ! दर्शनात्तेषां नरकाग्निः प्रशाम्यति ॥ १२७८ ॥

मुनिपुष्पकृतां मालां येऽर्पयन्ति जनार्दने ।
देवेन्द्रोऽपि मुनिश्रेष्ठ करोति करसम्पुटम् ।।

न तत्करोति विप्रेन्द्र तपसा तोषितो हरिः ।
यत्करोति हृषीकेशो मुनिमुष्पैरलं—कृतः ॥ १२७९ ॥
मुनिपुष्पार्चितो विष्णुः कार्तिके पुरुषोत्तमः ।
ददात्यभिमतान् कामानमितान् कल्पवृक्षवत् ॥ १२८० ॥

मालती के पुष्पों की मालाओं से कार्तिक में जो भगवान् का पुष्प मण्डप बनाते हैं वे परम पद की प्राप्ति करते हैं ।। १२७६ ।।

अगस्त्य के पुष्पों से जो कार्तिक में भगवान की पुजा करते हैं, हे देवर्षे ! उनके दर्शन से ही नरक की अग्नि शान्त हो जाती है ।। १२७७ ।।

अगस्त्य के पुष्पों की माला भगवान के चढ़ाने वाले के सामने इन्द्र भी हाथ जोड़ता है ।। १२७८ ।।

अगस्त्य से पुष्पों से अलंकृत भगवान् जैसे प्रसन्न होते हैं, वैसे तपकारने से भी सन्तुष्ट नहीं होते ।। १२७९ ।।

कार्तिक में अगस्त्य के पुष्पों से समर्चित भगवान कल्प वृक्ष की भाँति समस्त अभीष्टों की पूर्ति कर देते हैं ।। १२८० ।।

गवामयुतदानेन यत्फलं जायते मुने।
मुनिपुष्पेण चैकेन कार्तिके तत्फलं स्मृतम् ॥ १२८१ ॥

विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम्।
कार्तिके योऽर्चयेद् भक्त्या वाजिमेधफलं लभेत् ॥ १२८२ ॥

बिल्वपत्रैश्च ये कृष्णं कार्तिके केलिवर्द्धनम्।
पूजयन्ति महाभक्त्या मुक्तिस्तेषां मयोदिता ॥ १२८३ ॥

नागवल्लीदलैर्विष्णुं कार्तिके यस्तु पूजयेत्।
सप्तवर्षसहस्राणि स्वर्गे बसति वैष्णवः ॥ १२८४ ॥

तुलसीदलपुष्पाणि ये यच्छन्ति जनार्द्दने।
कार्तिके सकलं वत्स पापं जन्मायुतं दहेत् ॥ १२८५ ॥

दश हजार गौदान से जो फल मिलता है, हे मुने! वह कार्तिक में एक अगस्त्य के फूल से मिल जाता है ॥ १२८१॥

अन्य सभी पुष्पों को छोड़कर कार्तिक में केवल एक अगस्त्य के पुष्प से जो भगवान की पूजा करता है उसे वाजिमेध यज्ञ के समान फल मिल जाता है ॥ १२८२ ॥

जो कार्तिक में केलिवर्धन श्रीकृष्ण की विल्व पत्रों से भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं, उनको मैं मुक्त कर देता हूँ ॥१२८३॥

जो नागवल्ली (नागर वेलि) के पत्रों से कार्तिक में भगवान की पूजा करता है वह वैष्णव सात हजार बर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है ॥ १२७४ ॥

जो सज्जन कार्तिक में भगवान के तुलसी दल चढ़ाते हैं, हे वत्स! उनके हजारों जन्मों के समस्त पाप भस्म हो जाते हैं। ॥ १२८५ ॥

दृष्टा स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता।
रोपिता सिञ्चिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥ १२८६ ॥
नवधा तुलसीभक्ति ये कुर्वन्ति दिने दिने।
युगकोटिसहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ॥ १२८७ ॥
इष्ट्वा क्रतुशतैः पुण्यं दत्त्वा रत्नान्यनेकशः।
तुलसीदलैस्तत्पुण्यं कार्तिके केशवार्चनात् ॥ १२८८ ॥
कार्तिके पश्चिमे यामे स्तवगानं करोति यः।
वसते श्वेतद्वीपेतु पितृभिः सह नारद ॥ १२८६ ॥
विष्णोर्नैवेद्यदानेन कार्तिके सिक्थसंख्यया।
युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तम ॥ १२६० ॥

कार्तिक में तुलसी के दर्शन, स्पर्शन ध्यान कीर्तन, नमन, स्तवन आरोपण सिचन तथा नित्यपूजन करना शुभ है। ॥ १२८६ ॥

उपर्युक्त नौ प्रकार से जो तुलसी की आराधना करते हैं वे हजारों युगों तक भगवान् के धाम में निवास करते हैं। ॥ १२८७ ॥

सैंकड़ों यज्ञ और अनेक रत्नों के दान करने से जो पुण्य होता है वह कार्तिक में तुलसी दलों से भगवान् की पूजा करने से प्राप्त हो जाता है ॥ १२८८ ॥

कार्तिक में रात्रि के पिछले पहर में जो भगवान के स्तवों का गान करता है, हे नारद ! वह अपने पितरों सहित श्वेतद्वीप में वास करता है ॥ १२८६ ॥

हे मुनि-श्रेष्ठ ! कार्तिक में जो भगवत्प्रसादी के जितने ग्रास किसी को वितरण करता है वह उतने ही युगों तक स्वर्ग में वास करता है ॥ १२६० ॥

प्रदक्षिणं यः कुरुते कार्तिके विष्णुसद्मनि ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलभागी भवेन्नरः ॥ १२९१ ॥
कुरुते दण्डवन्नित्यं कार्तिके भक्तिभावितः ।
रेणुसंख्या वसेत्स्वर्गं मन्वन्तरशतं नरः ॥ १२९२ ॥
गीतं वाद्यं च नृत्यं च कार्तिके पुरतो हरेः ।
यः करोति नरो भक्त्या लभते चाक्षयं पदम् ॥ १२९३ ॥
कपिलाज्येन संमिश्रमन्यगोसंभवेन वा ।
केशवाग्रे चरुं हुत्वा कार्तिके मुक्तिमाप्नुयात् ॥ १२९४ ॥
अगरुं तु सकर्पूरं यो दहेत् केशवाग्रतः ।
कार्तिके तु मुनिश्रेष्ठ युगान्ते न पुनर्भवः ॥ १२९५ ॥

कार्तिकमें भगवानके मन्दिर की परिक्रमा करने वाले को पद-पद पर 'अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है ॥ १२९१ ॥

भक्ति पूर्वक ठाकुरजी को दण्डवत् करने वाला सैंकड़ों मन्वन्तर एवं रज के कणों की संख्या जितने वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है ॥ १२९२ ॥

कार्तिक में जो भगवान के सम्मुख पदों को गाता हो बजाता हो और नाचता हो उसे अक्षय फल प्राप्त होता है । ॥ १२९३ ॥

कपिला या कैसी भी गाय के घी को मिलाकर कार्तिक में भगवान के आगे चरु (हवि) का हवन करता है वह मुक्त हो जाता है ॥ १२९४ ॥

जो ठाकुरजी के अगर कपूर की जोति जगाता है, उसका फिर युग के अन्त में भी जन्म नहीं होता है ॥ १२९५ ॥

बहुवर्तिसमायुक्तं ज्वलन्तं केशवोपरि।
कुर्यादारात्रिकं यस्तु कल्पकोटिद्दिवं वसेत् ॥ १२९६ ॥

कृत्वा कोटिसहस्राणि पापानि सुबहून्यपि।
निमिषार्द्धेन दीपस्य विलयं यान्ति कार्तिके ॥ १२९७ ॥

पितृपक्षेऽन्नदानेन ज्येष्ठाषाढ़े च वारिणा।
कार्तिके तत्फलं तेषां परदीपप्रबोधने ॥ १२९८ ॥

बोधनात् परदीपस्य वैष्णवानां च सेवनात्।
कार्तिके फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ १२९९ ॥

शृणु दीपस्य माहात्म्यं कार्तिके केशवप्रिये।
दीपदानेन विप्रेन्द्र न पुनर्जायते भुवि ॥ १३०० ॥

बहुत सी बत्तियों को जलाकर जो कार्तिक में भगवान की आरती उतारता है वह करोड़ों कल्पों तक स्वर्ग में रहता है ॥ १२९६ ॥

हजारों करोड़ों अर्थात् बहुत से पाप भी भगवान के आगे दीपक जलाने पर आधे पल में समाप्त हो जाते हैं ॥ १२९७ ॥

पितृपक्ष (आश्विनकृष्णा) में अन्नदान से ज्येष्ठ आषाढ़ में प्याऊ लगाने से जो फल मिलता है वह—कार्तिक में दूसरे के दीपक को जलाने मात्र से मिल जाता है ॥ १२९८ ॥

कार्तिक में वैष्णवों की सेवा और दूसरे के दीपक जलाने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के समान फल प्राप्त हो जाता है ॥ १२९९ ॥

हरि प्रिय कार्तिक मास में दीप दान से फिर पृथ्वी पर जन्म नहीं होता। दीप दान का बड़ा महत्व है ॥ १३०० ॥

मा मूढ गच्छ मथुरां मा प्रयागं तथार्वुदम् ।
दीपदानेन देवस्य सर्वं फलमवाप्स्यसि ॥ १३०१ ॥
तथैव सर्वपितृणामाशंसा जायते सदा ।
भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तः सुतो भुवि ।
कार्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम् ॥ १३०२ ॥
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः ।
ज्वल्यते मुनिशार्दूल अश्वमेधैस्तु तस्य किम् ॥ १३०३ ॥
तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम् ।
दीपदानं कृतं येन कार्तिके केशवाग्रतः ॥ १३०४ ॥
सरोरुहाणि तुलसी मालती मुनिपुष्पकम् ।
कार्तिके दीपदानं च सर्वदा केशवप्रियम् ॥ १३०५ ॥

यदि कार्तिकमें भगवान की सेवा की जाय तो आबू प्रयाग मथुरा आदि की यात्रा का फल वहाँ ही मिल सकता है। ॥ १३०१ ॥

सभी पितर यह आशा करते हैं कि हमारे कुल में कोई पितृ-भक्त ऐसा पुत्र पैदा हो जो कार्तिक में दीप-दान द्वारा भगवान को सन्तुष्ट कर दे ॥ १३०२ ॥

घी अथवा तिलों के तेल से जिसने भगवान के दीप दान किया उसे अश्वमेधादि यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं। ॥ १३०३ ॥

जिसने कार्तिक में भगवान के दीप दान किया है, उसने समस्त यज्ञ और तीर्थों का अवगाहन कर लिया ॥ १३०४ ॥

कमल, तुलसी, मालती, अगस्त्य के पुष्प और कार्तिक में दीप दान ये भगवान को सर्वदा प्रिय हैं ॥ १३०५ ॥

फलानि सुमनोज्ञानि विचित्रान्नानि कार्तिके ।
दयितानि हरेर्विप्र क्षीरंदधिघृतं मधु ।
मालती तुलसी पद्मं केतकी मुनिपुष्पकम् ॥ १३०६ ॥
कदम्बकुसुमं लक्ष्मी कौस्तुभं केशवप्रियम् ॥ १३०७ ॥
मालती-मल्लिकामालाभीषद्विकसितां हरेः ।
दत्त्वा शिरसि विप्रेन्द्र वाजपेयायुतं लभेत् ॥ १३०८ ॥
कार्तिके केतकीपुष्पं दत्तं येन कलौ हरेः ।
दीपदानेन, देवर्षे तारितं स्वकुलायुतम् ॥ १३०९ ॥
मुनिपुष्पकृतां मालां दृष्ट्वा कंठे विलम्बिताम् ।
प्रीतो भवति दैत्यारिर्दशजन्मनि नारद ॥ १३१० ॥

सुन्दर फल, अन्न, दूध, दही, घृत और मधु ये सब कार्तिक में भगवान को विशेष प्रिय लगते हैं ॥ १३०६ ॥

मालती, तुलसी, पद्म, केतकी, अगस्त्य, कदम्ब के पुष्प लक्ष्मी और कौस्तुभ ये भगवान को बहुत प्रिय हैं ॥ १३०७ ॥

मालती और मल्लिका की कलियों की माला भगवान के अर्पित करने से हे विप्रेन्द्र ! दश हजार वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥ १३०८ ॥

हे देवर्षे ! कार्तिक में जिसने भगवान के केतकी के पुष्प और दीप दान किया उसने अपने हजारों कुलों को तार दिया ॥ १३०९ ॥

अगस्त्य के पुष्पों की लम्बी माला को अपने गले में पहनी हुई देखकर, हे नारद ! भक्त पर भगवान दस जन्मों तक प्रसन्न होते हैं ॥ १३१० ॥

अगस्त्यवृक्षसम्भूतैः कुसुमैरसितैः सितैः ।
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं सम्प्राप्तं परमं पदम् ॥ १३११ ॥

श्रूयते चात्र पितृभिर्गाथा गीता पुरा द्विजाः ।
अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मतिशीलिनः ॥ १३१२ ॥

सम्प्राप्य कार्तिकं मासं दयितं माधवस्य च ।
दीपं दास्यन्ति पुण्यं वा गयायां पिण्डमादरात् ॥ १३१३ ॥

राहुग्रस्ते दिनकरे सन्निहत्यां कुरुक्षितौ ।
स्नानेन तु ददाति यत् केशवः केलिवर्द्धनः ॥ १३१४ ॥

गृहे चायतने वापि दद्याद्दीपं तु कार्तिके ।
पुरतो वासुदेवस्य महाफलविधायकम् ॥ १३१५ ॥

अगस्त्य वृक्ष के सफेद और रंगीन पुष्पों से जो भगवान की पूजा करते हैं, उन्हें मानो परम पद प्राप्त हो गया।। १३११ ।।

इस सम्बन्ध में प्राचीन काल में पितरों द्वारा गाई हुई एक कथा सुनी जाती है, पितरों ने कहा था—हमारे कुल में कोई सन्मति वाले ऐसे व्यक्ति पैदा होंगे जो कार्तिक में माधव को प्रिय दीप दान और गया में आदर से पिण्ड दान करेंगे। ।। १३१२–१३१३ ।।

अमावस्या के सूर्यग्रहण पर्व पर कुरुक्षेत्र में स्नान करने से जो फल मिलता है वह कार्तिक में भगवान के दीप दान करने से अपने घर पर ही प्राप्त हो जाता है ।। १३१४–१५ ।।

द्यूतव्याजेन कार्तिके हरिमन्दिरद्योतनात् ।
प्राप्तः पापीयसां स्वर्गः किं पुनः श्रद्धयैधिनाम् ॥ १३१६ ॥
सर्वानुष्ठानहीनोऽपि सर्वपापरतोऽपि सन् ।
पूयते नाऽत्र सन्देहो दीपं दत्वातु कार्तिके ॥ १३१७ ॥
न तस्य पातकं किंचित् त्रिषु लोकेषु नारद ।
यत्र शोधयते दीपं कार्तिके त्वग्रतो हरेः ॥ १३१८ ॥
यः कुर्यात्कार्तिके मासि कर्पूरेण तु दीपकम् ।
द्वादश्यां वै विशेषेण तस्य पुण्यं वदामि ते ॥ १३१९ ॥
कुले तस्य प्रसूता ये ये भविष्यन्ति नारद ।
समतीताश्च ये केचित्तेषां संख्या न विद्यते ॥ १३२० ॥

छल कपट से भी यदि कोई व्यक्ति कार्तिक में भगवान् के मंदिर में दीप लगाते हैं तो उन पापियों को भी स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है फिर श्रद्धालु व्यक्तियों का तो कहना ही क्या ? ॥ १३१६ ॥

कोई भी धर्मानुष्ठान न करे, पाप कर्मों में सदा रत रहे वह भी यदि कार्तिक में ठाकुरजी के दीप दान करे तो पवित्र हो जाता है ॥ १३१७ ॥

हे नारद ! उस व्यक्ति के तीनों लोकों में पातक नहीं जो कार्तिक में भगवान के आगे दीपक जलाता है ॥ १३१८ ॥

हे नारद ! जो कार्तिक मास में द्वादशी को भगवान के समक्ष कपूर का दीपक जलाते हैं, उनका पुण्य सुनाता हूँ—उनके कुल में विद्यमान भावी और अतीत जितने भी हैं जिनकी संख्या करना भी कठिन है,वे सब स्वेच्छानुसार बहुत समय तक देवलोक

क्रीडित्वा सुचिरं कालं देवलोके यदृच्छया ।
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति प्रसादाच्छ्रीहरेर्ध्रुवम् ॥ १३२१ ॥
विष्णोर्विमानं दीपाढ्यं सं बाह्याभ्यन्तरं मुने ।
दीपोद्यानकरो यस्तु तेनाप्तं परमं पदम् ॥ १३२२ ॥
दीपको ज्वलते यस्य विमाने कलशोपरि ।
तदा तदा मुनिश्रेष्ठ द्रवते पाप संचयः ॥ १३२३ ॥
यः करोति हरेर्दीपं मूलेनापि महामुने ।
शिखरोपरि मध्ये च कुलानां तारयेच्छतम् ॥१३२४ ॥
यो ददाति द्विजातिभ्यो महीमुदधिमेखलाम् ।
हरे शिखरदीपस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ १३२५ ॥

में क्रीडा करके भगवत्कृपा से निश्चय मुक्त हो जाते हैं।
॥ १३१९, २०, २१ ॥

हे मुने ! दीपों से सुसज्जित भगवान् के विमान को जो भ्रमण कराता है,वह परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥ १३२२ ॥

जब विमान में कलश के ऊपर जो दीपक जलाता है उसका उसी समय पाप संचय द्रवीभूत होकर बह जाता है।
॥ १३२३ ॥

जो भगवन् मन्दिर के शिखर के मूल मध्य और ऊपर दीप जलाते हैं वे अपने सैंकड़ों कुलों को तार देते हैं ॥ १३२४ ॥

भगवन् मन्दिर के शिखर पर दीपक लगाने से जो फल मिलता है वह ब्राह्मणों को समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी दान करने पर भी नहीं ॥ १३२५ ॥

विमानज्योतिषा दीपं ये निरीक्षन्ति कार्तिके ।
केशवस्य महाभक्त्या कुले तेषां न नारकी ॥ १३२६ ॥

यो ददाति गवां कोटिं सवत्सां क्षीरसंयुताम् ।
हरेः शिखरदीपस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ १३२७ ॥

सर्वस्व दानं कुरुते वैष्णवानां महामुने ।
केशवोपरिदीपस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ १३२८ ॥

दीपपंक्तेश्च रचना सबाह्याभ्यन्तरं हरेः ।
विष्णोर्विमाने कुरुते स नरः शंखचक्रधृक् ॥ १३२९ ॥

दिवि देवा निरीक्षन्ते विष्णुदीपप्रदं नरम् ।
कदा भविष्यत्यस्माकं संगमः पूर्वकर्मणा ॥ १३३० ॥

जो कार्तिक में भगवान के विमान की ज्योति के साथ भक्ति पूर्वक दीपक को देखते हैं उनके कुल का कोई भी नरक में नहीं जाता ॥ १३२६ ॥

बछड़े की माँ एवं दुधारू करोड़ों गायों के दान भी,शिखर दीप की एक कला के समान नहीं हो सकते ॥ १३२७ ॥

शिखर दीप की महिमा वैष्णवों को सर्वस्व दान करने से बढ़ कर है ॥ १३२८ ॥

भगवानके विमान को बाहर भीतर दीपक की पंक्तियों से जो सजाता है वह शंखचक्रधारी विष्णु के समान समझा जाय । देवता देवलोक में ऐसी प्रतीक्षा करते रहते हैं—हमारे पूर्व कर्मों से भगवान के दीपक लगाने वाले सज्जन से हमारा कब समागम होगा ॥ १३२६, ३० ॥

विष्णुरहस्ये—नारद उवाच—

भगवन् श्रोतुमिच्छामि व्रतानां व्रतमुत्तमम्।
विधिं मासोपवासस्य फलं चास्य यथोदितम् ॥ १३३१ ॥

यथा विधा नरैः कार्या व्रतचर्या यथा भवेत्।
आरंभ्यते यथा पूर्वं समाप्यं हि यथाविधि ॥
यावत्कल्पन्ति कर्त्तव्यं तावद्ब्रूहि पितामह ॥ १३३२ ॥

ब्रह्मोवाच—

साधु नारद साध्वेतत्त्वया पृष्टं तपोधन।
देहिनां नितरां श्रेष्ठं तच्छृणुष्व ब्रवीमि ते ॥ १३३३ ॥

सुराणां च यथा विष्णुः रूपाणां च यथा रविः।
मेरुः शिखरिणां यद्वद् वैनतेयस्तु पक्षिणाम् ॥ १३३४ ॥

विष्णु रहस्य में नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा—समस्त व्रतों में उत्तम व्रत कौनसा है। मासोपवास का फल विधान में सुनना चाहता हूँ, कैसे मनुष्य उसे कर सकते हैं, उसकी चर्या और आरम्भ तथा समाप्ति का विधान एवं जितने कर्तव्य हों उनसब को सुनना चाहता हूँ ॥ १३३१, ३२ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—हे तपोधन ! नारद ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया, जो प्राणियों के लिये परम श्रेष्ठ साधन है वह मैं तुमको सुनाता हूँ। जिस प्रकार देवों में विष्णु, रूपों (तेजों) में सूर्य, पर्वतों में सुमेरु, पक्षियों में गरुड़, तीर्थों में गङ्गा, प्रजा

तीर्थानां तु यथा गंगा प्रजानां च यथा वणिक् ।
श्रेष्ठं सर्वव्रतानां च तद्वन्मासोपवासनम् ॥ १३३५ ॥

सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
सर्वदानोद्भवं वापि लभेन्मासोपवास–कृत् ॥ १३३६ ॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्विधिवद् भूरिदक्षिणैः ।
न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलंघनात् ॥ १३३७ ॥

तेन जप्तं हुतं दत्तं तपस्तप्तं सुधाकृता ।
यः करोति विधानेन व्रतं मासोपवासनम् ॥ १३३८ ॥

प्रविश्य वैष्णवं यज्ञं तत्राभ्यर्च्य जनार्द्दनम् ।
गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनम् ॥ १३३९ ॥

जनों में वणिक् (साहूकार), उसी प्रकार समस्त व्रतों में मासोपवास श्रेष्ठ है ॥ १३३३, ३४, ३५ ॥

जो फल समस्त तीर्थ, व्रत और दानों से मिलता है वह मासोपवास से मिल जाता है ॥ १३३६ ॥

विधिवत् भूरि दक्षिणा वाले अग्निष्टोमादि यज्ञों से भी उतना फल नहीं मिलता जितना कि मासोपवास से मिलता है । ॥ १३३७ ॥

जिसने विधिवत् मासोपवास किया हो उसे समझ लो जप, तप, यज्ञ, दान सब कुछ कर लिया ॥ १३३८ ॥

वैष्णवी दीक्षा लेकर जनार्दन प्रभु की पूजा करने के अनन्तर गुरुदेव की आज्ञा लेकर मासोपवास करे ॥ १३३९ ॥

वैष्णवानि यथोक्तानि कृत्वा सर्वव्रतानि तु।
द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो मासमुपावसेत् ॥ १३४० ॥

अतिकृच्छ्रम् च पाराकं कृत्वा चान्द्रायणं ततः।
आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥ १३४१ ॥

व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद् यावत्रिंशद्दिनानि तु।
वासुदेवं समुद्दीश्य कार्तिकं सकलं नरः ॥ १३४२ ॥

मासं चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलभाग्भवेत्।
अच्युतस्यालये भक्त्या त्रिकालं कुसुमैः शुभैः ॥ १३४४ ॥

ह्रीवेरैर्मालतीपद्मैः कमलैस्तु सुगन्धिभिः।
कुंकुमोशीरकर्पूरैर्विलिप्य वरचन्दनैः ॥ १३४४ ॥

नैवेद्यं धूपदीपाद्यैरर्चयेत्तु जनार्दनम्।
मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद् गरुडध्वजम् ॥ १३४५ ॥

द्वादशी आदि जितने भी वैष्णव धर्म में व्रत हैं उन सबको करके मासोपवास करे ॥ १३४० ॥

अतिकृच्छ्र, पाराक, चान्द्रायण व्रत करके आश्विन शुक्ला एकादशी को एक महीने के लिये मासोपवास व्रत का ग्रहण करे, और सम्पूर्ण कार्तिक मास तक भगवान की आराधना करे, ॥ १३४१ ॥

जो मासोपवास करता है वह मुक्त हो जाता है, ह्रीवेर, मालती, पद्म, कमल के सुन्दर सुगन्धित पुष्प, कुंकुम, खास, कपूर चन्दन आदि अर्पण करके धूप दीप नैवेद्य द्वारा मन वचन कर्म से भगवान की पूजा करे ॥ १३४३, ४४, ४५ ॥

कुर्यान्नरस्त्रिषवणं वृहद्भक्तिर्जितेन्द्रियः।
तान्नामेव सदालापं विष्णोः कुर्यादहर्निशम् ॥ १३४६ ॥

भक्त्या विष्णोः स्तुतिर्वाच्या मृषावादं विवर्जयेत्।
सर्वदैवदयायुक्तः शान्तवृत्तिरहिंसकः ॥ १३४७ ॥

सुप्तो वासनसंस्थो वा वासुदेवं प्रकीर्तयेत्।
स्मृत्यालोकसुगन्धादि स्वाद्वन्नापरिकीर्तनम् ॥ १३४८ ॥

अन्नस्य वर्जयेत्सर्वं ग्रासानां चाभिकांक्षया।
गात्राभ्यंगं शिरोऽभ्यंगं ताम्बूलं च विलेपनम् ॥ १३४९ ॥

कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तं विधिना नरः।
नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्चयेत् ॥ १३५० ॥

त्रिकाल स्नान, और जितेन्द्रियता पूर्वक अहर्निश भगवान के नामों का ही आलाप (उच्चारण) करता रहे, ॥ १३४६ ॥

झूंठ न बोले, हिंसा न करे, दया रखे और शान्त वृत्ति से भगवान की स्तुति करता रहे ॥ १३४७ ॥

आसन पर बैठा हुआ या लेटा हुआ भी भगवान का ही नाम संकीर्तन करे, अन्न, रूप, गन्ध आदि सांसारिक विषयों की स्मृति भी न करे ॥ १३४८ ॥

पान, सुगन्धित तेल का लेपना, गात्राभ्यंग, शिरोऽभ्यंग (मालिश आदि) न करे, अन्न (भोजन) के ग्रासों की अभिकांक्षा न रक्खें ॥ १३४९ ॥

चाहे नर हो या विधवा नारी, मासोपवास करके भगवान की आराधना करे ॥ १३५० ॥

व्रतस्थो न स्पृशेत्किचिद्विकर्मस्थान्न चालयेत् ।
देवतायतने तिष्ठन् गृहस्थस्तु चरेद्व्रतम् ।। १३५१ ।।
न्युनाधिकमेवं तु व्रतं त्रिंशद्दिनैरिदम् ।
देशकालानुरूपोऽपि राधाकृष्णानुवृत्तये ।। १३५२ ।।
माथुरेऽतिविशेषकः पाद्मे चोक्तो हि कार्तिके ।
मथुरायां सकृदपि श्रीदामोदरपूजनात् ।। १३५३ ।।
मन्त्र-द्रव्यविहीनं च विधिहीनं च पूजनम् ।
मन्यते कार्तिके देवो मथुरायां सदार्चनम् ।। १३५४ ।।
यस्य पापस्य युञ्जीत मरणान्ता हि निष्कृतिः ।
तच्छुद्धयर्थमिदं प्रोक्तं प्रायश्चितं सुनिश्चितम् ।। १३५५ ।।
किं यज्ञैः किं तपोभिश्च तीर्थैरन्यैश्च सेवितैः ।
कार्तिके मथुरायां चेदर्चितो राधिकाप्रियः ।। १३५६ ।।

व्रत करने वाला विरक्त दूसरे का स्पर्श न करे। गृहस्थ देव मन्दिर में बैठ कर व्रत करे ।। १३५१ ।।

देशकाल के अनुसार श्रीराधाकृष्ण की अनुवृत्ति (निरंतर स्मृति) के लिये कम से कम तीस दिन व्रत करे ।। १३५२ ।।

पद्मपुराण के कार्तिक महात्म्य में मथुरा मण्डल में रह कर भगवत् पूजन करने का विशेष महत्व है, एक बार भी मथुरा में रहकर दामोदर भगवान की पूजा कर ले, चाहे वह मन्त्र द्रव्य विधि विहीन भी क्यों न हो भगवान उससे विशेष प्रसन्न होते हैं ।। १३५३, ५४, ५५ ।।

कार्तिक मास में मथुरा में जो श्रीराधिका कान्त की पूजा करता है उसे यज्ञ तीर्थाटन और अन्याऽन्य तीर्थों की आवश्यकता नहीं ।। १३५६ ।।

कार्तिके च मथुरायां परमावधिरिष्यते ।
तत्रापि तु विशेषेण राधिका कुण्ड एव सा ॥ १६५७ ॥

राधादामोदरसेवा पाद्मे स्नानादिकं तथा ।
यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं यथा॥१३५८॥

सर्वगोपीषु सैवैका कृष्णस्यात्यन्तवल्लभा ।
गोवर्द्धनगिरौरम्ये राधाकुण्डं प्रियं हरेः ॥ १३५९ ॥

कार्तिके बहुलाष्टम्यां तत्र स्नात्वा हरेः प्रियः ।
एवंम्प्रभृतौ कृत्यं तु व्यवस्थाप्य विशेषतः ॥ १३६० ॥

आश्विने शुक्लपक्षस्यैकादशीं समुपोष्य च ।
मासव्रतमुपक्रमेत् स्वसम्प्रदायरीतितः ॥ १३६१ ॥

कार्तिक में मथुरा में आराधना करने की विशेषता है, उससे भी अधिक राधाकुण्ड का वैशिष्ट्य है ॥ १३५७ ॥

कार्तिक में राधाकुण्ड के स्नान और उस पर राधादामोदर की सेवा का पद्मपुराण में विशेष महत्व बतलाया है। ॥ १३५८ ॥

जिस प्रकार समस्त गोपियों में श्रीकृष्ण को श्रीराधा विशेष प्रिय हैं, उसी प्रकार गोवर्धन में राधाकुण्ड प्रिय है। ॥ १३५९ ॥

कार्तिक की बहुलाष्टमी को राधाकुण्ड में स्नान करके विशेष आराधना करने वाले पर प्रभु कृपा कर देते हैं ॥१३६०॥

आश्विनशुक्ला एकादशी को उपवास करके स्वसम्प्रदाय की रीति से मास व्रत को आरम्भ करे ॥ १३६१ ॥

तथा पाद्मे—

आश्विने शुक्लपक्षस्य प्रारम्भो हरिवासरे।
वैष्णवस्य व्रतस्य च कार्तिके कृष्णवल्लभः ॥ १३६२ ॥

विष्णुरहस्ये—

आश्विनश्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्रिंशद्दिनानि तु ॥ १३६३ ॥
पश्चिमे तत्र तूत्थितो निङ्यामे कृष्णराधिके।
ध्यात्वा नत्वाऽरुणोदये स्नातोऽर्घ्यमर्पयेत्तयोः ॥ १३६४ ॥

अर्धमन्त्र: काशीखण्डे—

नित्ये नैमित्तिके कृत्स्ने कार्तिके पापनाशने।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥
गृहमागत्य राधिकाकृष्णयुगलमर्हयेत् ॥ १३६५ ॥

इस प्रकार का विधान पद्मपुराण में है ॥ १३६२ ॥

यही आशय विष्णु रहस्य में व्यक्त किया गया है—आश्विन शुक्ला ११ को तीस दिनों का व्रत आरम्भ करे, रात्रि के पिछले प्रहर में उठकर राधा कृष्ण का ध्यान और नमस्कार करके स्नान करे फिर उनको अर्घ्य प्रदान करे ॥ १३६३, ६४ ॥

काशी खण्ड में दिये हुये अर्घ्य मन्त्र का यह आशय है—कार्तिक में नित्य नैमित्तिक सभी कर्म पापों के नाशक हैं, अतः हे हरे! मेरे द्वारा समर्पित इस अर्घ्य को श्रीराधा सहित आप अङ्गीकार करें। फिर घर में आकर युगल किशोर श्रीराधाकृष्ण की अर्चा करें ॥ १३६५ ॥

तथा पाद्मे—

ततः प्रियतमा विष्णो राधिका गोपिकासु च।
कार्तिके पूजनीया च श्रीदामोदरसन्निधौ ॥ १३६६ ॥

राधिकाप्रतिमां विप्र पूजयेत्कार्तिके हि यः।
तस्य तुष्यति तत्प्रीत्यै कृष्णो दामोदरो हरिः ॥ १३६७ ॥

वृन्दावनेऽऽधिपत्यं च दत्तं तस्याः प्रतुष्यता।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने ॥ १३६८ ॥

ततो धौतांघ्रिहस्तको न्यासद्वयं विधाय च।
आदौ निजकरौ सम्यक् सुगन्धाढ्यैः प्रलिप्य च॥१३६९ ॥

प्रार्थनापूर्वकं शनै राधां देवीं प्रबोधयेत्।
द्वादशाहं हरेः पूर्वं राधाप्रबोधनं मतम् ॥ १३७० ॥

पद्मपुराण में कहा है—समस्त व्रजाङ्गनाओं में श्रीरधिका जी श्रीकृष्ण को विशेष प्रिय हैं अतः कार्तिक में श्रीकृष्ण की सन्निधि में उन (श्रीराधा जी) की पूजा करे ।। १३६६ ।।

हे विप्र ! जो कार्तिक में श्रीराधा जी की प्रतिमा को पूजते हैं उनपर भगवान् श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न होते हैं।। १३६७ ।।

भगवान श्रीकृष्ण ने राधाजी को वृन्दावन का आधिपत्य दिया है, अन्यत्र श्रीदेवी का आधिपत्य है। अरुणोदय के समय हाथ पैर धोकर दोनों मन्त्रों का न्यास करे, फिर हाथों को सुगन्धित द्रव्यों से लिप्त करके प्रार्थना पूर्वक श्रीराधाजी को जगावे। भगवान के प्रवोध का० शु० ११ से द्वादश दिन पहले राधाजी को जगावे ।। १३६९, ७० ।।

लोकशास्त्र प्रकारेण पाद्मीये कार्तिके तथा।
यथा पतिव्रता नारी ब्राह्मे काले प्रबुध्यते॥
पूर्वं भर्तुस्तथा लक्ष्मीः प्राग्घरेर्द्वादशाहकम्॥ १३७१॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राधिके त्यज निद्रां प्रियोत्तमे।
रासेश्वरि ! महारम्ये ! श्रीदामोदरवल्लभे !॥ १३७२॥

प्रबुद्धायै श्रियै दद्यात्तत्समयोचितं वसु।
मुखप्रक्षालनार्थाय सुगन्धसलिलादिकम्॥ १३७३॥

मुखसम्मार्ज्जनार्थाय सूक्ष्मं वस्त्रं निवेदयेत्।
राधानिदेशमासाद्य भावनया तदीरितः॥ १३७४॥

कृष्णं मृद्वंगमर्द्दनैः शनैः शनैः प्रबोधयेत्।
राधाकृष्णौ निषेवयेत्तत ऐतिह्यरीतितः॥ १३७५॥

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री पति से पहले ब्राह्म मुहुर्त में उठती है उसी प्रकार श्रीराधा जी श्यामसुन्दर से द्वादश दिन पहले प्रबुद्ध हो जाती है॥ १३७१॥

श्रीप्रियाजी को जगाने के समय इस प्रकार प्रार्थना करे–

हे श्रीकिशोरी जू ! हे श्रीरासेश्वरी जू ! हे दामोदर वल्लभे ! निद्रात्याग कर उठियें॥ १३७२॥

जागने पर मुखप्रक्षालन के लिये सुगन्धित जलादि और समयोचित भोग वस्तु अर्पण करें॥ १३७३॥

झीने वस्त्र से मुख का मार्जन करें। भावना द्वारा श्री राधिकाजी का निर्देश प्राप्त करके श्रीकृष्ण को उनके कोमल अङ्गों का शनैः शनैः मर्दन करके जगावे और ऐतिह्य (स्वसम्प्रदाय की रीति) के अनुसार श्रीराधा कृष्ण की आराधना पूजा सेवा करे॥ १३७४, ७५॥

राधादामोदरावेवं सम्पूज्य प्रातरेव हि ।
राधादामोदराष्टकं पठेद्गद्गदया गिरा ॥ १३७६ ॥

तथा स्कान्दे—

कार्तिके पश्चिमे यामे स्तवगानं करोति यः ।
वसते श्वेतद्वीपे तु पितृभिः सह नारद ॥
तत्र राधास्तवस्त्वादौ ब्रह्माण्डे श्रूयते तथा ॥ १३७७ ॥

श्रीराधायै नमः । नारद उवाच—

किं तद् गुह्यतरं ब्रह्मन् यच्चिन्त्यमखिलेश्वरैः ।
तन्मे ब्रूहि सुतत्त्वज्ञ योगेश मयि वत्सल ॥ १३७८ ॥

ब्रह्मोवाच—

शृणु गुह्यतमं तात नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
सर्वैराराधिता देवै राधा वृन्दावने वने ॥ १३७९ ॥

इस प्रकार प्रातःकाल श्रीराधा दामोदर की मङ्गल-सेवा करके गद्-गद् होकर श्रीराधा दामोदर का अष्टक पढ़ें । ॥ १३७६ ॥

स्कन्दपुराण में कहा है—हे नारद ! जो कार्तिक की रात्री के अन्त में श्रीराधा कृष्ण के स्तव का गान करता है वह अपने पितरों के साथ श्वेत द्वीप में निवास करता है । वह राधा स्तव ब्रह्माण्ड पुराण में इस प्रकार का है ॥ १३७७ ॥

[श्रीराधा जी को नमस्कार करके श्रीनारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा—हे ब्रह्मन् ! हे तत्वज्ञ ! जो अखिलेश्वरों द्वारा चिन्तन किया जाता है वह राधा स्तव मुझको कृपया बतलाइये । ब्रह्मा जी ने कहा—हे तात ! मैंने श्रीनारायण के मुख से सुना है सभी देवों को वृन्दावन में श्रीराधा जी की आराधना करना उचित है ॥ १३७८, ७९ ॥

राधाविश्लेषतः कृष्णो ह्येकदाप्रेमविह्वलः ।
राधामन्त्रं जपन् ध्यायन् राधां सर्वत्र पश्यति ॥ १३८० ॥

ॐ अस्य राधास्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप्छन्दः
श्रीराधाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥
गृहे राधा वने राधा पृष्ठे राधा पुरः स्थिता ।
यत्र-यत्र स्थिता राधा राधैवाराध्यते मया ॥ १३८१ ॥

जिह्वा राधा स्तुतौ राधा नेत्रे राधा हृदि स्थिता ।
सर्वांगव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया ॥ १३८२ ॥

पूजा राधा जपेराधा राधिकाद्याभिवन्दने ।
श्रुतौ राधा शिरो राधा राधैवाराध्यते मया ॥ १३८३ ॥

किसी एक समय श्रीराधा जी के वियोग में प्रेम विह्वल श्रीकृष्ण राधा मन्त्र को जपते हुए सर्वत्र श्रीराधा ही राधा का अनुभव करने लगे ॥ १३८० ॥

श्रीराधा स्तोत्र मन्त्र का ब्रह्माऋषि और अनुष्टप् छन्द है। श्रीराधा जी को प्रसन्न करने के लिये इस स्तोत्र का उपयोग किया जाता है। उस राधा स्तोत्र का भाव इस प्रकार का है—श्रीकृष्ण कहते हैं—घर में, वन में, आगे, पीछे, जहाँ तहाँ सर्वत्र श्रीराधा ही राधा दिखाई देती है। उसी श्रीराधा की मैं उपासना करता हूँ ॥ १३८१ ॥

जिह्वा नेत्र, हृदय, आदि मेरे सभी अङ्गों में श्रीराधा व्याप्त हैं, मैं उन्हीं की आराधना करता हूँ ॥ १३८२ ॥

मैं उन्हीं की पूजा वन्दना करता हूँ। मेरे कान और मस्तक पर भी श्रीराधा विराज रही हैं ॥ १३८३ ॥

गाने राधा गुणे राधा राधिका भोजने गतौ ।
रात्रौ राधा दिवा राधा राधैवाराध्यते मया ।। १३८४ ।।

माधुर्ये मधुरा राधा महत्वे राधिका गुरुः ।
सौन्दर्ये सुन्दरी राधा राधैवाराध्यते मया ।। १३८५ ।।

राधा पद्मानना पद्मा पद्मोद्भवसमुद्भवा ।
पाद्मे विवेचिता राधा राधैवाराध्यते मया ।। १३८६ ।।

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मिको ध्रुवम् ।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया ।। १३८७ ।।

जिह्वाग्रे राधिकानाम नेत्राग्रे राधिकातनुः ।
कृष्णहार्द्दपरा राधा राधैवाराध्यते मया ।। १३८८ ।।

गाते समय, भोजन करते तथा चलते फिरते समय रात और दिन सर्वदा मैं राधा की ही आराधना करता हूँ ।। १३८४ ।।

जो श्रीराधा मधुरता में मधुर महत्ता में गुरु और सुन्दरता में सुन्दर हैं, उन्हीं की मैं आराधना करता हूँ ।। १३८५

पद्मानना (कमलमुखी) ब्रह्मा की जननी पद्मपुराण में जिनका विशेष उल्लेख है उन्हीं राधाजी की मैं आराधना करता हूँ ।। १३८६ ।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—श्रीराधा मेरी आत्मा है, और मैं श्रीराधा की आत्मा हूँ, उन्हीं श्रीवृन्दावनेश्वरी राधा की मैं आराधना करता हूँ ।। १३८७ ।।

मेरी जीभ पर सदा राधा का नाम और नेत्रों के सामने श्रीराधा की मूर्ति रहती है, राधा मेरा हृदय है, मैं उन्हीं राधा की आराधना करता हूँ ।। १३८८ ।।

कर्णाग्रे राधिकाकीर्त्तिर्मनोऽग्रे राधिका मनुः।
कृष्ण-प्रेममयी राधा राधैवाराध्यते मया ॥ १३८९ ॥

राधा राससुधासिन्धु राधा सौभाग्यमंजरी।
राधा व्रजाङ्गनामुख्या राधैवाराध्यते मया ॥ १३९० ॥

कृष्णेन पठितं स्तोत्रं श्रीराधाप्रीतये परम्।
यः पठेत् प्रयतो नित्यं राधाकृष्णप्रियो भवेत् ॥ १३९१ ॥

॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे श्रीकृष्णोक्तः श्रीराधास्तवः ॥

सुदर्शन उवाच—

ॐ नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै
नमस्ते नमस्ते मुकुन्द प्रियायै।

श्रीराधा प्रेममयी हैं मेरे कानों में उनकी कीर्ति के शब्द और मन में श्रीराधा का मन्त्र रहता है, उन्हीं राधा की मैं आराधना करता हूं ॥ १३८९ ॥

रास रूपी अमृत की समुद्र, सौभाग्य मञ्जरी एवं व्रजाङ्गनाओं में मुख्य श्रीराधा की मैं आराधना करता हूँ ॥ १३९० ॥

श्रीकृष्ण द्वारा पढ़े हुए इस स्तोत्र के पाठ से श्रीराधाजी बड़ी प्रसन्न होती हैं, जो नित्य इसका पाठ करता है वह श्रीराधाकृष्ण का प्रिय हो जाता है ॥ १३९१ ॥

॥ यह ब्रह्माण्ड पुराणोक्त श्रीराधा स्तव पूर्ण हुआ ॥

यहाँ से आगे श्रीनिम्बार्काचार्य विरचित श्रीराधा स्तव का भाव प्रकट किया जाता है—

श्रीसुदर्शन ने कहा—मुकुन्द प्रिया परालक्ष्मी श्रीराधाजी

सदानन्दरूपे ! प्रसीद त्वमन्तः-
प्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्द्धम् ॥ १३९२ ॥

स्ववासोपहारं यशोदासुतं वा-
स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम् ।
स्वदाम्नोदरे या बबन्धाऽशुनीव्या
प्रपद्ये तु दामोदरप्रेयसीं ताम् ॥ १३९३ ॥

दुराराध्यमाराध्यकृष्णं वशे तं
महाप्रेमपूरेण राधाऽभिधाऽभूः ।
स्वयं नामकीर्त्या हरौ प्रेम यच्छ
प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम् ॥ १३९४ ॥

मुकुन्दस्त्वया प्रेमडोरेण बद्धः
पतंगो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः ।

को मैं नमस्कार करता हूँ । हे सदानन्द स्वरूपे ! श्रीश्यामसुन्दर के संग मेरे हृदय में प्रकाश करती हुई आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥ १३९२ ॥

जो अपने और अन्य गोपियों के दही एवं वस्त्रों का हरण करनेवाले यशोदानन्दन की आराधना करती हुई अपनी नीबी (कटि वस्त्र की रस्सी) एवं प्रेम रज्जु से शीघ्र ही श्यामसुन्दर को बाँध लेती हैं, उसी दामोदर प्रिया श्रीराधिकाजी की मैं शरण में हूँ ॥ १३९३ ॥

जो प्रेम आराधना द्वारा दुराराध्य श्रीकृष्ण को प्रेम-प्रवाह से वश में कर लेती हैं, वही श्रीराधा अपने नामों के कीर्तन करनेवाले मुझ प्रपन्न को श्रीकृष्ण के चरणों का प्रेमपात्र बनावें ॥ १३९४ ॥

उपक्रीडयन् हार्द्दमेवानुगच्छन्
कृपां वर्तते कारयातो मयीष्टम् ॥ १३८५ ॥
व्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं
मुकुन्देन साकं विधायांकमालम् ।
समामोक्ष्यमाणानुकम्पाकटाक्षैः
श्रियं चिन्तये सच्चिदानन्दरूपाम् ॥ १३८६ ॥
मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्चितांगै-
रहं वेप्यमानां तनुस्वेदबिन्दुम् ।
महाहार्द्द वृष्टया कृपापांगदृष्टया
समालोकयन्तीं कदा मां विचक्षे ॥ १३८७ ॥
यदंकावलोके महालालसौघं
मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः ।

हे श्रीराधे ! आपने प्रेम रूपी रस्सी से पतंग के समान श्रीकृष्ण को बाँध रक्खा है। वे आपके पीछे पीछे फिरते हैं। आपके हार्दिक भावों के अनुसार क्रीड़ा करते हैं। मुझ पर भी आपकी कृपा है, मुझ पर आप ऐसी कृपा करें, मैं आपकी और श्रीश्यामसुन्दर की आराधना करता रहूँ ॥ १३६५ ॥

अपने वृन्दावन धाम में नित्य श्रीमुकुन्द के साथ अंकमाल देकर विहार करती हुई निरन्तर उनकी ओर कृपा कटाक्ष पूर्वक निहारती हुई सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीराधाजी का मैं चिन्तन करता हूँ ॥ १३६६ ॥

श्रीमुकुन्द के अनुराग से जिनकी रोमावली पुलिकत है, सुकोमल विग्रह में स्वेद बिन्दु और कम्पन झलक रहे हैं। हार्दिक अनुराग को वर्षाती हुई, कृपा कटाक्षों से श्यामसुन्दर को देखने वाली श्रीराधाजी का मैं कब दर्शन करूँगा ॥ १३६७ ॥

पदं राधिके ते सदा दर्शयान्त-
हृदि स्वं नमन्तं किरद्रोचिषं माम् ॥ १३९८ ॥
सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्तात्
सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्तात् ।
श्रुतौ राधिकाकीर्त्तिरन्तः स्वभावे
गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे ॥ १३९९ ॥
इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः
पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य ।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि
सखीमूर्त्तयो युग्मसेवानुकूलाः ॥ १४०० ॥
॥ इति श्रीनिम्बार्कोक्तं श्रीराधाष्टकम् ॥

स्वयं ध्यान करने योग्य श्रीश्यामसुन्दर भी जिनके अङ्कावलोकन में महान् लालसा रखते हैं, हे श्रीराधे ! आपको बारम्बार नमन करनेवाले मुझ अकिञ्चन पर अपने तेज के किरणों की वृष्टि कीजिये और मेरे हृदय में अपने चरणकमलों की झलक दिखाइये ।। १३९८ ।।

मेरी जिह्वा पर सदा आपका नाम रहै, आँखों के सामने आपकी छवि रहै, कानों से आपकी कीर्ति का गान सुनता रहूँ और अन्तःकरण में आपके कारुण्यादि गुणों का चिन्तन बना रहै, बस मैं यही चाहता हूँ ।। १३९९ ।।

दामोदर प्रिया श्रीराधिकाजी के इस अष्टक को वे साधक नित्य पढ़ते रहैं जो श्रीकृष्ण के प्रिय धाम वृन्दावन में रहकर युगलकिशोर की सेवा के अनुकूल सखी भाव की आराधना में रत हों ।। १४०० ।।

यह श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा अभिव्यक्त किया हुआ राधिकाष्टक पूर्ण हुआ ।]

सत्यव्रत उवाच—

ॐ नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं
लसत्कुण्डलं गोकुले जायमानम् ।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं
परामृष्टमत्यन्ततो द्रुत्य गोप्या ॥ १४०१ ॥
रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं
कराम्भोजयुग्मेन सातंकनेत्रम् ।
मुहुः श्वासकंपत्रिरेखांककंठ-
स्थितग्रैवदामोदरं भक्तिबद्धम् ॥ १४०२ ॥
इतीदृक् स्वलीलाभिरानन्दकुण्डे
स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेप्सितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥ १४०३ ॥

सत्यव्रत ने श्रीदामोदर भगवान् की स्तुति इस प्रकार की है :—

गोकुल में प्रकट होकर श्रीयशोदा के भय से ऊखल सहित शीघ्र दौड़नेवाले कुण्डल धारण किये हुए सच्चिदानन्द ईश्वर श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४०१ ॥

रुदन करते हुए एवं बारम्बार अपने कर कमलों से युगल नेत्रों के आँसू पूँछनेवाले डर से हिलकियाँ भरने के कारण जिनके कण्ठाभरण हिल रहे हों उन दामोदर तथा प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४०२ ॥

इस प्रकार की निज लीलाओं के आनन्द सरोवर में मज्जन करने से जो निनाद होता है उससे भगवद्भक्तों में यह ख्यात

वरं देव मोक्षं न मोक्षावधिं वा
न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह।
इदं ते वपुर्नाथ गोपालबालं
सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ॥ १४०४ ॥

इदं ते मुखाम्भोजमत्यन्तनीलै-
र्वृतं कुन्तलैः स्निग्धवक्रैश्च गोप्या।
मुहुश्चुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे
मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः ॥ १४०५ ॥

नमो देव दामोदरानन्त विष्णो
प्रसीद प्रभो दुःख जालाब्धिमग्नम्।
कृपादृष्टिवृष्टयाऽतिदीनं बतानु-
गृहाणेश मामद्य मेऽप्यक्षिदृश्यः ॥ १४०६ ॥

हो जाता है कि प्रभु भक्तों के आधीन हैं उन्हीं प्रभु को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ १४०३ ॥

हे प्रभो ! मैं मोक्ष या मोक्षपर्यन्त भुक्ति आदि और कुछ भी आप से वरदान लेना नहीं चाहता, केवल बालगोपाल रूप से आपकी छवि मेरे हृदय में सदा बनी रहै, बस यही चाहता हूँ ॥ १४०४ ॥

नील कुन्तलों से मण्डित तथा श्रीयशोदाजी द्वारा चुम्वित विम्बाफल के समान लाल ओष्ठोंवाला मुख कमल मेरे हृदय में सदा खिला रहै, लाखों करोड़ों लाभों से भी यही अधिक लाभ है ॥ १४०५ ॥

हे दामोदर ! विष्णो ! अनन्त ! दुःख जाल में डूबे हुए मुझ अति दीन पर कृपा दृष्टि की वर्षा करके दर्शन दें और अनुकम्पा करें ॥ १४०६ ॥

कुवेरात्मजौ बद्धमूर्त्यैव यद्वत्
त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ
न मोक्षाग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥ १४०७ ॥

नमस्ते सुदाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने
त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने।
नमो राधिकायै त्वदीयप्रियायै
नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम् ॥ १४०८ ॥

॥ इति श्रीपाद्मे सत्यव्रतोक्तं श्रीदामोदराष्टकं समाप्तम् ॥

इत्यष्टकत्रयं पठेद्राधादामोदरप्रियम्।
स्वसम्प्रदायरीत्यैवं कृत्वार्चां पयसादिकम् ॥
राधादामोदराभ्यां वा अर्पयेत् कार्तिके व्रती ॥१४०९॥

ऊखल से बँधे हुए ही आपने कुवेर पुत्रों को बन्धन से छुड़ा दिया और भक्त बना लिया उसी प्रकार मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिये। मुझे मोक्ष की आवश्यकता नहीं ॥ १४०७ ॥

हे अनन्त लीलाधारी! आपके उदर में समस्त विश्व समाया हुआ है। प्रकाशधाम! श्रीराधिका प्राण प्रिय! आपको प्रणाम है ॥ १४०८ ॥

इस प्रकार पद्मपुराण में सत्यव्रत द्वारा कहा हुआ दामोदराष्टक पूर्ण हुआ।

इस प्रकार कार्तिक व्रत करनेवाला साधक अपने सम्प्रदाय की रीति से पय आदि के द्वारा पूजा करके श्रीराधादामोदर के प्रिय उपर्यक्त तीनों अष्टकों को पढ़े ॥ १४०९ ॥

तथा पाद्मे —

नैवेद्यं पायसं विष्णोः प्रियं खण्डघृतान्वितम् ।
अव्रतघ्नमवशेषं भुञ्जीत कार्तिके व्रती ॥ १४१० ॥
अष्टावेव व्रतघ्नानि स्कान्दे चोक्तानि तानि तु ।
अष्टौ तु चाव्रतघ्नानि हविर्भक्तानुमोदितम् ॥ १४११ ॥
क्षीरौषधं गुरोराज्ञा आपो मूलफलानि च ।
सर्वं शिखर दीपादि यथासम्भवमाचरेत् ॥ १४१२ ॥
दिनविशेषकृत्यं तु कर्त्तव्यं कार्तिके सताम् ।
राधाकुण्डेऽसिताष्टम्यां कृत्वा विशेष सेवनम् ॥
स्नातो नैवेद्यमुख्यं च दत्त्वोत्सवादि कारयेत् ॥ १४१३ ॥

तथा पाद्मे —

वृन्दावनेऽऽधिपत्यश्च दत्तं तस्याः प्रतुष्यता ।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने ॥ १४१४ ॥

पूजा का विधान पद्मपुराण में इस प्रकार बतलाया है :— कार्तिक में व्रत करनेवाला घी खांड सहित भगवत्प्रिय नैवेद्य भगवान् के भोग लगाकर सेवन करे ॥ १४१० ॥

स्कन्द पुराण में व्रत भंग करने वाले आठ बतलाये हैं और आठ ही व्रत की पुष्टि करनेवाले बतलाये हैं ॥ १४११ ॥

दूध, औषधि, गुरु की आज्ञा, जल, मूल, फल, और शिखर, दीपक आदि को यथा सम्भव करे ॥ १४१२ ॥

विशेष दिनों के कार्य जैसे—कार्तिक कृष्णा ८ को राधाकुण्ड स्नानादि करके नैवेद्य भोग लगाकर उत्सवादिक करे ॥ १४१३ ॥

तत्कुण्डे कार्तिकाष्टम्यां स्नात्वा पूज्यो जनार्द्दनः ।
सुबोधिन्यां यथा प्रीतस्तथा प्रीतस्ततो भवेत् ॥ १४१५ ॥
श्रीगुरुद्वादशीकृत्यं कर्त्तव्यं कार्तिके सताम् ।
द्वादश्यां कृष्णपक्षस्य पारम्पर्यान् गुरून् स्वयम् ॥ १४१६ ॥
उद्दिश्य कार्तिके चेष्टि वैष्णवीं कारयेत्सुधीः ।
कृष्णादिनिजपर्यन्तं संख्याकांस्तु विशेषतः ॥ १४१७ ॥
निम्बग्रामे महान्तस्तद्विधेज्याः स्वैर्यथाबलम् ।
संपूजितांस्तु सूचयेद् गुरूणां चरितं क्रमात् ॥ १४१८ ॥

तथा सांखायनः—

आविर्भावतिरोधानं ज्ञात्वा तु तद्दिने दिने ।
गुरूणां कारयेदिष्टिं कार्तिके ज्ञस्तु वैष्णवीम् ॥ १४१९ ॥

श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर श्रीराधाजी को वृन्दावन का आधिपत्य दिया है वृन्दावन के अतिरिक्त स्थानों में रुक्मिणी आदि देवियों का आधिपत्य है ॥ १४१४ ॥

कार्तिक कृष्णा अष्टमी को राधाकुण्ड में स्नान करके जनार्द्दन भगवान की पूजा करने से वे सुबोधिनी की तरह प्रसन्न होते हैं ॥ १४१५ ॥

कार्तिक कृष्णा द्वादशी गुरु द्वादशी है, उस दिन परम्परागत गुरुओं का पूजन करे ॥ १४१६ ॥

कार्तिक में वैष्णव यष्टि (यज्ञ) करना चाहिये। श्रीहंस भगवान् से लेकर निज गुरुदेव पर्यन्त सभी आचार्यों का पूजन करे ॥ १४१७ ॥

निम्बग्राम में यथाशक्ति आचार्य महोत्सव मनावें आचार्य पूजन और आचार्य चरित्र की कथा करें ॥ १४१८ ॥

द्वादश्यां कृष्णपक्षस्य तावन्तो वैष्णवोत्तमाः ।
पूज्या गुरुधिया सर्वे रीत्या कृष्णावशेषतः ॥ १४२० ॥

मुख्यस्थानविभावेन गुरुभक्तिपरायणैः ।
अथ कृष्णत्रयोदश्यां श्रीमत्योः कृष्णराधयोः ॥ १४२१ ॥

सेवनानन्तरं सन्ध्याकाले तन्मंत्रपूर्वकम् ।
धर्मराजाय दीपकं ददीत घृतपूरितम् ॥ १४२२ ॥

मन्त्रः पाद्मे—

मृत्युना पाशदंडाभ्यां कालः श्यामतया सह ।
ऊर्जे कृष्णत्रयोदश्यां प्रीयतां दीपदानतः ॥ १४२३ ॥

ऐसे ही सांखायन के वचन हैं :—

आचार्यों के आविर्भाव और तिरोभाव दिवसों को जानकर उन दिनों में आचार्य महोत्सव रूप वैष्णव यज्ञ करना चाहिये ॥ १४१६ ॥

कृष्णपक्ष की द्वादशी को जितने भी वैष्णव हों उनका भी गुरु बुद्धि से भगवान् का नैवेद्य देकर सन्मान करे ॥१४२०॥

गुरु भक्त वैष्णव मुख्य स्थान की भावना से कार्तिक कृष्णा १३ को श्रीराधाकृष्ण की सेवा करें, उसके अनन्तर सन्ध्या के समय उनका मन्त्र जपता हुआ धर्मराज के लिये घी का दीपक जलावें ॥ १४२१, १४२२ ॥

पद्मपुराणोक्त दीपदान के मन्त्र का भाव इस प्रकार है—

पाश दण्डधारी श्याम स्वरूप काल (मृत्यु) कार्तिक कृष्णा १३ के दीपदान से प्रसन्न हो ॥ १४२३ ॥

अथ कृष्णचतुर्दशीकृत्यं कार्यं महाबुधैः।
चतुर्दश्यां समुत्थाय ब्राह्मे मौहूर्त्तिके सुधीः ॥ १४२४ ॥
अतीव प्रातराचान्तस्तैलाभ्यंगादिनोक्षितः।
गृहे संस्नाय पश्चात्तु कार्तिकस्नानमाचरेत् ॥ १४२५ ॥
नदीतडागवाप्यादौ नित्यनियमपूर्वकम्।
प्रकारस्त्वयमानीय सन्ध्याकालेऽपमार्गकम् ॥ १४२६ ॥
चक्रमर्द्दकर्कर्षितक्षेत्रमृदं निधापयेत्।
प्रातः स्नात्वा ततोद्ध्वाङ्ग एव शीर्षणि चोपरि ॥ १४२९ ॥
भ्रामयित्वा पठन् मन्त्रं निक्षिपेत् पादमतो मनुः।
सीतालोष्ठसमायुक्तं सकण्टकदलान्वितम् ॥ १४३० ॥
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः।
गृहीतमौषधित्रयं मन्त्रेणानेन वैष्णवः ॥ १४३१ ॥

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को प्रातःकाल उठकर आचमन तैलाभ्यंग और घर में स्नान करने के अनन्तर तीर्थस्थल में कार्तिक स्नान करें ॥ १४२४-१४२५ ॥

नदी, तलाब, बावड़ी आदि में नित्य नियमपूर्वक स्नान करके सन्ध्या के समय अपामार्ग (औंगा) चक्रमर्दक, जोते हुए खेत की मृत्तिका स्नान करके ऊद्ध्वं अङ्ग (मस्तक) ऊपर फिरावें और निम्नोक्त भाववाला मन्त्र बोलता जाय। सीता, लोह, कण्टक और पत्रों सहित हे अपामार्ग ! बारम्बार घुमाने से आप हमारे पाप दोषों की निवृत्ति करिये। अपामार्ग, तुम्बी, और चक्रमर्दक इन तीनों औषधियों को लेकर नरक से मुक्ति के लिये स्नान के मध्य में मस्तक पर घुमावे ॥ १४२६-१४३० ॥

ब्राह्ममुहूर्त में आनेवाली चतुर्दशी का पद्मपुराण में विशेष

अपामार्गमथो तुम्बी तृतीयं चक्रमर्द्दकम् ।
भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥ १४३२ ॥

ब्राह्मी मौहूर्त्तिकी पाद्मे समहात्म्या चतुर्दशी ।
यमचतुर्दशी मान्या ब्राह्मी मौहूर्त्तिकी यदा ॥ १४३३ ॥

अनर्केऽभ्युदिते कृष्णपक्षे चैव चतुर्दशी ।
स्नात्वा सन्तर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४३४ ॥

जीवत्पिता च कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः ।
चतुर्दश्यां निशि दीपं हरदुर्गार्थमर्पयेत् ॥ १४३५ ॥

तथा पाद्मे—

दीपदानं चतुर्दश्यां हरदुर्गार्थमाचरेत् ।
शस्त्रास्त्रैर्निहतानां च पितृणामक्षयं भवेत् ॥
बालिकाबालनैष्ठिकाः संभोज्याः पायसादिभिः ॥ १४३६ ॥

महत्व बतलाया है उसे यम चतुर्दशी कहते हैं। सूर्योदय से पहले उस दिन स्नान करके यम का तर्पण करने से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। पति के जीवित रहते हुए भी यम और भीष्म का तर्पण करना चाहिये और चतुर्दशी की रात को शंकर और दुर्गा (लक्ष्मी) के दीप दान करें ॥ १४३१-१४३५ ॥

पद्मपुराण में लिखा है :—

चतुर्दशी को शंकर दुर्गा लक्ष्मी के दीपदान करने से अस्त्र-शस्त्रों से मरे हुए पितरों की भी मुक्ति हो जाती है उस दिन ब्रह्मचारी बालक-बालिकाओं को पायस (खीर) आदि का भोजन करावे ॥ १४३६ ॥

तथा पाद्मे—

कुमारीवटुकान् भोज्यं तथैव च तपोधनान् ।
राजसूयफलं तेन प्राप्यते नात्र संशयः ॥ १४३७ ॥
अमावास्यां तु सन्ध्यायां लक्ष्मीं सम्पूज्य वै ततः ।
राधां श्रियं प्रबोधयेत् पाद्मेऽभिधीयते तथा ॥ १४३८ ॥
दिवा तत्र न भोक्तव्यं विना वालातुरान् जनान् ।
प्रदोष-समये लक्ष्मीपूजयेच्च यथाक्रमम् ॥
स्त्र्यधीनत्वाद्गृहकृतेः कृष्णात्प्राङ्भां प्रबोधयेत् ॥ १४३९ ॥

तथा पाद्मे—

सुप्तं क्षीरोदधौ ज्ञात्वा लक्ष्मी पद्माश्रिता स्थिता ।
अप्रबुद्धे हरौ पूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मीः प्रबोध्यते ॥ १४४० ॥

पद्मपुराण में कहा है :—

कुमारी कन्या और तपस्वी ब्रह्मचारियों को भोजन कराने से राजसूय यज्ञ के समान फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १४३७ ॥

अमावस्या को सन्ध्या के समय लक्ष्मी—पूजन करके श्रीराधाजी को जगाना चाहिये ऐसे पद्मपुराण का विधान है ॥ १४३८ ॥

उस दिन, दिन में भोजन न करे। बालक बूढ़े व रोगी चाहे उपवास न करें। प्रदोष के समय लक्ष्मी पूजा करें, गृहकृत्य स्त्री के आधीन होते हैं अतः श्रीकृष्ण से पहले लक्ष्मी (श्रीराधा) को जगावे ॥ १४३९ ॥

पद्मपुराण में लिखा है कि क्षीर समुद्र में श्रीकृष्ण को सोये जानकर श्रीकृष्ण के चरणों की आश्रित श्रीलक्ष्मीजी

तथा नारी पतिव्रता ब्राह्मे काले प्रबुध्यते।
पूर्वं भर्तुस्तथा लक्ष्मीः प्राग्धरेर्द्वादशाहकम् ॥ १४४१ ॥
श्रीराधाकृष्णयोरग्रे कृत्वा दीपादिचोत्सवम्।
रात्रौ विधापयेत्ततः प्रातःकाले प्रतिपदे ॥
गोवर्द्धनं च गोविन्दं पूजयेद् गाश्च भूषयेत् ॥ १४४२ ॥

तथा पाद्मे—

गोवर्द्धने हरेः पूजा गोमहिष्यादिपूजनम्।
भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चाबाह्यदेवता: ॥ १४४३ ॥
गोप्रभृतीनलंकृत्य गोवर्द्धनं तु पूजयेत्।
स्नानधूपादिभिस्तत्र पूजामन्त्रं समुच्चरेत् ॥ १४४४ ॥

पाद्मे—

गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोच्छाय गवां कोटि प्रदो भव ॥ १४४५ ॥

भगवान् के पहले जागती हैं। जैसे पतिव्रता स्त्री ब्राह्ममुहूर्त में पति से पहले ही जागती हैं, उसी प्रकार भगवान् के दश दिन पहले ही श्रीराधाजी जाग जाती है ॥ १४४०, १४४१ ॥ द्वा

श्रीराधा कृष्ण के आगे रात्रि में दीपोत्सव करके प्रातः-काल प्रतिपदा को गिरिराज गोवर्धन, गोविन्द और गायों का पूजन करे ॥ १४४२ ॥

पद्मपुराण में कहा है—

गोवर्धन में हरि की और गो महिषी आदि की पूजा करें। गायों को भूषण आदि से अलंकृत करै, फिर स्नान धूप दीप आदि से निम्नांकित भाववाले मन्त्र से पूजा करै। ॥ १४४३, १४४४ ॥

कृत्वा पूजां गवां ताभ्यो ग्रासं दत्त्वा नमेच्च यः ।
अन्नकूटं धनाधिक्ये कृत्वा गोवर्द्धनात्मने ।
श्रीकृष्णाय समर्पयेत् कृष्णसन्तोषकारकम् ॥ १४४६ ॥

तथा पाद्मे—

गोवर्द्धनमखो रम्यः कृष्णसन्तोषकारकः ।
करणीयः स्वभूयस्त्वे कृष्णप्रीणनतत्परैः ॥ १४४७ ॥
अन्यत्र तु मथुरायां विधाय गोमयेन हि ।
गोवर्द्धनं सुपूजयेन्नानाव्यञ्जनराजिभिः ॥ १४४८ ॥

तथा पाद्मे—

मथुरायां तथान्यत्र कृत्वा गोवर्द्धनं गिरिम् ।
गोमयेन ततः स्थूलं ततः पूज्यो गिरिर्यथा ॥ १४४९ ॥
मथुरायां यथा साक्षात्कृत्वा तं च प्रदक्षिणम् ।
वैष्णवं धाम आसाद्य मोदते हरिसन्निधौ ॥ १४५० ॥

हे गोकुल के रक्षक ! श्रीकृष्ण की भुजाओं से उठाये हुए धराधार गोवर्धन ! हमें करोड़ों गाय प्रदान कीजिये ।। १४४५ ।।

फिर गायों को ग्रास देकर के नमस्कार करें, यदि द्रव्य हो तो, श्रीकृष्ण को प्रसन्न करनेवाले वृहद् अन्नकूट की सामग्री गोवर्धन रूप श्रीकृष्ण के अर्पित करै ।। १४४६ ।।

पद्मपुराण में लिखा है :—

श्रीकृष्ण की प्रसन्नता चाहनेवाले सम्पन्न हों तो गोवर्धन महोत्सव सुन्दर ढंग से करें ।। १४४७ ।।

मथुरा या व्रज से बाहर जहाँ-तहाँ गोबर का गोवर्धन बनाकर नाना प्रकार के व्यञ्जनों से पूजा करें ।। १४४८ ।।

मथुरा या गोवर्धन में पूजा और प्रदक्षिणा करनेवालों को भगवद्धाम की प्राप्ति हो जाती है ।। १४४९, १४५० ।।

गोक्रीडादि विधाप्य च वैष्णवांश्च सुतर्पयेत् ।
द्वितीयाशल्यरिक्तायां गोक्रीडा स्यात्प्रतिपदि ॥ १४५१ ॥

अथ यमद्वितीया स्मृतौ—

स्नातव्यं तु यमुनायां यमलोकनिवृत्तये ।
प्रातर्यमद्वितीयायां शुक्लपक्षस्य कार्तिके ॥ १४५२ ॥
स्वलोकालोकवरेण तोषितायां यमेन वा ।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ १४५३ ॥
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ।
अथ गोपाष्टमीकृत्यं विधातव्यं सतां ध्रुवम् ॥ १४५४ ॥
सर्वत्रान्यत्रभावेन नन्दग्रामे विशेषतः ।
शुक्लाष्टम्यां तु कार्तिके समाहूयोत्तमान्सतः ॥ १४५५ ॥
कृष्णवत् श्यामसुन्दरं वेषयित्वा विधानतः ।
व्रजेश्वरीव्रजेश्वरावन्यान् गोपालबालकान् ॥ १४५६ ॥

गोक्रीडन प्रतिपदा में ही किया जाय वह प्रतिपदा द्वितीया से विद्धा न हो ॥ १४५१ ॥

यमद्वितीया के सम्बन्ध में स्मृति वचन हैं—

यमलोक की निवृत्ति के लिये कार्तिक शुक्ला २ यमद्वितीया को प्रातःकाल यम द्वारा सन्तुष्ट की हुई यमुना में स्नान करें। और वहिन के हाथ का भोजन करै, बहिनों को बिधान पूर्वक दान देवें ॥ १४५२, १४५३ ॥

सज्जनों को चाहिये कि गोपाष्टमी महोत्सव करें—विशेष करके नन्दग्राम में करें, उसके अतिरिक्त अन्यत्र भी करें। कार्तिक शुक्ला अष्टमी को उत्तम सन्तों को बुलावें,श्रीराम कृष्ण, नन्द यशोदाजी और गोपों का स्वरूप धारण करके, नन्दजी की

कल्पयित्वा यथायोग्यं सगोगोपार्भकं हरिम् ।
नन्दाज्ञया यशोदया च दत्तचतुर्विधान्नकम् ॥ १४५७ ॥

बलदेवादिसहितं गोचारणे वनं नयेत् ।
ततः सर्वदिनं क्रीडां सन्ध्याकाले विधाय्य वै ॥ १४५८ ॥

कृष्णमनु गृहानेत्य स्नानपानादिकं ततः ।
कारयित्वार्भकं कृष्णं शाययित्वा विधानतः ॥
पूजयित्वा प्रसादाद्यैर्वैष्णवांश्च विसर्जयेत् ॥ १४५९ ॥

तथा पाद्मे—

शुक्लाष्टमी तु कार्तिकी स्मृता गोपाष्टमी बुधैः ।
तद्दिने वासुदेवोऽभूद् गोपः पूर्वं तु वत्सपः ॥ १४६० ॥

ततः कुर्याद् गवां पूजां गोग्रासं गोप्रदक्षिणम् ।
गवानुगमनं कार्यं सर्वकामानभीप्सता ॥ १४६१ ॥

आज्ञा से गोचारण लीला करें, यशोदाजी उन्हें भक्ष्य भोज्यादि चारों प्रकार के अन्नादि देवैं । श्रीबलदेवजी के सहित दिन भर गोचारण करावें सायंकाल लौटें, श्रीकृष्ण के पीछे पीछे आकर गोप बालक अपने अपने घरों को जाँय, श्रीकृष्ण को स्नान पानादि कराके शयन करावें फिर प्रसाद आदि से वैष्णवों का सत्कार करके उत्सव की समाप्ति करें ॥ १४५४-१४५९ ॥

पद्मपुराण में भी यही आशय व्यक्त किया गया है :—

कार्तिक शुक्ला अष्टमी को श्रीकृष्ण गोचारणार्थ गोप बने थे, अतः इसे गोप अष्टमी कहते हैं । उस दिन गायों की पूजा करें गो-ग्रास देवैं, गायों की परिक्रमा करें, गायों के पीछे-पीछे चलें । नवमी को स्नानादि करके मथुरा की परिक्रमा करें ।

नवम्यां स्नाप्य विश्रान्तौ मथुरायाः प्रदक्षिणम् ।
कुर्याद् विस्तारमुन्नयेत्तन्माहात्म्यप्रसंगतः ॥ १४६२ ॥

अथ प्रबोधिनीकृत्यं चरितव्यं महाबुधैः ।
तन्माहात्म्यं समाकर्ण्य निर्णीय कृष्णतत्परः ॥ १४६३ ॥

तत्र ब्रह्मा—

प्रबोधिन्यास्तु माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्द्धनम् ।
मुक्तिदं तत्वबुद्धीनां शृणु देवर्षिसत्तम ॥ १४६४ ॥

तावद्गर्जति बिप्रेन्द्र गंगा भागीरथी क्षितौ ।
यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी ॥ १४६५ ॥

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ।
यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिकी ॥ १४६६ ॥

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ।
एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां लभेन्नरः ॥ १४६७ ॥

उसका बड़ा महत्व है। इससे सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ १४६०-१४६२ ॥

विद्वानों से जानकर एवं उसका माहात्म्य सुनकर भगवद्भक्तों को प्रबोधिनी का कृत्य करना चाहिये ॥ १४६३ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—

हे देवर्षिवर्य ! प्रबोधिनी एकादशी पुण्यवर्द्धक और पापों का नाश करनेवाली है। गंगा और समुद्र सरोवर आदि तीर्थों के महत्त्व से भी देवप्रबोधिनी का महत्व अधिक है। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञों का फल एक देव प्रबोधिनी के उपवास मात्र से प्राप्त हो जाता है। जो देव दानवों और

यद्दुर्लभं यद्दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये देवमानवैः।
तदप्यप्रार्थितं पुत्र ददाति हरिबोधिनी ॥ १४६८ ॥

मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युग्राणि यानि च।
एकेनैवोपवासेन दहते पापहारिणी ॥ १४६९ ॥

पूर्वजन्मसहस्रेषु पापं यत् समुपार्जितम्।
जागरेण प्रबोधिन्या दहते तूलराशिवत् ॥ १४७० ॥

विधि :—

तत्र स्नानादिकं कृत्वा महास्नानेन केशवं।
महानैवेद्यतो रात्रौ सन्तोष्योत्थापयेद्धरिम् ।। १४७१ ॥

तथा ब्राह्मे—

एकादश्यां तु शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम्।
प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।।
नृत्यैर्गेयैस्तथा वाद्यै ऋग्यजुः साममंगलैः ।। १४७२ ॥

मानवों को दुष्प्राप्य दुर्लभ है वह देव प्रबोधिनी बिना ही माँगे दे देती है। मेरु और मन्दराचल पर्वतों जैसे उग्र पाप भी एक देव प्रबोधिनी एकादशी के उपवास से भस्म हो जाते हैं। हजारों जन्मों के पाप भी देवप्रबोधिनी के जागरण से अग्नि से रुई की भाँति जल जाते हैं ।। १४६४-१४७० ।।

देवप्रबोधिनी का विधान इस प्रकार है :—

रात्रि में स्नानादि करके भगवान का अभिषेक कर महानैवेद्य अर्पित कर, उत्थापन करावें। फिर नृत्य गान करें विविध वाद्य बजावें, ऋक्, यजु, सामवेद के मन्त्रों से मंगल गान करें ।। १४७१-१४७२ ।।

तत्र मन्त्र: श्रुतौ—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम् ।। १४७३ ।।

कुमाराः—

ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्य-
सोमादिभिर्वन्दितवन्दनीयः ।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास
मन्त्रप्रभावेन सुखेन देव ।। १४७४ ।।

इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थं हि निर्मिता ।
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ।। १४७५ ।।
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।
उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव ।। १४७६ ।।
गता मेघा वियच्चैव निर्मलं विमला दिशः ।
शारदानि च पुष्पाणि ग्रहाण मम केशव ।। १४७७ ।।

भगवान को जगावें—हे गोविन्द ! निद्रा त्याग कर उठिये, आपके उठने पर तीनों भुवन जागृत होंगे ।। १४७३ ।।

सनकादिकों के वचन हैं—

ब्रह्मा इन्द्र रुद्र अग्नि कुवेर सूर्य चन्द्र आदि से वन्दित हे देवेश ! हे जगन्निवास ! मन्त्र प्रार्थनाओं से आप जागिये ।
।। १४७४ ।।

हे देव ! यह द्वादशी (प्रबोधिनी एकादशी) सम्पूर्ण लोकों के हितार्थ जागने के लिये ही आपने बताई है ।। १४७५ ।।

हे जगन्नाथ ! आपके सोने पर समस्त जगत् सो जाता है और आपके जागने पर समस्त जगत् जाग जाता है, इसलिये आप उठिये ।। १४७६ ।।

उत्थितं तु भगवन्तं क्षीराद्यै रभिषेचयेत् ।
अभिषिच्य महाविष्णुं वस्त्रालंकारचन्दनैः ॥ १४७८ ॥
पुष्पादिर्भिविचित्रान्नैस्ताम्बूलैः पूजयेद्धरिम् ।
एकादश्यां हि कृष्णस्य रथोत्सवो हि वैष्णवैः ॥
कर्त्तव्यो हृष्यता हरेर्यामपीडानिवृत्तये ॥ १४७९ ॥

तथा भाविष्ये—

रथोत्सवे मुकुन्दस्य येषां हर्षः प्रजायते ।
तेषां न नारकी पीडा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १४८० ॥
माहात्म्यं विधिना साकं आहुस्तु सनकादयः ।
बोधिनी जगदाधारा कार्तिके शुक्लपक्षतः ॥ १४८१ ॥
रथस्थो यत्र भगवांस्तुष्टो यच्छति वाञ्छितम् ।
भजन्ति ये रथारूढ देवं सर्वेश्वरं हरिम् ॥ १४८२ ॥

मेघ विलागये, आकाश निर्मल है, दिशायें स्वच्छ हो गई हैं। हे केशव! शरदकालीन पुष्पों को अङ्गीकार कीजिये। ॥ १४७७ ॥

इस प्रकार प्रार्थना पूर्वक जगाकरके भगवान का दुग्ध से अभिषेक करावैं वस्त्र अलङ्कार चन्दन पुष्प और सुस्वादु सुन्दर अन्न ताम्बूल आदि से पूजा करै। फिर यमयातना से छुटकारा पाने के लिये वैष्णवों के साथ रथोत्सव अर्थात् भगवान की सवारी निकालै ॥ १४७८, १४७९ ॥

भविष्य पुराण में कहा है :—

भगवान् के रथोत्सव में जिनको हर्ष हो वे चौदह इन्द्रों तक नरक यातना नहीं भोगते। ब्रह्माजी और सनकादिकों के सम्वाद में देवप्रबोधिनी को जगदाधार कहा है। उस दिन रथ-

पदयात्रा कृता नृणां कामानिष्टान् प्रयच्छति।
कृष्णस्य रथशोभां ये प्रकुर्वन्ति स्वशक्तितः॥ १४८३॥
तेषां मनोरथावाप्ति यच्छते पुरुषोत्तमः।
श्रीकृष्णस्य रथशोभां यथाशक्ति करोति यः॥ १४८४॥
वांछितं तस्य यच्छन्ति नित्यं सूर्यादयो ग्रहाः।
कृष्णस्य रथशोभां यः पताकादि समन्विताम्॥ १४८५॥
करोति नरनारीणां भोक्ता मन्वन्तराणि षट्।
कृष्णस्य रथशोभां ये प्रकुर्वन्ति सुहर्षिताः।
पदे पदे गया पुत्र पुण्यं तेषां प्रयागजम्॥ १४८६॥

महाभारते भीष्मः—

रथयात्रां स्थिते कृष्णे जयेति प्रवदन्ति ये।
जयेति च पुनर्ये वै शृणु पुण्यं वदाम्यहम्॥ १४८७॥
गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे।
वाराणस्यादितीर्थेषु देवानां चैव दर्शने॥ १४८८॥

में विराजे हुए प्रभु सभी वाञ्छित फल देते हैं। रथारूढ़ श्रीसर्वेश्वर प्रभु का जो भजन करते हैं, उनकी वह पद यात्रा समस्त अभीष्टों की पूर्ति कर देती है। जो सज्जन भगवान के रथ को सजाते हैं उनके सभी अभीष्टों की पूर्ति भगवान और सूर्य आदि ग्रह कर देते हैं। जो पताका आदि से प्रभु के रथ को सजाते हैं उनके छै मन्वन्तरों तक नर-नारियों के ठाठ लगे रहते हैं। उनको पद-पद पर गया और प्रयाग स्नान के समान फल प्राप्त होता है॥ १४८०-१४८६॥

महाभारत में भीष्मजी के वाक्य हैं:—

रथयात्रा के समय जो बारम्बार भगवान की जयध्वनि

यत्फलं कविभिः प्रोक्तं कात्स्र्येन च नरेश्वरः ।
जयशब्दकृते विष्णो रथस्य तत्फलं स्मृतम् ॥ १४८६ ॥

रथस्थितो नरैर्यैस्तु पूजितो धरणीधरः ।
यथालाभोपपन्नैश्च पुनर्भक्त्या समर्चितः ॥ १४९० ॥

ददाति वाञ्छितान् कामानन्ते च परमं पदम् ।
मंगलं ये प्रकुर्वन्ति धूपं दीपं तथा स्तवम् ॥ १४९१ ॥

नैवेद्यं वस्त्रपूजां च भक्त्या नीराजनं हरेः ।
रथारूढस्य कृष्णस्य सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥ १४९२ ॥

फलं न तन्मया ज्ञातं जानाति यदि केशवः ।
येषां गृहाग्रतो याति रथस्थो मधुसूदनः ॥ १४९३ ॥

पूजा तैस्तैः प्रकर्त्तव्या वित्तशाठ्यविवर्जितैः ।
अनर्चितो यदा याति गृहाद् यस्य महीधरः ॥ १४९४ ॥

करते हैं, उनके पुण्य का फल सुनिये । हरिद्वार, प्रयाग, गंगा-सागर काशी आदि तीर्थों में देव दर्शन का जो कविजनों ने फल बतलाया है, हे नरेन्द्र ! रथोत्सव के समय भगवान् की जयध्वनि करनेवाले को, वह सब फल प्राप्त हो जाता है ॥ १४८७-१४८९ ॥

रथ में विराजमान भगवान की जो भक्त यथा शक्ति पूजा करता है उसको भगवान वांछित फल देकर अन्त में परम-पद प्रदान कर देते हैं । जो धूप दीप वस्त्र नैवेद्य आरती आदि भक्तिपूर्वक भगवान् की पूजा करते हैं और मंगल स्तवों का गान करते हैं, उनको क्या कितना कैसा फल मिलता है उसे भगवान् ही जानें, हम नहीं बतला सकते । जिनके घरों के आगे से भगवान का रथ निकले उनको चाहिये कि धनादि का अभिमान छोड़कर पूजा आरती करें । जिनके घर के आगे से

पितरस्तस्य विमुखा वर्षाणां दशपञ्च च।
यः पुनः कुरुते पूजां गृहायाते तु माधवे ।। १४६५ ।।
वसते श्वेतद्वीपे तु यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
गोघ्नो ब्रह्मस्वहारी च भ्रूणहा ब्रह्मनिन्दकः ।। १४६६ ।।
महापातक-युक्तोऽपि ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
मद्यपः सर्वपापकृत् कलिकालेन मोहितः ।। १४६७ ।।
रथाग्रतः पदैकेन मुच्यते सर्वपातकैः।
प्रबोधवासरे प्राप्ते कर्त्तव्यं पाण्डुनन्दन ।। १४६८ ।।
रथारोहणमीशस्य वाञ्छितार्थ-समाप्तये।
देवालयेषु सर्वेषु पुरमध्ये समन्ततः ।। १४६६ ।।
भ्रामयेत्तूर्यघोषेण ब्रह्मघोषेण वै हरिम्।
रथागमे मुकुन्दस्य पुरशोभां तु कारयेत् ।। १५०० ।।
सर्वतो रमणीयं सपताकैरुपशोभितम्।
तोरणैर्बहुभिर्युक्तं रम्भास्तम्भैः सुशोभितम् ।। १५०१ ।।

बिना पूजे हुए भगवान का रथ निकल जाय तो उन पर पन्द्रह वर्षों तक पितर कुपित रहते हैं। पूजा करने वाला चौदह इन्द्रों के समय तक श्वेत द्वीप वैकुण्ठ में वास करता है। गौ, ब्राह्मण, भ्रूण (गर्भ) घाती ब्राह्मणों का निन्दक उनका धन हरनेवाला गुरु स्त्रीगामी मदिरा पीनेवाला विमोहित समस्त पाप करनेवाला भी रथ के आगे-आगे भक्ति पूर्वक एक पैंड चलने पर ही सर्व पापों से छुटकारा पा जाता है ।। १४६०-१४६७ ।।

हे पाण्डुनन्दन ! प्रबोधिनी एकादशी के दिन अपने समस्त अभीष्टों की पूर्ति के लिये भगवान् का रथ यात्रा महोत्सव अवश्य करे। सभी मन्दिरों में और नगर में बाजे-गाजे से

विचित्रवसुशोभा वै कर्त्तव्या भावितैर्नरैः ।
स्थाने स्थाने महीपाल कर्त्तव्यं पुण्यसंयुतम् ॥ १५०२ ॥
नृत्यमानैः सुवैष्णवैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
भ्रामयेत्स्यन्दनं विष्णोः पुरमध्ये नराधिप ॥ १५०३ ॥
यावत्पदानि कृष्णस्य रथस्याकर्षणे नरः ।
करोति क्रतुभिस्तानि तुल्यानि नरनायक ॥ १५०४ ॥
रथेन सह गच्छन्ति पुरतः पृष्ठतोऽग्रतः ।
विष्णुलोकोपमाः सर्वे भवन्ति श्वपचादयः ॥ १५०५ ॥
रथस्थं ये न पश्यन्ति भ्रममाणं जनार्द्दनम् ।
विप्राऽध्ययनसम्पन्ना भवन्ति श्वपचाधमाः ॥ १५०६ ॥
स्त्रियोऽपि मुक्तिमायान्ति रथयात्रापरायणाः ।
भर्तृमातृपितृकुलं नयन्ति हरिमन्दिरम् ॥ १५०७ ॥

सवारी निकाले, वेद-मन्त्रों का पाठ करै, नगर को ध्वजा-पताकाओं से सजावै, बन्दनवार तोरण जगह-जगह केला के स्तम्भ लगावै ॥ १४६८-१५०२ ॥

गीतवाद्य और नृत्य करते हुए वैष्णवों के साथ नगर में रथ को घुमावै ॥ १५०३ ॥

हे नरेन्द्र ! रथ के साथ जितने पग चलै उतने ही यज्ञों के समान पुण्य फल मिलता है । रथ के आगे-पीछे चलनेवाले श्वपच आदि भी भगवान के पार्षदों की उपमा प्राप्त कर लेते हैं ॥ १५०४, १५०५ ॥

रथारूढ़ भगवान के दर्शन न करनेवाले पठित ब्राह्मण भी चाण्डाल के समान हो जाते हैं ॥ १५०६ ॥

रथयात्रा में भाग लेनेवाली स्त्रियों की मुक्ति हो जाती

कुर्वन्ति नर्तकीरूपं रथाग्रे कौतुकान्वितम् ।
क्रीडन्ते तेऽप्सरोगणैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १५०८ ॥
रथाग्रे ये प्रकुर्वन्ति गीतवाद्यानि मानवाः ।
देवलोकात्परिभ्रष्टा जायन्ते मण्डलेश्वराः ॥ १५०९ ॥
मौल्येन स्यन्दनस्याग्रे गायमानोऽपि गायकः ।
वादकैः सह राजेन्द्र प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ १५१० ॥
नानुव्रजति यो मोहाद् व्रजन्तं जगदीश्वरम् ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्मापि स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥ १५११ ॥
रथोत्सवस्य महात्म्यं कलौ वितनुते हि यः ।
पुण्यबुद्ध्या विशेषेण लोभेनाप्यथवा नरः ॥ १५१२ ॥

है, वे अपने पति माता और पिता के कुल को वैकुण्ठ में पहुँचा देती हैं ॥ १५०७ ॥

जो स्त्री वेष बनाकर रथ के आगे नाचते हुए चलते हैं वे चौदह इन्द्रों के समय तक अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हैं ॥ १५०८ ॥

जो मनुष्य रथ के आगे गाते-बजाते हैं, वे देवलोक को जाते हैं फिर वहाँ से मृत्युलोक में जन्म लेकर मण्डलेश्वर बन जाते हैं ॥ १५०९ ॥

जो गायक पारिश्रमिक लेकर भी रथ के आगे गाता हो वह भी हे राजेन्द्र ! वादक सहित वैकुण्ठ की प्राप्ति कर लेता है ॥ १५१० ॥

जो कोई ज्ञानी मदमोह वश भगवान् के रथ के साथ न चलै वह मरकर ब्रह्मराक्षस बनता है ॥ १५११ ॥

जो व्यक्ति पुण्य भावना या लोभ की दृष्टि से भी कलियुग

सप्तद्वीपसमुद्रान्ता रत्नधान्यसमन्विता ।
सशैलवनपुष्पाढ्या तेन दत्ता मही भवेत् ॥ १५१३ ॥
श्रुत्वैवं रथ-माहात्म्यं श्रद्धया वैष्णवोत्तमैः ।
प्रिया विष्णोः प्रकर्त्तव्या रथयात्रानुवत्सरम् ॥ १५१४ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वोपचारपूजितम् ।
महानीराजनं कृत्वा गीतवाद्यजयस्वनैः ॥ १५१५ ॥
रथमारोहयेद् विष्णुं जनानानन्दयन्मुदा ।
रथारूढस्य कृष्णस्य कर्त्तव्यं पूजनं महत् ॥ १५१६ ॥
रथारूढे महाविष्णौ ये कुर्वन्ति जयस्वनम् ।
पूजां चाखिलपापेभ्यो मुक्ता यान्ति हरेः पदम् ॥ १५१७ ॥
अथ श्रीकृष्णवर्णनमाशीर्वादः परस्परम् ।
वक्रं नीलोत्पलरुचिलसत्कुण्डलाभ्यां सुमृष्टं,
चन्द्राकारं रचिततिलकं चन्दनेनाऽक्षतैश्च ।

में रथोत्सव के महात्म्य का प्रचार करै तो समझ लो उसने रत्न धान्य सहित पर्वत वन पुष्पादि सातों द्वीपोंवाली समुद्रान्त पृथ्वी का दान कर दिया ॥ १५१२, १५१३ ॥

इस प्रकार वैष्णवों से माहात्म्य सुनकर प्रतिवर्ष भगवत्प्रिय रथयात्रा का महोत्सव श्रद्धापूर्वक करते रहना चाहिये ॥ १५१४ ॥

इसलिये समस्त उपचारों द्वारा पूजित भगवान को रथ में विराजमान करके रथ के आगे गाते-बजाते हुए जयध्वनि और पूजा करते हैं, वे समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान के धाम को प्राप्त कर लेते हैं ॥ १५१७ ॥

श्रीकृष्ण वर्णन परस्पर आशीर्वचन :—

वामांगे श्रीवृषरविसुतां प्रेक्षणेनाऽमृतौघं,
श्रीवत्सांकं सततमुरसा धारयन् पातु कृष्णः ॥ १५१८ ॥
युक्तः सैन्याधिभावैर्मधुररवयुतैः किंकिणीजालमालैः
रत्नौघैर्मौक्तिकानामविरतमणिभिः संवृतश्चारुदारैः ।
हेमैः कुम्भैः पताकैः शिवतररुचिरैः भूषितः केतुमुख्यैः
छत्रैर्ब्रह्मेशवन्द्यो दुरितहर-हरेः पातु जैत्रो रथो वः ॥१५१९
मोदन्ते सुजनाह्यनिन्दितधियस्त्यक्ताखिलोपद्रवाः
स्वस्थाः सुस्थिरबुद्धयः प्रतिहतामित्रा रमन्ते सुखम् ।
मोदन्ते सुजनाह्यनिंदितधियस्त्यक्ताखिलोपद्रवाः
स्वस्थाः श्रीनिजशक्तिभिः सहयदा यानं समारोहति॥१५२०

नीलकमल के सदृश्य, एवं अक्षत चन्दन के तिलक से युक्त कुण्डलों से शोभायमान अमृतपूर्ण चन्द्राकार मुख को और वामांग में निरन्तर श्रीवृषभानुनन्दिनी को तथा हृदय में निरन्तर श्रीवत्सांक को धारण करते हुए श्रीकृष्ण कृपापूर्णावलोकन से हम सबकी रक्षा करें ॥ १५१८ ॥

सेनाओं को पराजित करनेवाले मधुर गणों से युक्त किङ्किणियों की जलामाला एवं मोतियों की अविरत मणियों और रत्नसमूह से युक्त तथा सुन्दर सखियों, स्वर्णकलश, कल्याणकारी ध्वजा पताका छत्रादि से युक्त ब्रह्मा शिव आदि द्वारा वन्दित समस्त पापों को हरनेवाले विजयी रथवाले श्रीकृष्ण का रथ आप सबकी रक्षा करै ॥ १५१९ ॥

प्रशंसनीय बुद्धिवाले समस्त उपद्रवों से रहित सज्जन आनन्दित रहैं, स्थिर बुद्धिवाले जिनके शत्रु शान्त हो गये हों वे स्वस्थ रहकर सुखपूर्वक रमण करते रहैं। सज्जन प्रमुदित हों जब कि श्रीयदुनन्दन श्रीश्यामसुन्दर रथ में विराजैं ॥ १५२० ॥

पलायध्वं पलायध्वं रे रे दितिजदानवाः ।
संरक्षणाय लोकानां रथारूढो हरिः पुमान् ॥ १५२१ ॥
एवमाक्रोशयित्वाऽथ श्रीमत्योः कृष्णराधयोः ।
गृहीत्वा प्रसादमालां गद्यपद्ये न संस्तुतिः ।
परमवैष्णवैः कार्या परमानन्दरूपयोः ॥ १५२२ ॥

सफल गुणगणनिधानमभिवन्दित सिद्धिदमतिरमणीयं जनाह्लादकरमाविष्कृतसच्चिदानन्दस्वरूपमघौघनाशनातिपुण्य-प्रदायनिमितमाहात्म्यं हारमुकुटकटककेयूरकंकणांगदभुजवलय-नूपुरमुद्रिकाद्यनेकाभरणं भ्रमरभजमानातिपरिमलवहुलां वैजयन्तीं बिभ्राणमतीव सुन्दरवरं कन्दर्पकोटिलावण्यैकदेशं प्रसन्नमूर्त्ति वरदमूर्त्ति गोगोपगोपीकुलसेवितं करिकराकारातिसुकुमारसुप्रभ-सुन्दरभुजद्वयं वृन्दावननिवासिनं कृपया विश्वमलोकयन्तं

हे राक्षसो ! तुम सब भाग जावो ! सज्जनों की रक्षा के लिये ही हरि भगवान रथ पर सवार हुए हैं ॥ १५२१ ॥

इस प्रकार जोर से कहकर परमानन्द रूप श्रीराधाकृष्ण की प्रसादी माला लेकर निम्नांकित भावना से गद्य पद्यांश द्वारा परम वैष्णव भगवान की स्तुति करें ॥ १५२२ ॥

समस्त गुण गणों का निधान सब प्रकार से वन्दनीय सिद्धिदायक अत्यन्त सुन्दर भक्तों को आनन्दित करनेवाला सच्चिदानन्द स्वरूप, समस्त पाप समूहों का नाशक, पुण्य फलदायी माहात्म्यवाला, हार, मुकुट, क्रीट कंकण भुजवन्द नूपुर मुद्रिका आदि अनेकों आभरणोंवाला, भ्रमरों को लुभानेवाले गन्धवाली वैजयन्ती माला धारण किया हुआ अत्यन्त सुन्दर, जिसके एक ही देश में करोड़ों कामदेवों के समान लावण्यता

श्रीराधापतिं पूजितुं च समायाता ब्रह्मादयो देवा ब्रह्मेशानेन्द्रादयोऽष्टौ वसव एकादशरुद्रा द्वादशादित्या मरुद्गणाः प्रजेश्वराः सनकसनन्दनसनातनसनत्कुमारनारदप्रह्लादध्रुवाम्बरीषरुक्मांगदादयो भागवताः वेदोपवेदेतिहासपुराणस्मृतयो नदनदीपर्वतसमुद्राः सतीर्थाः सर्वदेवदानवदैत्यराक्षसमानवाः तथैव वैकुण्ठवासिनो नन्दसुनन्दकुमुदकुमुदाक्षबलसुबलसुश्लोकप्रबलार्हणजयविजयविष्वक्सेनादयो गरुडमुख्याः श्रीमन्महाभागवतप्रवराः श्रीप्रह्लादे आगते सर्वेषां महाह्लादो जायते। एवं गद्यपद्यं पठित्वाऽथ वक्तव्यम्—॥ १५२३ ॥

इयं भागवती माला भवतैर्द्रविणदानतः।
संग्राह्यानुग्रहरूपा भक्त्या जयेन वै हरेः॥ १५२४ ॥

भरी हुई है प्रसन्न एवं वरदान करने योग्य गाय और गोपियों के झुण्डों से सेवित गजेन्द्र की शुण्ड के सदृश जिनकी दोनों भुजायें सुन्दर वृन्दावन निवासी, विश्व को कृपा दृष्टि से देखनेवाले श्रीराधामाधव को पूजने के लिये ब्रह्मा आदिक देवता, ब्रह्मा शंकर इन्द्र आदि आठों वसु, ग्यारह रुद्र, बारहों सूर्य और मरुद्गण, प्रजापति, सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार, प्रह्लाद, ध्रुव, अम्बरीष, रुक्मांगद आदि भागवत, वेद, उपवेद, इतिहास पुराण, स्मृतियाँ, नद नदी पर्वत तीर्थों सहित समुद्र सभी देव दानव दैत्य राक्षस मनुष्य तथा वैकुण्ठवासी नन्द, सुनन्द, कुमुद, कुमुदाक्ष, बल, सुबल, सुश्लोक, प्रवल, अर्हण, जय, विजय, विष्वक्सेन, आदि और गरुड़ आदिक, भागवत प्रवर, श्रीप्रह्लाद के आ जाने पर सभी को महान् आह्लाद होता है। इस प्रकार का गद्य-पद्य पढ़ करके फिर यह कहना चाहिये :—भक्तों को चाहिये कि भेंट देकर के उपर्युक्त अनुग्रह रूप भागवती माला का संग्रह करें। भगवान का जयघोष करें॥ १५२३, १५२४॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा अन्त्यजः स्त्रियः।
वाञ्छितार्थं प्रपद्यन्ते मालामादाय भक्तितः ॥ १५२५ ॥
विशदां कीर्त्तिमुत्तमामाधुर्लक्ष्मीं स्थिरां यशः।
शुद्धं कलत्रपुत्राद्यनेका आशिष ईहिताः ॥ १५२६ ॥
प्राप्नोत्यन्ते तु चरमं पदं हरेः सनातनम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामसमृद्धये ॥ १५२७ ॥
मालामेतां सुगृह्णीयात्सौख्यमोक्षप्रदायिनीम्।
भक्त्या गृह्णाति यो मालां वैष्णवीममलां शुभाम् ॥१५२८॥
न तेषां दुर्लभं किंचिदिहलोके परत्र च।
कंठे मालां निधायाथ महाभागवतोत्तमैः ॥ १५२९ ॥
कृष्णं रथं समारोप्य गीतवाद्यजयस्वनैः।
प्रमुदिताननैः सर्वैः भक्त्या कृष्णरथस्य तु ॥ १५३० ॥

भक्तिपूर्वक इस भक्तमाला को ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अन्त्यज (चाण्डाल) भी क्यों न हो, सब अपने अभीष्ठ फल को प्राप्त कर लेते हैं ॥ १५२५ ॥

विशद कीर्ति, उत्तम आयु, स्थिर लक्ष्मी, शुद्ध यश, अनेकों स्त्री-पुत्र आदि और अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति करके अन्त में भगवान के धाम को जाता है. इसलिये सभी प्रकार से समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिये भुक्ति मुक्ति देनेवाली उपर्युक्त माला अपनानी चाहिये। जो भक्ति पूर्वक इस माला को अपनाता है उसके लिये इस लोक में एवं परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं। ॥ १५२६-१५२८ ॥

महाभागवत वैष्णव इस माला को कण्ठ में धारण करके, गीतवाद्य जय जयघोष के साथ भगवान को रथ में विराजमान

प्रेरणा कर्षणं कार्यं तथा च सनकादयः।
रथस्याकर्षणं पूर्वं कुरुते दैत्यनायकः ॥ १५३१ ॥
ततः सिद्धसुरसंघा यक्षगन्धर्वमानवाः।
गृहं नीत्वा पुनः सेवां कृत्वा जागरणं चरेत् ॥ १५३२ ॥
प्रातःस्नानादिकं ततः कृत्वा पूर्वोक्तरीतितः।
तप्तमुद्रांस्तु धारयेत् सम्प्रदायानुसारतः ॥ १५३३ ॥
दीक्षाकाले शयन्यांच प्रबोधिन्या यथाविधि।
द्वारकायां सदा धार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः ॥ १५३४ ॥
इति मुकुन्दवचनात् पूर्वरीत्यैव धारयेत्।
कृत्वा मासोपवासं तु यतात्मा विजितेन्द्रियः ॥ १५३५ ॥
ततोऽर्चयेन्महाविष्णुं द्वादश्यां गरुडध्वजम्।
पूजयेत्पुष्पमालाभिर्गन्धधूपविलेपनैः ॥ १५३६ ॥

करके प्रमोदपूर्वक रथ को खैंचें। रथ के आगे सनकादिक, प्रह्लाद, सिद्धदेव, यक्ष, गन्धर्व मानवों की भी झाँकियाँ रक्खें। रथ को पुनः लौटाकर मन्दिर या घर में लाकर सेवा करके जागरण करै। फिर प्रातः स्नान आदि करके पूर्वोक्त रीति से सम्प्रदाय की मर्यादा के अनुसार तप्तमुद्राओं को धारण करै। ॥ १५२९-१५३३ ॥

देवशयनी एवं देव प्रबोधिनी के दिन द्वारका में एवं दीक्षा के समय विधिपूर्वक तप्तमुद्रा धारण करै ॥ १५३४ ॥

इस भगवान् के वचन के अनुसार पूर्वोक्त रीति से कार्तिक में मास-उपवास करके जितेन्द्रिय व्यक्ति तप्त मुद्रा धारण करै ॥ १५३५ ॥

द्वादशी को गरुड़ध्वज महाविष्णु की गन्ध धूप पुष्पादि

वस्त्रालंकारवाद्यैस्तु तोषयेच्चैव वैष्णवान् ।
स्नापयेच्च हरिं भक्त्या तीर्थचन्दनवारिणा ॥ १५३७ ॥

चन्दनेनापि लिप्तांगं पुष्पधूपैरलंकृतम् ।
वस्त्रदानादिभिश्चैव भावयेच्च सदुत्तमान् ॥ १५३८ ॥

दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।
सतः क्षमापयित्वैवातोष्याभ्यर्च्य विसर्जयेत् ॥ १५३९ ॥

एवं वित्तानुसारेण भक्तियुक्तेन शक्तितः ।
एवं मासोपवासं तु कृत्वाभ्यर्च्य जनार्द्दनम् ॥ १५४० ॥

भोजयित्वा च वैष्णवान् विष्णुलोके महीयते ।
एवं मासोपवासान्वै सम्यक् कृत्वा त्रयोदश ॥ १५४१ ॥

निर्वापयेत् ततस्तांस्तु विधिना येन तं शृणु ।
कारयेद् वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ॥ १५४२ ॥

से पूजा करै । वैष्णवों को वस्त्र अलंकार आदि से भूषित करै । भगवान को चन्दनमिश्रित तीर्थ जल से स्नान करावै, चन्दन चढ़ाकर पुष्पों का शृङ्गार करै । सज्जनों को वस्त्र आदि देकर के विदा करै ।। १५३६-१२३९ ।।

शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवै, नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करै । इस प्रकार यथा शक्ति मासोपवास और भगवत्पूजा वैष्णव भोज सेवा आदि करनेवाला विष्णु लोक में प्रतिष्ठित होता है । ऐसे कम से कम तेरह वर्ष करने के अनन्तर इसका उद्यापन करै, उसका विधान आगे बतलाते हैं, उसी के अनुसार एकादशी को व्रत करके वैष्णव को भोजन करना चाहिये ।। १५४०-१५४२ ।।

पूजयित्वा तु देवेशमाचार्यानुज्ञया हरिम् ।
सन्तोष्य केशवं भक्त्या चाभिवाद्य गुरुं ततः ॥ १५४३ ॥
तान्भोजयेत् ततः सतः पूजयित्वा यथार्हतः ।
विशुद्धकुलचारित्रान् विष्णुपूजनतत्परान् ॥ १५४४ ॥
पूजयित्वा द्विजान् सम्यग् भोजयेत्तु त्रयोदश ।
तावन्ति वस्त्रयुग्मानि भाजनान्यासनानि च ॥ १५४५ ॥
उपपटानि शुभ्राणि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि ।
दत्त्वा भगवदीयेभ्यः पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ १५४६ ॥
ततोऽनुकल्पयेच्छय्यां शस्तास्तरणसंस्कृताम् ।
साच्छादनां शुभां श्रेष्ठां सोपाधानामलंकृताम् ॥ १५४७ ॥
कारयित्वात्मनो मूर्त्ति कांचनीं च स्वशक्तितः ।
न्यसेत्तस्यां तु शय्यायामर्चयित्वा स्रगादिभिः ॥ १५४८ ॥
आसनं पादुके छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ ।
पवित्राणि च पुष्पाणि शय्यायामुपकल्पयेत् ॥ १५४९ ॥

आचार्य गुरुदेव की आज्ञानुसार भगवान की पूजा करै फिर गुरु की पूजा करै, फिर भगवद्भक्त वैष्णवों को भोजन करावै ।। १५४३-१५४४ ।।

कम से कम तेरह ब्राह्मणों को भोजन करावै उनको युगल वस्त्र और आसन देवै, उपरना (चद्दर) यज्ञोपवीत देकर पूजा करके प्रणाम करै ।। १५४५-१५४६ ।।

फिर शय्या सजावें, तकिया लगावें, बिछौना बिछावें, भगवान की स्वर्ण प्रतिमा बनवाकर उसकी पूजा करै फिर शय्या पर शयन करा देवै ।। १५४७-१५४८ ।।

आसन, खड़ाऊं, छत्र, अधोवस्त्र, उपरना, और सुगन्धित

एवं शय्यां तु संकल्प्य प्रणिपत्य च तान् सतः ।
प्रार्थयेच्चानुमोदार्थं विष्णुलोकं व्रजाम्यहम् ॥ १५५० ॥
एवमभ्यर्चिताः सन्तो वदेयुर्व्रतिनं तदा ।
गच्छ गच्छ नरश्रेष्ठ विष्णोस्स्थानमनामयम् ॥ १२५१ ॥
विमानं वैष्णवं दिव्यं सशय्यापरिकल्पितम् ।
तेन विष्णुपदं याहि सदानन्दमनामयम् ॥ १५५२ ॥
ततः सतो विसर्ज्जयेत् प्रणिपत्यानुगम्य च ।
ततस्तु ह्यर्चयेद् भक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायकम् ॥ १५५३ ॥
तां शय्यां कल्पितां सम्यग्गुरुं व्रतसमापकम् ।
प्रणम्य शिरसा शान्तो गुरवे प्रतिपादयेत् ॥ १५५४ ॥
एवं पूज्य हरिं साधून् गुरुं ज्ञानप्रदायकम् ।
* कृत्वा मासोपवासं च नरो विष्णुतनुं विशेत् ॥ १५५५ ॥

पुष्पों की वर्षा करै । नमस्कार करके उपस्थित सन्तों से प्रार्थना करै—मैं विष्णुलोक जाता हूँ ।। १५४९-१५५० ।।

व्रत करनेवाले साधक को वे सभी साधु सज्जन आज्ञा दें अच्छा जावो उस निर्विकारी धाम में जावो । फिर शय्या सहित एक विमान की भावना करें उसके द्वारा बिष्णुलोक पहुँचने के लिये सज्जन आशीर्वाद प्रदान करैं। साधक भी नमन करके उनको विदा कर देवै ।। १५५१-१५५२ ।।

फिर ज्ञान प्रदाता गुरुदेव की पूजा करै, वह शय्या व्रत-समापन करानेवाले गुरुदेव को नमस्कार करके उन्हीं के अर्पित कर देवै ।। १५५३-१५५४ ।।

---

* कृत्वा मासोपवासं च निर्वाह्य विधिवन्मुने ।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजन्नरः ॥

कृत्वा मासोपवासं च विष्णुपूजनतत्परः।
नयेच्छान्तमनाः कालं धर्मस्थः सुजितेन्द्रियः ॥ १५५६ ॥
कुलानां शतयुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।
यस्मिन् जातो महापुण्ये कुले मासोपवासकः ॥ १५५७ ॥
मासोपवासविधातुः पुण्यैस्तत्पुण्यव्रतां वरम्।
पितृमातृकुलाभ्यां च समं विष्णुपुरीं व्रजेत् ॥ १५५८ ॥
नारी वा सुमहाभागा यथोक्तव्रतमास्थिता।
कृत्वा मासोपवासाख्यं भक्तिः सञ्जायतेऽच्युते ॥ १५५९ ॥

श्रीनारद उवाच—

पीडितस्य व्रते देव मुमूर्षोर्व्रतिनस्तदा।
त्यागो वाऽनुग्रहो वापि किं नु कार्यं पितामह ॥ १५६० ॥

इस प्रकार भगवान्, ज्ञानप्रदायक गुरु और साधुओं की पूजा करके समासोपवास करनेवाला साधक विष्णुलोक की प्राप्ति कर लेता है ॥ १५५५ ॥

भगवद्भक्त मास उपवास करके जितेन्द्रियता पूर्वक शान्त-चित्त होकर समय का यापन करे तो अपनी सैकड़ों पीढियों को तारकर आप वैकुण्ठ को प्राप्त कर लेता है। जिस कुल में मासोपवास करनेवाला पैदा होता है, उस कुल के समस्त नर-नारी माता-पिता के कुलों सहित वैकुण्ठ में जा पहुँचते हैं। यदि स्त्री इस व्रत को करे तो वह महाभागा भगवत् कृपा से भक्ति सम्पन्न हो जाती है ॥ १५५६-१५५९ ॥

श्रीनारदजी ने कहा :—हे देव ! मृत्यु के मुख में पहुँचे हुए व्रत करनेवाले पीड़ित साधक को त्यागना चाहिये या उस पर अनुग्रह करना चाहिये। दोनों में से कौन-सा कार्य किया जाय ॥ १५६० ॥

ब्रह्मोवाच—

व्रतस्थं कर्शितं दृष्ट्वा मुमूर्षुं वा तपोधन ? ।
दृष्ट्वा तु वैष्णवस्तस्य कुर्यात्सम्यगनुग्रहम् ॥ १५६१ ॥
अमृतं पाययेत् क्षीरमिच्छमानं सकृन्निशि ।
यथेह न वियुज्येत प्राणैः क्षुत्पीडितो व्रती ॥ १५६२ ॥
अतिमूर्च्छान्वितं क्षीणं मुमूर्षुं क्षुत्प्रपीडितम् ।
पाययित्वामृतं क्षीरं रक्षेद्दत्त्वा फलानि च ॥ १५६३ ॥
अहोरात्रं च यो नित्यं व्रतस्थं प्रतिपालयन् ।
पयोमूलफलं दत्त्वा विष्णुलोकं व्रजेच्च सः ॥ १५६४ ॥
रक्षेत् मासोपवासस्थं आरूढं प्राणसंशये ।
न व्रतं घ्नन्ति चैतानि हविर्भक्तानुमोदितम् ॥ १५६५ ॥
क्षीरौषधं गुरोराज्ञा आपो मूलं फलानि च ।
एवं कृत्वाऽभिरक्षेत सगुडं पायसं तथा ॥ १५६६ ॥

ब्रह्माजी बोले हे पुत्र—कार्तिकी व्रत करनेवाला यदि कृश या मरणासन्न दिखाई दे तो उस पर अनुग्रह करना चाहिये ॥ १५६१ ॥

उसे इच्छानुसार दूध अमृत आदि एक बार रात्रि में पिलावै, जिससे वह भूख से न मर सकै ॥ १५६२ ॥

यदि भूख के कारण मूर्च्छित मरणासन्न हो जाय तो दूध और फल देकर उसकी रक्षा की जाय ॥ १५६३ ॥

जो दिन और रात व्रत का पालन करता है, उसे दूध मूल फलों का दान करनेवाला विष्णुलोक को जाता है ॥ १५६४ ॥

मासोपवास करनेवाला यदि मरणासन्न जैसा हो जाय तो उसे दूध औषध जल मूल फल गुड़ का पायस देकर रक्षा करै इनके लेने से उसके व्रत का भंग नहीं होता ॥ १५६५, ६६ ॥

पाययेद्रक्षितो यस्मात् समाप्नोति पुनर्व्रतम् ।
विष्णुर्व्रतं विष्णुर्दाता विष्णुर्व्रती तथा द्विज? ।। १५६७ ।।
सर्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा व्रतस्थं क्षीणमुद्धरेत् ।
यदा मुमूर्षुर्निश्चेष्टः परिम्लानोऽतिमूर्च्छितः ।। १५६८ ।।
तदा समुद्धरेत्क्षीणमिच्छन्तं विमुखस्थितम् ।
परिकल्प्य व्रतिदेहं व्रतशेषं समापयेत् ।। १५६९ ।।
यथोक्तं द्विगुणं तस्य फलं विप्रमुखोदितम् ।
तस्य शान्ता मतिर्येन पूजितो गरुडध्वजः ।। १५७० ।।
इति कल्पानुकल्पाभ्यां व्रतानामुत्तमस्य च ।
विष्णुलोकमवाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ।। १५७१ ।।
विधिर्मासोपवासस्य यथावत्परिकीर्तितः ।
सुतस्नेहान्मुनि-श्रेष्ठ सर्वलोकहिताय च ।। १५७२ ।।

व्रत भी विष्णु रूप हैं । औषधदाता व्रती और ब्राह्मण गुरु सभी विष्णु स्वरूप हैं ऐसे जान करके व्रतस्थ क्षीण व्यक्ति की रक्षा करनी चाहिये । यदि व्रत करनेवाला अत्यन्त मूर्च्छित हो जाय अलसाजाय चेष्टा रहित हो जाय तो उसी समय व्रत की समाप्ति कर देवै । जिसकी बुद्धि शान्त हो और जिसने भगवान् की पूजा की हो तथा ब्राह्मणों का करुणायुत आशीर्वाद जिसे प्राप्त हो उसको अधूरे व्रत का भी दूना फल प्राप्त हो जाता है ।। १५६७-१५७० ।।

यह समस्त व्रतों में उत्तम है कल्प-कल्पान्तरों से प्रचलित है, प्रभु की कृपा से इसे करनेवाले को विष्णुलोक की प्राप्ति होती है । हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे स्नेह के कारण सभी साधकों के हित के लिये मैंने तुम्हें इसकी यह विधि बतला दी है । ।। १५७१-१५७२ ।।

कृत्वा व्रतं ततो भक्त्या नरो विष्णुपुरीं व्रजेत् ।
नाभक्ताय प्रदातव्यं न देयं दुष्टचेतसे ॥ १५७३ ॥

ततो गुरुं च सम्पूज्य वस्त्रालंकारवस्तुभिः ।
चातुर्मास्यस्य नियमं त्यक्त्वा भुञ्जीत वैष्णवैः ॥ १५७४ ॥

नीत्वैवं कार्तिके व्रतं मार्गशिर उपन्यसेत् ।
पुनरावृत्तितश्चैवं संवत्सरव्रतं चरेत् ॥ १५७५ ॥

सपक्षमासकृत्यं च वर्षकृत्यमुदाहृतम् ।
तुभ्यं श्रीनिवासदाससम्प्रदायानुसारतः ॥ १५७६ ॥

दूषणंमुपतापीनां भूषणं सुहृदां सताम् ।
कृष्णकुमारनारदनिम्बादित्यादिसम्मतम् ॥ १५७७ ॥

कलिकाले भविष्यन्ति सम्प्रदायाभिमानिनः ।
कृष्णकुमारनारदनिम्बार्कादिमहासताम् ॥ १५७८ ॥

भक्ति पूर्वक इस व्रत का पालन करनेवाला विष्णुलोक को जाता है किन्तु किसी दुष्ट चित्तवाले अभक्त को यह न बतलाना ॥ १५७३ ॥

वस्त्र अलंकार आदि से गुरुदेव की पूजा करके चातुर्मास्य व्रत की पूर्ति करके वैष्णवों के साथ भोजन करें ॥ १५७४ ॥

इस प्रकार कार्तिक में व्रत पूर्ति के अनन्तर मार्गशीर्ष व्रत को अपनावैं। इसी प्रकार पुनरावृत्ति से सम्वतसर का व्रत धारण करैं ॥ १५७५ ॥

हमने पक्षमास और वर्ष के कृत्यों का वर्णन किया है— यह उपतापी (दुराचारियों) जनों के लिये दूषण है और सुहृद सज्जनों के लिये भूषण है। यह श्रीहंस सनक श्रीनारद निम्बार्क इन आचार्यों के सम्मत हैं ॥ १५७६-१५७७ ॥

तेषां भ्रममहाम्बुधितरणाय सुपोतवत् ।
एकादशी कृष्णोत्सवव्रतमेकं तु वर्णितम् ॥
स्वसम्प्रदायसंस्कारव्रतं वक्ष्ये सनातनम् ॥ १५७९ ॥

एकादशी स्वीयभवोत्सवादिषु
स्वाराधितस्तद्व्रततः श्रियः पतिः ।
सम्वत्सरे वै प्रतिपक्षमासतः
कालातिवेगाद्व्रतिनो व्रताद्धरिः ॥ १५८० ॥

आदौ हि यः सर्वगुरुर्हरिः स्वयं
संस्थापयामास कपालवेधतः ।
निर्वेधपक्षं मतमिष्टदं नृणां
सोऽनाथसिद्धो भगवान्प्रसीदताम् ॥ १५८१ ॥

कलियुग में बहुत से सम्प्रदायाभिमानी होंगे, किन्तु हमने यह श्रीहंस सनक श्रीनारद श्रीनिम्बार्क आदि की सम्प्रदायवालों को भ्रम समुद्र से तरने के लिये नौका के समान यह एक एकादशी कृष्ण महोत्सव व्रत बतला दिया है। अब सम्प्रदाय में संस्कार व्रत बतलाते हैं। जो सनातन से चला आ रहा है। ॥ १५७८-१५७९ ॥

एकादशी तथा भगवान् के अवतार दिवसों में व्रत के द्वारा तथा पक्ष मास वत्सर में आनेवाले विशेष व्रतों द्वारा भगवान की आराधना की जाती है। स्वयं सर्व गुरु हरि ने कपाल वेध की रीति से निर्वेध पक्ष की संस्थापना की है वही साधकों को अभीष्ट फल दाता है, वही सर्व नियन्ता प्रभु प्रसन्न हों ॥ १५८०-१५८१ ॥

नारायणं कृष्णमुदारमानसं
श्रीवासमानन्दमयं महाविभुम् ।
सद्धर्मपर्यायनिदानमीश्वरं
वन्दे मुकुन्दं भगवन्तमच्युतम् ॥ १५८२ ॥

कृष्णाय राधापतये भविष्णवे
ऐतिह्यमार्गानुगताविने नमः ।
सद्वल्लभायानुगतानुवर्तिने
वृन्दावने नित्यविहारिणे नमः ॥ १५८३ ॥

सद्धर्ममार्गं भगवान्महत्तमो
निर्माय चाचार्यनिदानविग्रहः ।
आदेशयामास सनत्कुमारतः
सन्मार्गमूलं शरणं हरिं भजे ॥ १५८४ ॥

उदार चेता आनन्दमय महाविभु नारायण श्रीपति कृष्ण सद्धर्म मूल अच्युत भगवान मुकुन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५८२ ॥

ऐतिह्य मार्गानुसार चलनेवालों के रक्षक, सज्जनों के प्राण भक्तों के पीछे पीछे फिरनेवाले वृन्दावन में नित्यविहार करनेवाले श्रीराधिकाकान्त श्यामसुन्दर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५८३ ॥

महत्तम प्रभु ने आचार्यविग्रह (हंस रूप) में प्रकट होकर सद्धर्म मार्ग की स्थापना की और उसका सनत्कुमारों को उपदेश दिया, सन्मार्ग के मूल भूत उन्हीं हरि का मैं भजन करता हूँ ॥ १५८४ ॥

कृष्णोपदिष्टमनवद्यकर्म य:
संवर्त्तयिष्यन् हरिहार्द्दकारकः।
सर्वत्र देवर्षिमकारयत् स्वयं
वन्दे तमाचार्यधरं चतु:सनम् ।। १५८५ ।।

श्रीनैष्ठिकानामवगम्य हार्द्दतो
विस्तारयामास मतं तदीयकम् ।
कुर्वन् स्वयं तच्चरितं समग्रशो
देवर्षिवर्यं तमनुव्रजाम्यहम् ।। १५८६ ।।

देवर्षिमुख्यानुमतं सुदर्शनः
संभालयामास समासमार्गतः ।
त्वां श्रीनिवासानुगवर्य सर्वथा
चात्मीयशिष्यानुपशिक्षयाधुना ।। १५८७ ।।

जिन्होंने श्रीकृष्णोपदिष्ट सद्धर्म का सर्वत्र प्रचार किया। देवर्षिवर्य नारदजी को इस मार्ग में प्रवर्त किया उन्हीं आचार्य-वर्य सनकादिकों को मैं प्रणाम करता हूँ ।। १५८५ ।।

नैष्ठिकों के सिद्धान्त को जानकर उनके मत का विस्तार किया और स्वयं ने भी उसका पालन किया उन्हीं देवर्षिवर्य का मैं अनुसरण करता हूँ ।। १५८६ ।।

देवर्षिवर्य के अनुमत का ही संक्षेप में सुदर्शन= (सुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्क भगवान) ने समर्थन किया। (उन्होंने मुझ ग्रन्थकार से कहा) हे श्रीनिवास के अनुग अब तुम अपने शिष्य प्रशिष्यों को अच्छी प्रकार से यह सिद्धान्त अवगत करावो ।। १२८७ ।।

औदुम्बर:—

एवमाज्ञापित: शिष्य: श्रीनिवासानुगाह्वय: ।
विहिताञ्जलिपुट: सन्निम्बादित्यमभाषत ॥ १५८८ ॥

संवर्णितं येन परम्परागत-
माचार्यवर्येण मतं सनातनम् ।
शास्त्रं समाहृत्य समन्ततस्त्वया
निम्बार्कनामानमुपैमि तं गुरुम् ॥ १५८६ ॥

उद्धृत्य सञ्चिन्त्य सदागमौघत:
कृत्यं सतां वा मधुपश्च पुष्पत: ।
संधारयामास सदासवं स्वयं
यस्तं तु निम्बार्कमहं भजे गुरुम् ॥ १५६० ॥

औदुम्बराचार्य (ग्रन्थकार) ने अपने गुरुदेव की आज्ञा को सुनकर दोनों हाथों को जोड़कर प्रार्थना की ॥ १५८८ ॥

हे प्रभो ! आपके द्वारा समस्त शास्त्रों से संग्रहीत करके परम्परागत सनातन सिद्धान्त का वर्णन किया गया है, उन्हीं निम्बार्क नामवाले आप गुरुदेव (आचार्यश्री) की मैं शरण मैं हूँ ॥ १५८६ ॥

जिस प्रकार पुष्पों से मधुप मधु को संचित करता है उसी प्रकार सत् शास्त्रों से उद्धृत एवं चिन्तन करके सज्जनों के कृत्य का आपने संधारण किया है। अत: आप (श्रीनिम्बार्क नामक गुरुदेव) का मैं भजन (सेवन) करता हूँ ॥ १५६० ॥

निम्बादित्यपदद्वयं शरणं मे कलौयुगे।
विपरीतजनेहिते विक्रोशतो यथाकथम् ॥ १५९१ ॥

॥ इति श्रीपरमहंस वैष्णवाचार्य श्रीनिम्बार्क भगवत्पूज्यपाद-
शिष्येणौदुम्बरर्षिणा कृत एकादशीकृष्णजन्मोत्सव
व्रतनिर्णयः समाप्तः ॥

जयति सततमाद्यं राधिकाकृष्णयुग्मं
व्रतसुकृतनिदानं यत्सदैतिह्यमूलम् ।
विरलसुजनगम्यं सच्चिदानन्दरूपं
व्रजवलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम् ॥१५९२॥
कुमारदेवर्षिसुदर्शनान् गुरून्
परम्पराकारणविग्रहान् स्वकान् ।
प्रणम्य वक्ष्ये सुविनिर्णयं कृतं
स्वैतिह्यसंस्कारविधि व्रतस्य तैः ॥ १५९३ ॥

सद्धर्म के विरुद्ध आचरण करनेवालों के हितैषी कलियुग में व्याकुल चित्त मुझको श्रीनिम्बादित्य प्रभु के युगल चरण-कमलों का ही अवलम्ब है ॥ १५९१ ॥

यह एकादशी कृष्ण जन्मोत्सव व्रत पूर्ण हुआ।

सत् ऐतिह्य के मूल सुकृत व्रत के आद्य प्रवर्तक विरले भक्तों द्वारा प्राप्त होने योग्य सत्चित् आनन्द स्वरूप नित्य वृन्दावन में विराजमान रहते हुए व्रजमण्डल में विहार करने-वाले श्रीराधाकृष्ण युगल की सदा सर्वदा जय हो ॥ १५९२ ॥

श्रीसनकादिक श्रीनारद और सुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्क इन सब परम्परा प्रवर्तक अपने गुरु एवं परम गुरुओं को प्रणाम करके उनके द्वारा जो अच्छी प्रकार से विनिर्णय किया गया। उस स्वैतिह्य संस्कार विधान को अब मैं कहता हूँ ॥ १५९३ ॥

तं श्रीनिवासानुगतं महीयसं
स्वशिष्यमुख्यं निजहार्द्दधारिणम् ।
निम्बार्क आचार्यवरोऽब्रवीत्पृथक्
स्वैतिह्य संस्कारविधिव्रतं ध्रुवम् ॥ १५९४ ॥
त्वं श्रीनिवासानुग सन्निबोध मे
समुच्यमानं विविधार्थसंगतम् ।
स्वैतिह्यसंस्कारविधिव्रतं शुभं
राधामुकुन्दांघ्रितयानुदर्शनम् ॥ १५९५ ॥
पारम्पर्यागतं धर्मं यावन्न साधयेत् सुधीः ।
तावत् किमपि नेहेत सम्प्रदायविवर्जितम् ॥ १५९६ ॥
ऐतिह्यबहिरास्यस्य विफलत्वाद्धि सर्वथा ।
समीहितस्य सर्वस्य नन्दो भागवते तथा ॥ १५९७ ॥

"श्रीनिवास के अनुगत रहनेवाले अपने शिष्यों में मुख्य महत्तावाले स्वसिद्धान्त को धारण करनेवाले उस (मुझ औदुम्बर) को आचार्यवर्य श्रीनिम्बार्क ने अटल स्वैतिह्य संस्कार विधान का व्रत खोलकर बतलाया ॥ १५९४ ॥

श्रीनिम्बार्क भगवान ने कहा—श्रीनिवासानुग ! अनेकानेक अर्थों से संगत मेरा कहा हुआ स्वैतिह्य संस्कार विधिव्रत को तुम मुझसे सुनो जिससे श्रीराधा मुकुन्द के चरण कमलों का दर्शन प्राप्त हो सके ॥ १५९५ ॥

जब तक कोई विद्वान् यदि परम्परागत धर्म का साधन न करै तो सम्प्रदाय वहिर्मुख वह व्यक्ति अन्य भी चेष्टा न करै ॥ १५९६ ॥

ऐतिह्य (सम्प्रदाय परम्परा) से वहिर्भूत साधक की सभी साधना निष्फल है । जैसा कि भागवत में नन्द के सम्पूर्ण समीहितों को निष्फल बतलाया है ॥ १५९७ ॥

य एवं विसृजेद् धर्मं पारम्पर्यागतं नरः।
कामाल्लोभाद्भयाद् द्वेषात् स वै नाप्नोति शोभनम् ॥१५९८

कुमारा :—

पारम्पर्यागतं कर्म त्यक्त्वा किमपि नाचरेत्।
सम्प्रदायविहीनं यत्तत्सर्वं विफलं मतम् ॥ १५९९ ॥

नारद :—

योगा ऐतिह्यहीना ये वासुदेवपदाप्तये।
साधिता अपि सांगास्ते सर्वथा निष्फलाः कृताः ॥ १६०० ॥

ऐतिह्यविहितं धर्मं त्रिनैवं निष्फलं त्वतः।
ऐतिह्ये ह्यव्रतं कुर्यात्सर्वेहाभावरूपकम् ॥ १६०१ ॥

ऐतिह्यसंस्क्रियां यावन्न साधयेद्विधानतः।
तावत्किमपि नेहेत स्वैतिह्यसंस्क्रियां विना।
समीहितस्य सर्वस्य निष्फलत्वाद्धि सर्वथा ॥ १६०२ ॥

जो इस प्रकार परम्परागत धर्म को काम लोभ भय अथवा द्वेष से छोड़ देता है उसे अच्छा फल नहीं मिल पाता। ॥ १५९८ ॥

सनत्कुमारों का कथन है—

परम्परागत धर्म को छोड़कर कुछ भी सत्कर्म न करें, क्योंकि–सम्प्रदाय विहीन सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥१५९९॥

श्रीनारदजी ने कहा है—

भगवत्प्राप्ति के लिये ऐतिह्यहीन समस्त सांग योग भी निष्फल ही हो जाते हैं ॥ १६०० ॥

जब तक विधान पूर्वक ऐतिह्य संस्कार का साधन न किया जाय तब तक समस्त चेष्टायें अभाव रूप ही हैं। उन्हें

तथा पाद्मे—(चक्रसंस्कारः)

शंखचक्रादिभिश्चिह्नै विप्रः प्रियतमैर्हरेः।
रहितः सर्वधर्मेभ्यः प्रच्युतो नरकं व्रजेत् ॥ १६०३ ॥
चक्रलांछनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत्।
कालत्रये कृतं यत्तदलांछनेऽर्पितं यथा ॥ १६०४ ॥
विष्णुचक्रविहीनं तु यः श्राद्धे भोजयिष्यति।
व्यर्थं भवति तत्सर्वं निराशां यान्ति पूर्वजाः ॥ १६०५ ॥
चक्रचिह्नविहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत्।
क्रियमाणं तु यत्किंचिद्वैष्णवानां विशेषतः ॥ १६०६ ॥
एवं तापं विना कर्म विदधद्विफलं भवेत्।
यत्किंचिदपि संस्कारं तस्माद्यावन्न धारयेत् ॥
तावत्तु तापसंस्कारव्रतं चेष्टां त्यजंश्चरेत् ॥ १६०७ ॥

ऐतिह्य में अव्रत जानें। क्योंकि सम्प्रदायविहीन सभी कर्त्तव्य निष्फल माने गये हैं ॥ १६०१-१६०२ ॥

पद्मपुराण में चक्र संस्कार का विधान इस प्रकार बतलाया है :—

जो ब्राह्मण भगवत्प्रिय शंख चक्रादि से रहित है तो समझ लो वह समस्त धर्मों से च्युत है, अतः वह नरक में जायेगा ॥ १६०३ ॥

तीनों कालों में चक्र साधनहीन ब्राह्मण के किये हुए कर्म व्यर्थ हैं ॥ १६०४ ॥

सुदर्शन चक्र के चिह्न से हीन व्यक्ति को श्राद्ध में भोजन कराना व्यर्थ है, उसके भोजन कराने से श्राद्ध करनेवाले के पितर निराश हो जाते हैं। चक्र की छाप लिये बिना वैष्णव

अथ ऊर्ध्वपुण्ड्रसंस्कार :—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं च संस्कारं न यावद्धारयेत्सुधीः ।
तावत् किमपि नेहेत तिलकं संस्क्रियां विना ॥ १६०८ ॥

समीहितस्य सर्वस्य विफलत्वाद्धि सर्वथा ।
स्कान्दे तथाह भगवान् गुरुरपि गरीयसाम् ॥ १६०९ ॥

यशो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मीभवन्ति तत्सर्वं ऊर्ध्वपुण्ड्रविना कृतम् ॥ १६१० ॥

पाद्मे —

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु किंचित्कर्म करोति यः ।
इष्टापूर्तादिकं सर्वं निष्फलं स्यान्न संशयः ॥ १६११ ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकं चरेत् ।
तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं चापि गच्छति ॥ १६१२ ॥

ब्राह्मण के किये हुए सब कर्म निष्फल हो जाते हैं। जब तक ताप संस्कार न हो जाय तब तक के समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं अतः ताप संस्कार अवश्य होना चाहिये ।।१६०५-१६०७।।

इसी प्रकार उद्ध्र्वपुण्ड्र (तिलक) संस्कार किये बिना भी कुछ नहीं करना चाहिये स्कन्द पुराण में भगवान के वाक्य हैं— ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) किये बिना जो कोई सत्कर्म भी करै तो उससे होनेवाले यश दान तप होम स्वाध्याय पितृ तर्पण आदि सब भस्मवत् हो जाते हैं ।। १६०८-१६१० ।।

पद्मपुराण में भी ऐसा ही कहा है :—उद्ध्र्वपुण्ड्र बिना किये हुए ईष्टापूर्तादिक सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। उसके किये हुए सन्ध्या आदि नित्य कर्मों का फल राक्षसों को प्राप्त

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥ १६१३ ॥

ब्राह्मे—

यागो दानं तथा होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥ १६१४ ॥

एवं विनोर्ध्वपुण्ड्रं स्याद् विफलो धर्ममाचरन् ।
तस्माद् यावन्न बिभ्रयात् संस्कारमूर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
तावत्तिलकसंस्कारव्रतं क्रियां त्यजंश्चरेत् ॥ १६१५ ॥

अथ नामसंस्कारः—

कृष्णदासादिकं नाम संस्कारं यावदात्मनि ।
निजगुरुप्रसादेन प्रसिद्धं नैव धारयेत् ॥ १६१६ ॥

तावत्किमपि नेहेत सन्नामसंस्क्रियां विना ।
समीहितस्य सर्वस्य निष्फलत्वात्तु सर्वथा ॥ १६१७ ॥

होता है और वे कर्म करनेवाले नरक भोगते हैं। उनके किये हुए स्नान दान जप होम स्वाध्याय पितृ तर्पण सब व्यर्थ हैं। ॥ १६११-१६१३ ॥

यही आशय ब्रह्मपुराण के वचनों का है—उद्ध्वंपुण्ड्र किये बिना यज्ञ याग हवन दान स्वाध्याय तर्पण निष्फल हैं जब तक ऊद्ध्वंपुण्ड्र न करे तब तक उसका कोई भी धर्माचरण-फल नहीं देता ॥ १६१४-१६१५ ॥

नाम संस्कार :—

जब तक गुरुदेव की कृपा प्राप्त करके कृष्णदास आदि भगवंतसम्बन्धी नाम धारण न करे तब तक नाम संस्कार के बिना किसी भी सत्कार्य में सफलता नहीं मिल पाती ॥१६१६-१६१७॥

तथा नारायणानुशासने हरिः—

नामान्तरेण संस्कारं यद् यत्समाचरेन्नरः।
तत्सर्वं विफलं ज्ञेयं बीजमुप्तं यथोषरे॥ १६१८॥

ऋते तु नामसंस्कारात् सद्धर्ममपि चाचरन्।
व्यभिचारं सदाप्नोति फलकाले त्वसंस्कृतः॥ १६१९॥

कुमाराः—

असम्प्राप्य गुरोः साक्षान्नामसंस्कारमुत्तमम्।
हरिदासादिकं सिद्धं नाप्नोति सत्क्रियाफलम्॥ १६२०॥

नामसंस्कारहीनेन कृतं न कुत्रचित् फलेत्।
सदपि कर्म विप्रेन्द्र भस्महुतं हविर्यथा॥ १६२१॥

नारदः—

विना नाम चरन् धर्म रिक्तो भवति मन्दधीः।
मुकुन्दनामसंस्कारविहीनस्तु बहिर्मुखः॥ १६२२॥

विदधदपि सद्धर्मं फलं न पश्यति ध्रुवम्।
कृष्णभक्तिविहीनो वा पाषंडार्पितवैभवम्॥ १६२३॥

नारायण अनुशासन में भगवान के ऐसे भाव के वचन हैं, जिस प्रकार ऊषर भूमि में बीज नहीं जमता उसी प्रकार नाम संस्कार बिना सद्धर्म के आचरणों से भी यथेष्ट फल नहीं मिल सकता॥ १६१८-१५१९॥

ऐसे ही सनत्कुमारों के वचन हैं:—गुरुदेव से नाम संस्कार कराये बिना सत्कर्मों का फल नहीं मिलता। भस्म में दी हुई आहुतियों की भाँति निष्फल समझना चाहिये॥ १६२०, २१॥

श्रीनारदजी ने भी ऐसे ही कहा है:—

मुकुन्द आदि भगवन्नामों से रिक्त मूर्ख चाहे कितना ही

एवं स्यान्नामसंस्कारं विना रिक्तः क्रियां चरन् ।
तस्माद् यावन्न बिभृयान्नामसंस्कारमात्मनि ॥
तावत्तु नामसंस्कारव्रतमीहां त्यजंश्चरेत् ॥ १६२४ ॥

अथ मन्त्रसंस्कार:—

अष्टादशाक्षरं मन्त्रं यावद्गुरोर्न धारयेत् ।
तावत् किमपि नेहेत सन्मन्त्रसंस्क्रियां विना ।
समीहितस्य सर्वस्य निष्फलत्वाद्धि सर्वथा ॥ १६२५ ॥

तथा विष्णुः —

सन्मन्त्रसंस्क्रियाहीनो वैदिकं लौकिकं चरन् ।
अपि कर्मफलं नैति मूलहीनो यथा तरुः ॥ १६२६ ॥
मन्त्रहीनो नरो नित्यं रिक्तो ज्ञेयो बहिर्मुखः ।
मन्त्रराजवियुक्तो यो नावाप्नोति क्रियाफलम् ॥ १६२७ ॥

आगमे कुमारा :—

अष्टादशाक्षरं मन्त्रं योऽगृहीत्वा गुरोर्मुखात् ।
आचरन् सर्वकर्माणि न क्रियाफलमाप्नुयात् ॥ १६२८ ॥

सत्कर्म क्यों न करे सब निष्फल हैं। उस भगवद्भक्ति हीन को पाषण्डी समझना चाहिये ।। १६२२-१६२४ ।।

• मन्त्र संस्कार :—

अष्टादशाक्षर आदि मन्त्र जब तक गुरुदेव से प्राप्त न करें तब तक भी जप आदि समस्त सत्कर्म निष्फल हैं ।। १६२५ ।।

इसी भाव के विष्णु वाक्य हैं :—जिस प्रकार मूल जड़हीन वृक्ष के फल नहीं आता उसी प्रकार बिना मन्त्र संस्कार के जप आदि समस्त क्रियायें निष्फल हैं ।। १६२६ २७ ।।

आगम में सनकादिकों ने कहा है :—

जो अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्र या मुकुन्द मन्त्र को गुरुदेव

कृष्णमन्त्रविहीनस्य कुर्वतो धर्मसंग्रहम् ।
पाकनिदानरहितं कृतं सर्वमनर्थकम् ॥ १६२९ ॥

नारदः—

हरिमनुरहितः कर्माचरन्यो मनुष्यः
सकलमपि सविद्यः सारहीनो यथा द्रुः ।
न तु फलमधिगच्छेत् कर्मणस्तस्य साक्षा-
द्धरिगुरुबहिरास्यः स्यात्स विष्वक् निरासः ॥१६३०॥

एवं स्यान्मंत्रसंस्कारं विना रिक्तः क्रियां चरन् ।
तस्माद्यावन्न बिभृयान्मन्त्रं संस्कारमुत्तमम् ।
तावत्तु मन्त्रसंस्कारव्रतं चरेत्क्रियां त्यजन् ॥ १६३१ ॥

अथ याग-संस्कार :—

यावद् यागं च संस्कारं न बिभृयाद्यथार्हतः ।
तावत्किमपि नेहेत सुयागसंस्क्रियां विना ॥
समीहितस्य सर्वस्य विफलत्वाद्धि सर्वथा ॥ १६३२ ॥

से बिना ही लिये कोई कर्म करते हैं उनके वे सब कर्म निष्फल हो जाते हैं। उसके द्वारा किया धर्मसंग्रह भी विधि विपरीत पाक की तरह अनर्थ कारक बन जाता है ॥ १६२६-१६२६ ॥

श्रीनारदजी ने भी यही कहा है :—

भगवान् के मन्त्र की दीक्षा न लिया हुआ चाहे कैसा भी विद्वान् क्यों न हो वह सारहीन वृक्ष की तरह है, उस हरिगुरु विमुख को कर्मों के अभीष्ट फल नहीं मिलते वह सब प्रकार से निरास हो जाता है ॥ १६३० ॥

मन्त्र संस्कार के बिना कर्म करनेवाला फलों से रीता रहता है, इसलिये मन्त्र संस्कार व्रत का आचरण अवश्य करना चाहिये ॥ १६३१ ॥

तथा स्मृतौ—

अनिष्ट्वा यो हरिं त्वादावन्य-कर्म समाचरेत् ।
अविपाको निराशः स्यादेकं यागं विना हि सः ॥ १६३३ ॥

आगमे—

अविहितहरियागो लौकिकं वैदिकं वा
सततमपि चरन् धर्मं मनुष्यः प्रवीणः ।
नच फललवलेशं प्राप्नुयात्तु प्रयत्नै-
रकृतमखिलमेव स्याद्विना यागमेकम् ॥ १६३४ ॥
एवं स्याद् यागसंस्कारं विना रिक्तश्चरेत् क्रियाम् ।
तस्माद्यावन्न विभृयाद् यागसंस्कारमञ्जसा ॥ १६३५ ॥
तावत्तु यागसंस्कारव्रतं चेष्टां त्यजंश्चरेत् ।
नित्यनैमित्तिकं धर्मं पारम्पर्यागतं ध्रुवम् ।
आवश्यकं समीहेताहारादिकं त्यजन् व्रती ॥ १६३६ ॥

याग संस्कार :—ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र और पाँचवां संस्कार याग है, याग संस्कार बिना भी सभी कर्म निष्फल ही रहते हैं ॥ १६३२ ॥

जो भगवान् का भजन न करके अन्य कर्मों का आचरण करता है वह निरास ही रहता है ॥ १६३३ ॥

आगम में कहा है भगवान् का भजन पूजन किये बिना जो मनुष्य वैदिक या लौकिक धर्म का आचरण करता है वह चाहे कितना ही प्रयत्न करै भगवत् पूजन के बिना उसे किसी का कुछ भी फल प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १६३४ ॥

इसलिये सर्वप्रथम भगवत् याग करना चाहिये । परम्परागत नित्य नैमित्तिकों में आवश्यक स्नान सन्ध्या वन्दनादि नित्य

संस्कारान्यं च सेवेताहारादिकं त्यजन् व्रती ।
एवं स्वैतिह्यसंस्कारविधिव्रतं समाचरेत् ॥ १६३७ ॥

राधामुकुन्दौ व्रजभूमिसंस्थितौ
वृन्दावने रासविलासकारिणौ ।
स्वैतिह्यसंस्कारविधिव्रतांगकै-
राराधितौ नो व्रततः प्रसीदताम् ॥ १६३८ ॥

चतुःसनं नारदमात्मनो गुरुं
स्वैतिह्यसंस्कारविधव्रत-करौ ।
नमामि नित्यं सुहृदौ जगद्गुरू
कृष्णावतारौ भजनानुवर्तिनौ ॥ १६३९ ॥

कर्मपूर्वक भगवद् याग (पूजनादि) के अनन्तर नैमित्तिक और आहारादि करै ॥ १६३५-१६३६ ॥

इस प्रकार स्वैतिह्य संस्कार (वैष्णवों के पञ्च संस्कारों के) विधान व्रत का आचरण करै ॥ १६३७ ॥

स्वैतिह्य संस्कार विधिव्रत द्वारा आराधित व्रजमंडलस्थ श्रीवृन्दावन में रासविलास करनेवाले श्रीराधा मुकुन्द प्रभु इस व्रत से हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १६३८ ॥

श्रीनिम्बार्काचार्य की उक्ति है :—

चारों सनकादिक और अपने साक्षात् गुरु श्रीनारदजी दोनों जगद्गुरु स्वैतिह्य संस्कार विधिव्रत के पालक और प्रचारक हैं। ये श्रीकृष्ण के ही अंशकला रूप अवतार उनके भजन में ही तत्पर रहनेवाले हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६३९ ॥

त्वं श्रीनिवासदासैवं विद्धि संक्षेपवर्णितम् ।
स्वैतिह्यसंस्क्रियाविधिव्रतं कृष्णानुशीलनम् ॥ १६४० ॥

वन्दे निम्बार्कपादाब्जं सर्ववाञ्छितदायकम् ।
स्वैतिह्यसंस्क्रियाविधिव्रतं वेद्मि तु यद्रु चा ॥ १६४१ ॥

स्वैतिह्यसंस्कारविधिव्रतं तु यो
दध्यात् सदैवं सुविधानपूर्वकम् ।
तस्याञ्जसा भागवतस्य दुर्लभा
सर्वेश्वरे नन्दसुते रतिर्भवेत् ॥ १६४२ ॥

॥ इति श्रीपरमहंस वैष्णवाचार्य श्रीनिम्बार्कभगवत्पूज्यपाद-
शिष्येणौदुम्बरर्षिणा कृते स्वैतिह्यसंस्कार-
विधिव्रतनिर्णयः ॥

हे श्रीनिवास के अनुग ! हमने तुम्हें संक्षेप में स्वैतिह्य संस्कार विधिव्रत द्वारा श्रीकृष्ण की उपासना का विधान बतला दिया है ॥ १६४० ॥

इस प्रकार स्वैतिह्य संस्कार विधिव्रत और श्रीराधाकृष्ण की उपासना बतलाकर समस्त अभीष्टों की पूर्ति करनेवाले भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य के चरणकमलों में मेरा नमस्कार है। उन्हीं से मुझे यह व्रतविधि प्राप्त हुई है ॥ १६४१ ॥

जो स्वैतिह्य संस्कार विधिव्रत को विधानपूर्वक सदा अपनाता है उसकी श्रीसर्वेश्वर श्यामसुन्दर के चरणों में सरलता से ही रति हो जाती है ॥ १६४२ ॥

यह स्वैतिह्यसंस्कार विधिव्रत पूर्ण हुआ।

व्रजपतिसुतयोर्वृन्दावने संस्थयो....................
श्रीयुतपदपंकजयोः श्रीराधिकाकृष्णयोर्वै ॥ १६४३ ॥

चरणकमलकोशाम्भस्तथा वक्त्रशेषं
सततमहमिहास्ये स्वादयन् सेवयिष्यन् ।
गदितमखिलसारज्ञैः प्रवक्ष्येऽनुवादैः
सकलसुजनहार्द्दार्थिं पृथग् दर्शयिष्यन् ॥ १६४४ ॥

निखिलहरिसतां कार्यं पदाम्भः प्रसाद-
व्रतमनुगवराणां वैष्णवानां सहाय्यात् ॥ १६४५ ॥

श्रीश्रीनिवासानुगतं प्रबोधयन्
शिष्येश्वरं कृष्णपदाब्जसंश्रितम् ।
अङ्घ्रिप्रसादव्रतमेकचेतसा
निम्बार्क आचार्यवरोऽब्रवीन्मुनिः ॥ १६४६ ॥

भो श्रीनिवासानुग कृष्णपादभाग्
भक्तानुकूलं विशदं सुखावहम् ।

व्रजराजसुता और व्रजेन्द्रनन्दन श्रीराधाकृष्ण के चरणों में प्रणाम ॥ १६४३ ॥

गुरुदेव के चरणकमलों के अम्बुकरणों का पान करके उनके ही मुखारविन्द से सुने हुए अंध्रि प्रसाद व्रत के सार रूप अनुवाद को यहाँ समस्त सुजनों के कल्याण के लिये प्रदर्शित करूँगा ॥ १६४४ ॥

समस्त हरि भक्तों को वैष्णवों की सहायता से अङ्घ्रि प्रसाद व्रत अपनाना चाहिये ॥ १६४५ ॥

भगवान श्रीनिम्बार्काचार्य ने अपने शिष्यों में प्रधान श्रीनिवासाचार्य को यह व्रत बतलाया था ॥ १६४६ ॥

अंघ्रिप्रसादव्रतमंजसा शुभं
वक्ष्यामि चाकर्णय शुद्धचेतसा ॥ १६४७ ॥
यावन्न लभ्येत पदामृतादिकं
कृष्णस्य नानातनुधारिणो हरेः ।
तावन्न चान्यत् सलिलादिकं पिबेत्
कृष्णांघ्रिपाथोव्रतमाचरन् ध्रुवम् ॥१६४८॥

तथा स्कान्दे—

पादोदकं शंखजलं विलोकितं
कृष्णस्य विष्णोस्तुलसीविमिश्रितम् ।
नैवेद्ययुक्तं च तथाऽन्यदार्पितं
नीरं विनान्यन्न पिबेद्व्रती हि सः ॥ १६४९ ॥
नारायणांघ्रिव्रतमेकचेतसा
ये वै न कुर्वन्ति नरास्तु निष्फलाः ।

मुझ (औदुम्बराचार्य) से भी कहा :—

हे श्रीनिवासानुग ! तुमको अंघ्रिप्रसाद व्रत सरल रीति से बतला रहा हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १६४७ ॥

जब तक अनेकों अवतार धारण करनेवाले प्रभु का चरणोदक पान न करले तब तक इस व्रत का व्रती अन्य जल न पीवै ॥ १६४८ ॥

स्कन्दपुराण में कहा है, तुलसी मिश्रित शंख के जल से भगवान् (श्रीसर्वेश्वर शालिग्राम) को स्नान कराया हुआ चरणोदक और उनके भोग लगा हुआ नैवेद्य न मिलै तब तक इस व्रत का व्रती अन्य किसी के चढ़ा हुआ जल ग्रहण न करे। ॥ १६४९ ॥

तेषां हि लोकेषु सुखं न विद्यते
कृष्णांघ्रिपाथः पिबतां विनाऽन्यतः ॥१६५०॥

गारुडे—

जलं न येषां तुलसीविमिश्रितं
पादोदकं चक्रशिलासमुद्भवम्।
नित्यं त्रिसन्ध्यं प्लवते न गात्रं
खगेन्द्र ते धर्मबहिष्कृता नराः ॥ १६५१ ॥

महिमा स्कान्दे—

चान्द्रायणाच्चैव तथैव कृच्छ्रतो
नानाविधाच्चापि महाव्रताद् दृढात्।
श्रीवासुदेवांघ्रिजलव्रतं द्विज
मन्येऽधिकं कृष्णजनाश्रितं शुभम् ॥ १६५२ ॥
एवं मुकुन्दांघ्रिजलादिकं पिबन्
नैवत्यजन् कृष्णबहिर्मुखं युवम्।
गोविन्दपादाब्त्रतमुत्तमं ध्रुवं
नित्यं प्रकुर्वीत विशेष-वैष्णवः ॥ १६५३ ॥

जो मनुष्य 'भगवच्चरणोदक' पान का व्रत जब तक एकाग्रचित्त से नहीं अपनाते तब तक उन्हें सुख नहीं मिलता, लोक में उनके सत्कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥ १६५० ॥

ऐसा ही गरुड़ पुराण का वाक्य है :—

जिनके शरीर को तुलसी मिश्रित शालिग्राम भगवान को स्नान कराया हुआ जल नित्य तीनों कालों में स्पर्श न करता हो हे गरुड़ उन मनुष्यों को धर्म वहिष्कृत समझना चाहिये ॥१६५१॥

कृच्छ्रचान्द्रायण आदि महा व्रतों से भी हे द्विज ! कृष्ण-प्रसादाङ्घ्रि व्रतवाले भक्तों को मैं विशिष्ट मानता हूँ ॥ १६५२ ॥

कृष्णावशेषं न लभेत यावता
तावत्तु भक्ष्यादिकमुद्धृतं यथा।
गोविन्दसंस्पर्शविवर्जितं वसु
वर्ज्यं त्यजन् कृष्णनिवेदितव्रतम् ॥ १६५४ ॥

कुर्वीत विष्णोर वशेषवर्जिता-
न्नाद्यादने तौ प्रतिषेधनिंदनात्।
भीतश्च नानानरकार्णवाद्दं ना-
द्दामोदरोच्छिष्टसुभोजनाग्रहः ॥ १६५५ ॥

कृष्णप्रसादव्यतिरिक्तभक्षणे
निषेधनिन्दानरकं तथेर्यते ॥ १६५६ ॥

ब्रह्माण्डे—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं अन्नपानाद्यमौषधम्।
अनिवेद्य न भुंजीत यदाहाराय कल्पितम् ॥ १६५७ ॥

इस प्रकार चरणोदक पान का व्रत विशिष्ट वैष्णव को अवश्य अपनाना चाहिये ॥ १६५३ ॥

जब तक 'भगवत्प्रसादी' न मिलै तब तक भगवत्प्रसादी के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का सेवन न करै ॥ १६५४ ॥

भगवत्प्रसादी के अतिरिक्त अन्नादि के भक्षण का प्रतिषेध तथा निन्दा की गई हैं, ऐसा करनेवाले को अनेकों नरकों की यातना भोगनी पड़ती है, इसलिये भगवत्प्रसादी के भोजन का ही आग्रह शास्त्रों में मिलता है ॥ १६५५ ॥

भगवत्प्रसादी के अतिरिक्त खान-पान का निषेध और निन्दा की गई है क्योंकि उससे नरक भोगना पड़ता है ॥१६५६॥

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है—

अनिवेद्य प्रभुंजानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः।
तस्मात् सर्वं निवेद्यैव विष्णौ भुञ्जीत नान्यथा ॥१६५८॥
अवैष्णवानामन्नं च पतितानां तथैव च।
अनर्पितं तथा विष्णोः श्वमांससदृशं भवेत् ॥ १६५९ ॥

पाद्म गौतमः—

अम्बरीष गृहे पक्वं यदभीष्टं सदात्मनः।
अनिवेद्य हरौ भुञ्जन् सप्तजन्मानि नारकी ॥ १६६० ॥
गोविन्देऽनर्पयित्वा यो भुंक्ते धर्मविवर्जितः।
शुनोविष्ठासमं चान्नं नीरं तत्सुरया समम् ॥ १६६१ ॥

अपने खान-पान की वस्तु पत्र पुष्प फल दूध अन्न आदि औषधों को भगवान् के अर्पण किये बिना उपयोग में न लेवै ॥ १६५७ ॥

प्रभु के निवेदित किये बिना खाने-पीने से मनुष्य प्रायश्चिती हो जाता है, इसलिये सब कुछ प्रभु के अर्पण करके ही अपने उपयोग में लेवै ॥ १५५८ ॥

अवैष्णवों और पतितों का अन्न कुत्ते के मांस के समान निन्द्य है, उसी प्रकार भगवान् के अर्पित न किया हुआ अन्न आदि भी निन्दनीय है ॥ १६५९ ॥

पद्मपुराण में उक्त गोतम के वाक्यों का भाव—

हे अम्बरीष! घर में अपनी इच्छा के अनुसार बनवाये हुए पक्वान्न यदि भगवान के भोग लगाये बिना ही खाता हो तो वह सात जन्मों तक नरक की दुःखद यातना को भोगता है ॥ १६६० ॥

जो अधर्मी भगवान को अर्पित किये बिना ही खा लेता है

अनिवेद्य च यो भुंक्ते हरये परमात्मने।
मज्जंति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः ॥ १६६२ ॥
एवं कृष्णप्रसादान्य—भक्षणे दोषभीतिमान्।
कृष्णप्रसादमेवान्नं स्वीकुर्वाणो व्रती भवेत् ॥ १६६३ ॥

तथा गारुडे—

पादोदकं पिबेन्नित्यं नैवेद्यं भक्षयेद्धरेः।
शेषाः स्वमस्तके धार्या इति वेदानुशासनम् ॥ १६६४ ॥

पाद्मे गौतम :—

अम्बरीष नवं वस्त्रं फलमन्नं रसादिकम्।
कृत्वा कृष्णोपभोग्यं हि सदा सेव्यं च वैष्णवैः ॥ १६६५ ॥

वह अन्न स्वान की विष्ठा के समान और जल सुरा (मदिरा) के समान समझना चाहिये ।। १६६१ ।।

जो परमात्मा के अर्पण न करके स्वयं खा लेता है उसके पितर निरन्तर नरक में डूबे रहते हैं ।। १६६२ ।।

इस प्रकार कृष्ण प्रसादी से अन्य वस्तुओं को भक्षण करनेवाला दोषी माना जाता है और कृष्णप्रसादी अन्न लेनेवाला व्रती कहलाता है ।। १६६३ ।।

गरुड पुराण में कहा है :—

चरणोदक नित्य लेवै, भगवान का प्रसाद प्रतिदिन लेता रहै। पेट भरने के पश्चात् जो कुछ बचै उसे मस्तक पर धारण करैं। ऐसा वेदादि शास्त्रों का अनुशासन है ।। १६६४ ।।

पद्मपुराण में गौतमजी ने कहा है :—

हे अम्बरीष ! नवीन वस्त्र, फल, अन्न, रस आदि को भगवान् के अर्पित करके ही उनका सेवन करना चाहिये।

कृष्णशेषव्रतस्यैव माहात्म्यं स्कान्दके तथा।
षड्भिर्मासोपवासैश्च यत्फलं परिकीर्तितम्।
विष्णोर्नैवेद्यशिष्टेन फलं तद्भुञ्जतां कलौ॥ १६६६॥

ब्राह्मण्डे—

मुकुन्दाशनशेषं तु यो हि भुंक्ते दिने दिने।
सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम्॥ १६६७॥

भविष्ये—

भक्तिः सुलक्षणा देवस्मृतिः सेवा स्ववेश्मनि।
स्वभोज्यस्यार्पणादाने फलमिन्द्रादिदुर्लभम्॥ १६६८॥
कृष्णान्नव्रतिनः पुंसः सर्वव्रताधिकं फलम्।
तस्मात् कृष्णप्रसादान्नं सेवेत तद्व्रताग्रहात्॥ १६६९॥

भगवान् की प्रसादी का माहात्म्य स्कन्द पुराण में बतलाया है— जितना जैसा फल छः मास के व्रत उपवास से मिलता है। कलियुग में वह भगवान् की नैवेद्य प्रसादी से प्राप्त हो जाता है। ॥ १६६५-१६६६॥

ब्रह्माण्ड पुराण में बतलाया है कि भगवान् की प्रसादी के एक एक ग्रास से सैकड़ों चान्द्रायण व्रतों से भी अधिक फल मिल जाता है॥ १६६७॥

भविष्य पुराण में कहा है :—

भगवान का स्मरण मन्दिर की सेवा और सुलक्षणा भक्ति एवं भगवान् की प्रसादी इन्द्र आदि देवों को भी दुर्लभ है। ॥ १६६८॥

भगवत्प्रसादी के व्रतवाले को समस्त व्रतों के फल से भी अधिक फल मिलता है, इसलिये प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। ॥ १६६९॥

एवं कृष्णप्रसादान्नादन्यान्नं परिवर्जयन् ।
कृष्णान्नमेव भुंजानः प्रसादव्रतमाचरेत् ॥ १६७० ॥

इत्येवं सूचितं स्वल्पं प्रसादान्नव्रतं शुभम् ।
कुर्वन् सर्वव्रतफलं समाप्नुयात्प्रसादभुक् ॥ १६७१ ॥

पादोदकप्रसादान्नव्रतमेवं निरूपितम् ।
श्रीनिवास विधिकर तवाग्रे मे समासतः ॥ १६७२ ॥

कृष्णबहिर्मुखान्नादेर्वेधोत्रापि विवर्जितः ।
एकादश्युपवासादौ वा दशम्यादिवेधकः ॥ १६७३ ॥

चरणसलिलमुख्यं राधिकाकृष्णभुक्त-
मशनवसनमुख्यं भुंजतां नित्यमेव ।
स्वविधिकरवराणां राधिकाकृष्णदेवौ
स्वपदसलिलशेषान्नव्रतं स्वं विधत्ताम् ॥ १६७४ ॥

इस प्रकार भगवत्प्रसादी के अतिरिक्त अन्य अन्न का उपभोग न करै । प्रसादी पाने का व्रत ले लेवै ॥ १६७० ॥

संक्षेप में यही कहना है कि समस्त व्रतों का फल स्वल्प-सा भगवत्प्रसाद लेने से प्राप्त हो जाता है ॥ १६७१ ॥

हे श्रीनिवास ! विधि पारायण ! संक्षेप से मैंने तुम्हें चरणोदक और प्रसादी अन्न व्रत का निरूपण सुना दिया ॥१६७२

हरि विमुखों का अन्न, और एकादशी आदि उपवासों में दशमी आदि का वेध सर्वथा त्याज्य हैं ॥ १६७३ ॥

जो सज्जन नित्य चरणोदक और भगवत्प्रसादी तथा प्रसादी वस्त्र आदि का उपभोग करते हैं उन पर कृपा करके श्रीराधामाधव भगवान् स्वयं व्रत पालन में सहायता देते हैं ॥ १६७४ ॥

राधाधवं माधवमाद्यमीश्वरं
वन्दे कुमारं स्वगुरुं च नारदम् ।
स्वैतिह्यबीजांकुरकाण्डरूपिणः
स्वैतिह्यकल्पद्रुममूलपर्वकः ।। १६७५ ॥

एवं मुकुन्दस्य हरेः परेशितुः
पादप्रसादव्रतमुक्तवान् स्वयम् ।
श्रीश्रीनिवासानुगताय यो ध्रुवं
निम्बार्कमाचार्यवरं नमामि तम् ॥ १६७६ ॥

॥ इति श्रीपरमहंसवैष्णवाचार्य श्रीनिम्बार्कभगवत्पूज्यपाद-
शिष्येणौदुम्बरर्षिणाकृतः कृष्णांघ्रिप्रसाद-
व्रतनिर्णयः ॥

"समस्त कारणों के कारण और नियन्ता श्रीराधामाधव (हंस भगवान) और उनके सम्प्रदाय के अंकुर एवं काण्डरूप सनकादिक और स्वगुरु देव श्रीनारदजी इन स्वैतिह्यकल्पद्रुम के मूल पर्व रूप गुरुवरों को नमस्कार है।" १६७५ ।।

इस प्रकार परात्पर परमेश्वर मुकुन्द प्रभु का अंघ्रि-प्रसाद व्रत मेरे पूज्य गुरुदेव ने मुझ श्रीनिवासानुग को बतलाया उन्हीं श्रीनिम्बार्काचार्य वर्य्य को मैं (औदुम्बराचार्य) प्रणाम करता हूँ ।। १६७६ ।।

यह श्रीकृष्णांघ्रिप्रसाद व्रत पूर्ण हुआ। अब आगे 'युग्माराधन' व्रत आरम्भ होता है।

कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ
राधामुकुन्दौ समभावभावितौ।
यद्वत् सुसंपृक्त निजाकृती ध्रुवा-
वाराधयामो व्रजवासिनौ सदा ॥ १६७७ ॥

संस्मृत्य संस्मृत्य युगं स्वचेतसा
श्रीराधिकामाधवयोः पुनः पुनः।
स्वं श्रीनिवासानुगमाह शिष्यकं
निम्बार्क आचार्यवरेश्वरो मुनिः ॥ १६७८ ॥

वक्ष्ये युगाराधनकंव्रतं शुभं
भो श्रीनिवासानुग संनिशामय।
श्रीराधिकामाधवयोर्महामते
स्वैतिह्यवर्यैरुपवर्णितं मया ॥ १६७९ ॥

जिस प्रकार समुद्र की तरंगें एक रूप होती हैं, उसी प्रकार प्रेमामृत रस सिन्धु रूप श्रीराधामाधव वस्तुतः एक ही रूप हैं। जल और जल की दो तरङ्गों को देखने से ज्ञात हो जाता है कि वे सब जल रूप हैं ठीक उसी प्रकार ये दोनों प्रेमामृत रस रूप हैं और तरङ्ग रूप भी हैं, समभाव भावित अपनी-अपनी आकृति में ध्रुव हैं, हम सब व्रजवासी सदा इन्हीं की आराधना करते हैं ॥ १६७७ ॥

श्रीराधामाधव का बारम्बार चित्त में स्मरण करके अपने शिष्य श्रीनिवास के आज्ञाकारी मुझ (औदुम्बर) को आचार्यवरेश्वर भगवान् श्रीनिम्बार्क महाप्रभु ने कहा—॥१६७८॥

हे श्रीनिवासानुग ! हे महामते ! पूर्वाचार्यों ने जैसा बतलाया है वैसा ही श्रीयुग्माराधन व्रत मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥१६७९

श्रीयुग्मकाराधनमेव यावता
सिद्धयेन्न राधाव्रजराजपुत्रयोः ।
तावन्न काचित्त्वपि सत्क्रियां चरेत्
श्रीयुग्मकाराधनकं व्रतं चरन् ॥ १६८० ॥

श्रीयुग्मकाराधनमन्तरेण यत्
साहित्यतोनर्थवहत्वतो ध्रुवम् ।
सत्कर्मणां चाप्यविवेकगामिनां
युग्मव्यवच्छेदकृतां दुरात्मनाम् ॥ १६८१ ॥

तथा कृष्णः—

योऽहं स राधा किल राधिका तथा
या साहमेवाद्यतमः सनातनः ।
श्रीयुग्मभक्तिस्तु न लभ्यते यदा
साहित्यतो नौ सततैकभावयोः ॥ १६८२ ॥

सत्कर्ममात्रं क्वचिदाचरेत्तदा
नो वै युगाराधनसद्व्रताग्रहः ।
अत्रैकरूपं भजतां सुदुष्कृतां
दोषावहत्वाद्धि सतोऽपि कर्मणः ॥ १६८३ ॥

श्रीराधामाधव युगलकिशोर की सेवा का व्रत जब तक परिपक्व न हो जाय तब तक उसे छोड़कर इधर-उधर न भटकै, युग्माराधन व्रत का ही अवलम्ब रक्खै ॥ १६८० ॥

श्रीयुग्म आराधना के अन्दर कोई व्यवच्छेद डालै (श्रीराधा के बिना केवल कृष्ण की ही आराधना करैं) तो उन अविवेकी दुरात्माओं के सत्कर्म भी अनर्थकारक हो जाते हैं ॥ १६८१ ॥

यह श्रीकृष्ण की उक्ति है कि—मैं राधा हूँ और श्रीराधा मेरी ही आत्मा हैं जब तक हम दोनों की निरन्तर एक भाव से

कुमारा :—

श्रीराधिकाकृष्णयुगं सनातनं
नित्यैकरूपं विगमादिवर्जितम् ।
यद्वज्जलोल्लोलयुगं मिथोरतं
सद्गोचरं यावदवाप्तुयान्न तु ॥ १६८४ ॥

संसेवितुं तत्र न भेदमाचरेत्
श्रीराधिकाकृष्णयुगार्चनव्रती ।
दोषाकरस्त्वाद्धि भिदानुवर्तिनां
सत्कर्मणामेवमभेद्यभेदिनाम् ॥ १६८५ ॥

नारद :—

यदि तु युगलसंसेवां विधातुं न शक्तो
युगयुतिरहितं स्वाराधनं नो विदध्यात् ।
सततमुत सयुग्माराधने सद्व्रतेहो
व्रजपतिसुतयोः श्रीराधिकाकृष्णयोर्वै ॥ १६८६ ॥

साहित्य भक्ति न प्राप्त हो, तब तक सत्कर्म मात्र के आचरण करनेवाले भी दोष के भागी कहे जाते हैं ॥ १६८२-१६८३ ॥

सनकादिकों के वचनों का भी यही भाव है :—श्रीराधा-कृष्ण युगल सनातन एवं नित्य एक रूप है इसमें कभी भी विगम (वियोग) नहीं होता, युगलार्चन का व्रती इनमें कभी भी ऊँच-नीच का भेद भाव न करै, भेद माननेवाले दोष के भागी होते हैं ॥ १६८४-१६८५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं :—

कोई युगल की आराधना करने में असमर्थ हो तो चाहे आराधना न करै किन्तु युग्माराधन में लालसा तो अवश्य ही रक्खै ॥ १६८६ ॥

भजति यदि भिदामाचरंस्तत्र मूर्खो
न भजनफलमाप्नोतीह दोषग्रहः स्यात् ।
अत इह भिदया संसेवमानो मनीषी
किमपि च करणीयं युग्मभक्तिव्रती स्यात् ॥ १६८७ ॥

श्रीराधाकृष्णयुगलाराधनव्रतमंजसा ।
अनाचरन् विरोधी स्यादेकज्योतिर्विकल्पकृत् ॥ १६८८ ॥

तथा सम्मोहने तन्त्रे महादेव उदाहरत् ।
गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ॥ १६८९ ॥

जपेद् वा ध्यायते वाऽपि स भवेत् पातकी शिवे ।
स ब्रह्महा सुरापी च स्वर्णस्तेयी च पञ्चमः ॥ १६९० ॥

अगर कोई मूर्ख भेद भाव रखकर इनका भजन करता है तो उसे उस भजन का फल ही नहीं मिलता, उल्टा उसे पाप का फल मिलैगा। अतः युग्म भक्ति का व्रत ही अपनाना चाहिये ॥ १६८७ ॥

युगल आराधना व्रत का आचरण न करनेवाला—एवं एक ही ज्योति में विकल्प करनेवाला इष्ट विरोधी समझा जाता है ॥ १६८८ ॥

सम्मोहन तन्त्र में शंकरजी ने कहा है :—

गौर तेज (श्रीराधिकाजी) के विना जो श्याम तेज (श्रीकृष्ण) की अर्चा, पूजा, जप ध्यान करता है वह भी पापी ही होता है, उसे ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला स्वर्ण चौर आदि पाँचों महापापियों में एक समझना। गौर श्याम एक तेज में भेद-भाव करनेवाला हे महेश्वरि! उपर्युक्त समस्त दोषों से

यस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम् ।
तस्मादहं महादेवि गोपालेनैव भाषितम् ॥ १६६१ ॥

ब्रह्मसंहितायाम्—

यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः ।
अनयोरन्तरादर्शी संसारान्नो विमुच्यते ॥ १६६२ ॥

श्रुतौ—

राधया सहितो देवो माधवेन च राधिका ।
योऽनयोः पश्यते भेदं न मुक्तः स्यात्स संसृतेः ॥ १६६३ ॥

कृष्णोपनिषदि—

वामांग सहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी ।
योऽनयोः स्याद् व्यवच्छेदी ध्रुवं स तु बहिर्मुखः ॥१६६४॥

लिप्त हो जाता है। क्योंकि वास्तव में राधामाधव रूप एक ही ज्योति है। यह श्रीश्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ने बतलाया है। ॥ १६८८-१६६१ ॥

ब्रह्म संहिता में स्पष्ट कहा है—

जो श्रीकृष्ण हैं वे ही श्रीराधा हैं और जो श्रीराधा हैं वे ही श्रीकृष्ण हैं, इन दोनों में भेद देखनेवाला कभी भी संसार से मुक्त नहीं होता ॥ १६६२ ॥

श्रुति भी ऐसा ही कहती हैं :—

राधा का माधव से और माधव का राधा से सदा साहित्य रहता है, इनमें भेद देखनेवाला संसार से मुक्त नहीं होता ॥ १६६३ ॥

कृष्णोपनिषद् में भी ऐसा ही कहा गया है :—

श्रीकृष्ण के वाम अङ्ग में वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजी सदा विराजमान रहती हैं, जो इन दोनों में भेद देखता है वह धर्म बहिर्मुख समझा जाय ॥ १६६४ ॥

कुमारा :—

राधां विना मुकुन्दं यस्त्वाराधयेत् स निष्फलः ।
एकवस्तुव्यवच्छेदी श्रीमत्योः कृष्णराधयोः ।। १६६५ ॥
एवमादावकुर्वाणो युगलाराधनव्रतम् ।
विफलः पातकी ज्ञयो राधाकृष्णबहिर्मुखः ॥ १६६६ ॥
युगलानुगृहीतानां युगलाराधनव्रतम् ।
श्रीराधाकृष्णयोर्ज्ञेयं परमैकान्तिनां सताम् ॥ १६६७ ॥
नान्येषां तु भवेदेव तथा मे निश्चिता मतिः ।
राधा कृष्णमयी साक्षादाराध्या न प्रतीयते ।
योगिभिरपि किमुत सामान्यमानवैस्तथा ।। १६६८ ॥

नारदपंचरात्रे—

हरेरर्द्धतनू राधा राधामन्मथसागरे ।
राधा पद्माख्यपद्मानामगाधा तत्र योगिनाम् ।। १६६९ ।।

सनकादिकों ने कहा है—

श्रीराधाजी के बिना जो मुकुन्द की आराधना करता है वह इन दोनों में (एक ही वस्तु में) व्यवछेद करता है ।।१६६५।।

इस प्रकार जो युगल का आराधन न करै वह पातकी माना गया है उसके समस्त कार्य निष्फल हैं ।। १६६६ ।।

जिन पर युगलकिशोर अनुग्रह करैं वे परमैकान्ती सन्त ही श्रीराधाकृष्ण के रहस्य को जान सकते हैं। इतरजनों के बस की बात नहीं ऐसी मेरी (शंकर की) धारणा है ।। १६६७ ।।

श्रीराधाजी कृष्णमयी हैं, वे ही आराध्या हैं, सामान्य जन क्या जानेंगे योगी भी उनके रहस्य को नहीं जान पाते ।। १६६८ ।।

नारद पंचरात्र में कहा है :—

बृहद्गौतमीयतन्त्रे—

देवी कृष्णसमा प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी स्वर्णकान्तिः संमोहनी परा ॥ १७०० ॥

कुमारा :—

सर्वेषां तु दुराराध्यं रधिकाकृष्णयोः शुभम्।
शुक्लरसविवर्ज्यानां युगलाराधनव्रतम् ॥ १७०१ ॥
इति सम्मोहयन्तीव योगिभिरपि नेयते।
आराध्या सह कृष्णेन राधा कृष्णमयी परा ॥ १७०२ ॥
सदाचारेण कुर्वाणां युगलाराधनव्रतम्।
उपदिशन्ति शिष्यादीन् काशीखण्डे तथेरितम् ॥ १७०३ ॥

राधा मन्मथ सागर (प्रेम सिन्धु) में भगवान् का आधा विग्रह श्रीराधाजी पद्म के समान निर्लिप्त योगियों के लिये भी श्रीराधा अगाध हैं ॥ १६९९ ॥

वृहद्गोत्तमीय तन्त्र में भी इसी आशय की पुष्टि की गई है :—

श्रीकृष्ण के समान ही श्रीराधाजी परात्पर पर देवता मानी जाती हैं। वे परम मोहिनी स्वर्ण कान्ति के समान सर्व लक्ष्मीमयी हैं ॥ १७०० ॥

सनकादिकों का कहना है कि :—

"उज्ज्वल रस के उपासकों के बिना यह श्रीराधाकृष्ण का युगलाराधन व्रत सभी के लिये दुराराध्य है।" १७०१ ॥

योगियों को भी कभी-कभी बड़ा भारी मोह हो जाता है, अतः कृष्णमयी श्रीराधा की श्रीकृष्ण के साथ आराधना करनी ही चाहिये ॥ १७०२ ॥

नित्यनैमित्तिके कृत्स्ने कार्तिके पापनाशने।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ १७०४ ॥
एवं सम्पूजयेन्नित्यं युगाराधनसद्व्रतात् ।
राधिकासहितं कृष्णं दामोदरं हरिं विभुम् ॥ १७०५ ॥

पाद्मे—

राधिकाप्रतिमां कार्ष्णिः पूजयेत्कार्तिके तु यः।
तस्य तुष्यति तत्प्रीत्यै कृष्णो दामोदरो हरिः ॥ १७०६ ॥
ततः प्रियतमा विष्णो राधिका गोपिकासु च।
कार्तिके पूजनीया च श्रीदामोदरसन्निधौ ॥ १७०७ ॥
वृन्दावनेऽऽधिपत्यं च दत्तं तस्यै प्रतुष्यता।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने ॥ १७०८ ॥

काशी खण्ड में कहा है कि सदाचारी शिष्यों को ही युगलाराधन व्रत करने का उपदेश देवैं ॥ १७०३ ॥

नित्य नैमित्तिक समस्त पापों को नष्ट करनेवाले कार्तिक में हे कृष्ण ! मेरे द्वारा अर्पित इस अर्घ्य को आप श्रीराधाजी सहित ग्रहण करें ॥ १७०४ ॥

इस प्रकार युग्माराधन व्रत द्वारा श्रीराधा सहित दामोदर हरि श्रीकृष्ण की पूजा करै ॥ १७०५ ॥

पद्मपुराण में कहा है :—

कार्तिक मास में श्रीराधाजी की प्रतिमा की पूजा करै तो श्रीकृष्ण उस साधक पर बहुत प्रसन्न होते हैं ॥ १७०६ ॥

समस्त गोपियों में श्रीराधिकाजी श्रीकृष्ण की विशेष प्रियतमा हैं, अतः श्रीदामोदर की सन्निधि में कार्तिक में श्रीराधाजी की पूजा करै ॥ १७०७ ॥

कार्तिक इत्यभिधानं तत्प्रसंगसमाहृते: ।
न कालनियमो ज्ञेयः श्रीराधाराधनं सदा ।। १७०६ ।।

तथा ब्रह्माण्डे—

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम् ।
वृन्दावनेश्वरीराधा राधैवाराध्यते मया ।। १७१० ।।
किञ्च सकाम ईहेत युगलाराधनव्रतात् ।
श्रीराधाकृष्णयो: पूजां तर्हि वांछितमश्नुयात् ।। १७११ ।।

तथा भागवते—

श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवा उभौ ।
भक्त्या सम्पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत् सर्वसम्पदः ।। १७१२ ।।

श्रीराधिकाजी पर अत्यन्त प्रसन्न होने के कारण ही श्रीकृष्ण ने उन्हें वृन्दावन का आधिपत्य दे दिया । द्वारिका आदि में देवी (रुक्मिणी) आदि की प्रधानता है ।। १७०८ ।।

यहाँ कार्तिक का विधान प्रसंगवश किया गया है, वस्तुत: श्रीराधिकाजी की पूजा अर्चन में कार्तिक आदि काल का नियम नहीं है । सदा ही उनकी आराधना करते रहना चाहिये ।। १७०६ ।।

ब्रह्माण्ड पुराण में स्पष्ट कहा है :—

श्रीराधा कृष्ण की आत्मा हैं और श्रीकृष्ण राधा की आत्मा हैं श्रीराधा वृन्दावन की अधिष्ठात्री हैं अत: सदा मैं राधाजी की आराधना करता हूँ ।। १७१० ।।

यदि कोई किसी कामना से युगल आराधन का व्रत धारण करे तो श्रीराधा कृष्ण की पूजा से उसकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ।। १७११ ।।

ब्रह्मवैवर्ते—

लक्ष्मीर्वाणी च तत्रैव जनिष्येते महामते।
वृषभानोस्तु तनया राधा श्रीर्भविता किल ॥ १७१३ ॥
सम्पूज्या हरिणा सार्द्धं प्रेष्ठा कृष्णानपायिनी।
साक्षात्कृष्णमयी यत्र युगेज्याव्रतधारिणाम् ॥ १७१४ ॥
निष्कामेषु दधानेषु युगलाराधनव्रतम्।
युगसेवाव्रतस्यैव माहात्म्यं तु निगद्यते ॥ १७१५ ॥

कुमारास्तथा—

निर्माप्य सहकृष्णेन श्रीराधार्च्चा हरिप्रियाम्।
साहित्येनैव सम्पूज्य नित्यमेति परां गतिम् ॥ १७१६ ॥

श्रीमद्भागवत में कहा है :—

श्री (श्रीराधा) और विष्णु (श्रीकृष्ण) दोनों समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं, यदि कोई सम्प्रदायें चाहै तो वह भक्ति पूर्वक इन दोनों की पूजा करै ॥ १७१२ ॥

ब्रह्मवैवर्त में कहा है :—

हे महामते ! लक्ष्मी और सरस्वती वहां ही प्रकट होंगी। श्रीवृषभानुनन्दिनी राधाजी श्री शब्द से अभिहित हैं ॥ १७१३ ॥

अतः युग्माराधन व्रत वालों को श्रीकृष्ण के साथ राधाजी की ही पूजा करनी चाहिये। वे भगवान् श्रीकृष्ण की अनपायनी प्रिया एवं उनकी आत्मा ही हैं ॥ १७१४ ॥

निष्काम भाव के भक्तों के लिये भी युग्माराधन व्रत का ही विशेष माहात्म्य कहा गया है ॥ १७१५ ॥

सनकादिकों का कथन है—

श्रीकृष्ण और राधाजी की प्रतिमा बनवाकर उन दोनों

नारदपञ्चरात्रे च—

राधया सहितं कृष्णं यः पूजयति नित्यशः ।
भवेद् भक्तिर्भगवति मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥ १७१७ ॥

एवं युगाराधनसद्व्रतादरात्
श्रीराधिकाकृष्णपदाम्बुजान्तिकम् ।
प्राप्नोति राधाव्रजराजपुत्रयो-
र्युग्मांघ्रिसेवाविमुखस्तु पातकी ॥ १७१८ ॥

तस्माद्युगाराधनसद्व्रताग्रहा-
न्नान्यं प्रकुर्वीत वृथाग्रहं सुधीः ।
राधामुकुन्दांघ्रितटस्थितीच्छया
त्वेवं युगाराधनसद्व्रतं चरेत् ॥ १७१९ ॥

की साथ-साथ ही सदा पूजा करै। उससे परम गति प्राप्त होती है ॥ १७१६ ॥

नारद पंचरात्र में भी ऐसा ही कहा है :—

श्रीराधा के सहित श्रीकृष्ण की जो नित्य पूजा करता है उसके चित्त में भगवान् की भक्ति प्रादुर्भूत होती है मुक्ति तो उसके हाथ में ही समझना चाहिये ॥ १७१७ ॥

इस प्रकार युग्माराधन व्रत से श्रीश्यामाश्याम की सन्निधि प्राप्त होती है । श्रीराधाव्रजेन्द्र युगल चरणारविन्दों से जो विमुख हों उन्हें पातकी समझना चाहिये ॥ १७१८ ॥

बुद्धिमान को चाहिये कि श्रीराधा कृष्ण के चरणों का आश्रय चाहै तो उनके युग्माराधन सद्व्रत के अतिरिक्त अन्य किसी व्रत का आग्रह न करें ॥ १७१९ ॥

श्री श्रीनिवासानुग वर्णितं मया
चैवं विदित्वा युगसेवनव्रतम् ।
सञ्चारयिष्यन् स्वजनेषु सर्वत-
स्त्वं धारयादौ ह्यनुवृत्तितः सताम् ।। १७२० ।।

राधामुकुन्दौ सततानपायिनौ
ह्येकात्मकावेकनिषेवणात्मदौ ।
युग्मव्यवच्छेदविधायिदोषदौ
वन्दे युगाराधन सद्व्रतेक्षितौ ।। १७२१ ।।

कृष्णं सदैतिह्यनिदानविग्रहं
ह्याचार्यवर्यं च चतुःसनं स्वयम् ।
श्रीनारदं स्वीयगुरुं नमामि च
श्रीयुग्मकाराधनसद्व्रतप्रदान् ।। १७२२ ।।

एवं स्वशिष्याय निजानुवर्तिने
यः श्रीनिवासानुगताय धीमते ।

हे श्रीनिवासानुग ! (औदुम्बर) मैंने (श्रीनिम्बार्क ने) युग सेवन व्रत का वर्णन कर दिया, इसका स्वजनों में प्रचार करो और स्वयं भी इसका पालन करो ।। १७२० ।।

श्रीराधामाधव दोनों नित्य एकात्म हैं, सेवक को वे सब प्रकार से अपनाते हैं किन्तु युगल में व्यवच्छेद करनेवाले को नहीं अपनाते, उन (गुरुदेव) को हम सदा नमन करते हैं ।।१७२१।।

युगल आराधना व्रत के उपदेशक सत् ऐतिह्य के मूल श्रीकृष्ण (श्रीहंस) आचार्य श्रीसनकादिक तथा निजगुरु श्रीनारदजी को प्रणाम करता हूँ ।। १७२२ ।।

सत्सम्प्रदायानुसृतेः समागतं
श्रीराधिकामाधवयोः स्वसेव्ययोः ॥ १७२३ ॥

प्रादात् प्रसिद्धं युगसेवनव्रतं
नानाव्यवस्थानविवेकसंयुतम् ।
तं ह्यादिभूतं शरणं व्रजाम्यहं
निम्बार्कमात्मीयगुरुं सुदर्शनम् ॥ १७२४ ॥

॥ इति श्रीपरमहंसवैष्णवाचार्य श्रीनिम्बार्कभगवत्पूज्यपाद-
शिष्येणौदुम्बरर्षिणा कृतः युग्माराधन-
व्रत-निर्णयः ॥

जयति जयति निम्बार्को मुकुन्दानुवर्त्ती
भजनसुखरतो जीवोपकारी विचारी ।
गुरुजनसृतिगामी सम्प्रदायानुसारी
त्रिविधजननिषेवी कृष्णतोषप्रवीणः ॥ १७२५ ॥

इस प्रकार निजानुवर्ती श्रीनिवास से लघु स्वशिष्य (मुझ औदुम्बर) को सभी प्रकार की व्यवस्था और विज्ञान के सहित श्री सेव्य श्रीराधामाधव का प्रसिद्ध युग्माराधना व्रत जिन्होंने प्रदान किया उन्हीं सुदर्शनावतार निज गुरु श्रीनिम्बार्क भगवान की मैं शरण में हूँ ॥ १७२३-१७२४ ॥

यह श्रीयुग्माराधन व्रत पूर्ण हुआ।

अब सत्यांगहृद्-वाग्-अविहिंसन व्रत का प्रारम्भ होता है :—

श्रीमुकुन्द के अनुवर्ती भजन सुख में निरत समस्त जीवों के उपकारी गुरुजनों की पद्धति के प्रचारक सभी प्रकार के जनों से सेवित श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करने में प्रवीण, भगवान्

निम्बार्कपादाम्बुजमाश्रयन् हृदा
राधामुकुन्दांघ्रिसुगन्धभावितः।
वक्ष्यामि सद्वैष्णव साधनीयकं
सत्यांगहृद्वागविहिंसनव्रतम् ॥ १७२६ ॥

तं श्रीनिवासानुगमात्मशिष्यकं
विज्ञानवैराग्यविशारदं ध्रुवम्।
निम्बार्क आचार्यवरो महामतिः
प्रोवाच विज्ञाननिधिर्धुरन्धरः ॥ १७२७ ॥

भो श्रीनिवासदासाथ शृणु सम्यक् समाहितः।
सत्यकायमनो भारत्यविहिंसनकव्रतम् ॥ १७२८ ॥

सत्यव्रतं विधातुं तु सत्यस्यार्थो निरूप्यते।
सर्वथा भगवान् सत्यः कृष्णो भागवते तथा ॥ १७२९ ॥

श्रीनिम्बार्क के चरणकमलों का आश्रय लेकर श्रेष्ठ वैष्णवों के साधने योग्य सत्य अंग हृद् वाक् अविहिंसन व्रत को कहूँगा ॥ १७२५-१७२६ ॥

ज्ञान वैराग्य में विशारद अपने शिष्य श्रीनिवासानुग (औदुम्बर) को विज्ञान निधि धुरन्धर आचार्यवर्य श्रीनिम्बार्क ने कहा ॥ १७२७ ॥

हे श्रीनिवासदास ! समाहित होकर तुम मन कर्म वचन से सत्य का अविहिंसन करनेवाला व्रत सुनो ॥ १७२८ ॥

सत्य व्रत के विधानार्थ यहाँ सत्य के अर्थ का निरूपण किया जाता है। सब प्रकार से देखा जाय तो एक भगवान ही सत्य हैं, जैसा कि भागवत में कहा है ॥ १७२९ ॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ १७३० ॥
(भागवत १०-२-२६)

एवं सत्यात्मकं कृष्णं सर्वप्रपञ्चमूलकम् ।
यावन्न सेवितुं शक्तो येन केनापि हेतुना ॥ १७३१ ॥
तावन्नान्यं भजेज्जातु सत्यव्रतं समाचरन् ।
शाखादिरूपिणं देवं सत्यासत्यविवेकवान् ॥ १७३२ ॥
मिथ्यात्वादन्यसेवायाः शाखादिसेकवद् ध्रुवम् ।
सर्वज्ञाः सत्यमाहुश्च यथार्थभाषणं तथा ॥ १७३३ ॥

सत्य व्रत (संकल्प) वाले, सत्य (देव तथा प्राण) से परे, और भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों में सत्य(वर्तमान)अथवा भक्त भजन और भजनफल तीनों सत्य हैं । सत्य=प्राकृत लोकों के योनि उपादान कारण और अप्राकृत=दिव्यधाम में नित्य स्थित, प्रकृति पुरुष काल इन तीनों में भी सत्य (परम सत्य) ऋत और सत्य अर्थात् मधुरवाणी और समदर्शन इन दोनों में भी सत्य इस प्रकार समस्त दृष्टियों से सत्य स्वरूप प्रभु के हम सब शरण में हैं ।। १७३० ।।

इस प्रकार समस्त विश्व के मूल सत्य रूप श्रीकृष्ण की सेवा में जब तक किसी न किसी कारण से आसक्ति न हो जाय, तब तक सत्यव्रत का आचरण करनेवाला शाखा प्रशाखा रूप अन्य देवों की आराधना में आसक्ति न करै ।। १७३१-१७३२ ।।

जिस प्रकार मूल का सेचन न करके जो व्यक्ति केवल शाखाओं के सेचन से फल प्राप्त करना चाहैं उसी प्रकार प्रभु को

यथार्थभाषणं सत्यं मौनं वागविसर्जनमिति स्मृतेः ।
यथार्थभाषणं त्वेवं सत्यं वक्तुं न यावता ॥ १७३४ ॥

अवाप्नुयादवसरं तावत्सत्यव्रतं चरन् ।
असत्यं नैव भाषेतासत्यस्यागतिदत्वतः ॥ १७३५ ॥

अत्रायमर्थ उन्नेयो असत्यभाषणस्य तु ।
गुह्यानां सूनृतं मौनं अहमिति हरीरणात् ॥ १७३६ ॥

वासुदेवविभूतित्वात् सत्यव्रतत्वमुच्यते ।
समानदर्शनं सत्यं प्राहुश्च सर्ववेदिनः ॥ १७३७ ॥

भागवते तथा कृष्णः सत्यं च समदर्शनम् ।
एवं यावन्न सत्यं च समानदर्शनात्मकम् ॥ १७३८ ॥

समीहितुं सुशक्तः स्यात्तावद्देहादिदर्शनम् ।
नेच्छेत्सत्यव्रतग्राही देहादिदर्शनस्य हि ॥ १७३९ ॥

छोड़कर अन्य देवों की सेवा करना व्यर्थ है । सर्वज्ञजन यथार्थ भाषण को सत्य कहते हैं, और वाणी के अविसर्जन को मौन कहते हैं । ऐसे जब तक सत्य यथार्थ बोलने की सामर्थ्य न हो तब तक असत्य नहीं बोलना चाहिये ।। १७३३-१७३५ ।।

जब तक हो सके सत्य बोलने का ही व्रत धारण करै । असत्य न बोले,क्योंकि असत्य बोलने से दुर्गति होती है ।।१७३५।।

असत्य न बोलने का तात्पर्य यह है भगवान ने कहा है कि—गुप्ततर साधनों में सूनृत (सत्य) और मौन मैं ही हूँ ।। १७३६ ।।

सत्यव्रत वासुदेव प्रभु की ही विभूति है, सर्ववेत्ताओं ने कहा है—कि सब में समदृष्टि रखने को ही सत्य कहा है । जब तक समदर्शनात्मक सत्य की शक्ति न हो तब तक सत्यव्रत-

संसारभयबीजत्वादवपुनमयस्य तु ।
अर्थ्यनुमोदनं सत्यं वेदविदस्तथोमिति ॥ १७४० ॥
प्राहुः सत्यं तु नो यावदर्थ्यनुमोदनात्मकम् ।
समोहितुं न कल्पः स्यात्तावन्न नेत्यसत्यकम् ॥ १७४१ ॥
कथयेत् सत्यसारस्तु सत्यव्रतं समाचरन् ।
सत्यार्थस्यास्य पक्षस्य व्यवस्था तु विधीयते ॥ १७४२ ॥
सत्यव्रतस्य माहात्म्यं सूचयन्ती स्वयं श्रुतिः ।
निन्दन्ती बहुधार्थात्तु नेत्यसत्यं निरस्यति ॥ १७४३ ॥

तथा श्रुति :—

ओमिति सत्यं नेत्यनृतं तदेतत्पुष्पं फलं वाचो यत्सत्यं सहेश्वरोयशस्वीकल्याणकीर्तिर्भविता पुष्पं हि फलं वाचः सत्यं वदत्यथैतन्मूलं वाचो यदनृतम् । तद्यथा वृक्ष आविर्मूलः पुष्यति

ग्राहीजन देहादि में ही आत्मदर्शन की इच्छा न करे। क्योंकि देहादि में आत्मदर्शन ही जन्म मरणादि संसृति का बीज है। अर्थी के अनुमोदन को भी वेदविदों ने सत्य कहा है ॥१७३७, ४०॥

अर्थी के अनुमोदन रूप सत्य का सामर्थ्य न हो तब तक सत्य सार सत्यव्रत का आचरण करनेवाला असत्य न बोले। इस सत्यार्थ पक्ष की व्यवस्था का विधान किया जाता है। ॥ १७४१-१७४२ ॥

सत्यव्रत का माहात्म्य वेदों में कहा है और असत्य की निन्दा की गई है ॥ १७४३ ॥

उस श्रुति का भाव यह है :—

ओम ही सत्य है, न झूंठ है, वाणी के ये पुष्प और फल हैं, सत्य बोलनेवाला यशस्वी और कल्याण कीर्तिवाला होगा।

स उद्वर्त्तत एवमेवानृतं वदन्नाविर्मूलमात्मानं करोति स शुष्यति स उद्वर्त्तते । तस्मादनृतं न वदेद्दयेतत्वेनेति ॥ १७४४ ॥

श्रूयते कुत्रचित् सत्यासत्ययोः श्रुतौ ।
गुणदोषविपर्यासो बहुविधस्तथा श्रुतिः ॥ १७४५ ॥

प्राग् वा एतद्रिक्तमक्षरं यदेतदोमिति तद्यत्किञ्चो-मित्याहात्रैकस्मै तद्रिच्यते स यत्सर्वमोंकुर्याद्रिच्यादात्मानं सकामेभ्यो नालं स्यादिति ॥ १७४६ ॥

भागवते—(८।१९, ३८ से ४२)

सत्यमोमिति यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ।
सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ १७४७ ॥
वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ।
तद्यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्त्ततेऽचिरात् ॥ १७४८ ॥

अनृत भी वाणी का ही फल है, जैसे वृक्ष उत्पन्न होकर सूख जाता है वह बढ़ता नहीं इसी प्रकार झूठ बोलनेवाला अपने को बढा नहीं पाता सुखा देता है । इसलिये झूठ न बोलें ॥ १७४४ ॥

यहाँ शंका होती है :—किसी श्रुति में सत्यासत्य के गुण दोषों का बहुत सा विपर्यास भी बतलाया है । सबको ही ओम् (सत्य) कहना पर्याप्त नहीं ॥१७४५-१७४६ ॥

भागवत, ८।१९-३८ से ४३ तक के सन्दर्भ में भी यही कहा है । ओम् सत्य है—और न अनृत । आत्मवृक्ष के पुष्प फल सत्य ही है ॥ १७४७ ॥

वृक्ष के हरे रहने पर उसका मूल मिथ्या नहीं कहता, वही वृक्ष जब उन्मूल हो जाता है तो वह सूख जाता है ॥१७४८॥

एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ।
पराग् रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं तत्तदोमिति ॥ १७४६ ॥
यद्यत्किचोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ।
भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ १७५० ॥
अथैतत्पूर्णमध्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ।
किं च कुत्राप्यनुज्ञातमसत्यमष्टमे तथा ॥ १७५१ ॥
स्त्रीषु नर्मविवाहेषु वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ १७५२ ॥

याज्ञवल्क्य :—

वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् ।।इति।।१७५३॥

श्रुति :—

तस्मात् काल एव दद्यात् कालेन दद्यात् ।
तत्सत्यानृते मिथुनीकरोतीति चेत्तर्हि सत्यम् ।। १७५४ ।।

इसी प्रकार नष्ट अनृत आत्मा भी शीघ्र ही सूख जाती है । ओम् पराग् रिक्त अपूर्ण अक्षर है ।। १७४६ ।।

इसीलिये अर्थ बचाने के लिये भिक्षु के प्रति न ऐसा अनृत कहता है । कहीं-कहीं पर असत्य की भी अनुज्ञा दी गई है जैसे भागवत के अष्टम स्कन्ध अ० २० श्लो० ४३ में कहा है :— स्त्रियों के वार्तालाप विनोद, विवाह के निमित्त वृत्ति (जीविका के लिये) प्राण संकट में हों तब गौ और ब्राह्मण के हित के लिये और कहीं सत्य बोलने पर हिंसा होती हो तो इन सब अवसरों पर झूठ बोलना निन्दनीय नहीं है ।। १७५०-१७५२ ।।

याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि यदि सत्य साक्ष्य से ब्रह्म-चारियों का बध होता हो तो वहाँ झूठ बोल सकता है । श्रुति

असत्यस्य गुणाः श्रुत्याद्यैरनुज्ञानमेव च।
व्यवस्थयैव विहिताः सामान्यपुरुषान्प्रति ॥
न सत्यव्रतिनं धीरं वलिमुख्यसमं प्रति ॥ १७५५ ॥
बलिनं मोहितो यद्वदेतैः शुक्रानुवर्णितैः।
तथा मुह्येत नो धीरो सत्यानुज्ञानमुख्यकैः ॥
असत्यस्यातिपापत्वात् सर्वथैव तथा श्रुतिः ॥ १७५६ ॥
अथैतत्पूर्णमध्यात्मं यन्नेति स यत्सर्वं नेति।
ब्रूयात्पापिकास्यकीर्तिर्जायते सैनं तत्रैव हन्यादिति॥१७५७

भागवते च—

सर्वं नेत्यानृतं ब्रूयात् स दुष्कीर्त्तिः श्वसन्मृतः।
न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ॥ १७५८ ॥

भी कहती है समय पर सत्य और अनृत का मेल होता है, यह ठीक है किन्तु वह सब व्यवस्था सामान्य व्यक्तियों के लिये है असत्य के गुण बतलाकर की गई है। सत्यव्रत वाले धीर व्यक्ति के लिये वलि आदि की भाँति असत्य बोलने की अनुज्ञा कहीं भी नहीं है ॥ १७५३-१७५५ ॥

शुक्राचार्य के कहने पर भी बलि मोहित नहीं हुआ। उसी प्रकार धीर व्रती को भी मोहित नहीं होना चाहिये। क्योंकि—असत्य तो सभी स्थितियों में पाप ही समझा गया है ॥ १७५६ ॥

इस सम्बन्ध में "अथैतत्पूर्ण" इत्यादि श्रुति ही प्रमाण है, झूठ बोलनेवाले पापी की अपकीर्ति होती है वह उसी क्षण उसे नष्ट कर देती है ॥ १७५७ ॥

भागवत् में भी यह बात स्पष्ट है :—

जो किसी को देना कहकर यह कह देता है—मेरे पास कुछ भी देने को नहीं है, वह दुष्कीर्ति व्यक्ति जीता हुआ ही

सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ।
सर्वथैवं त्वसत्येन पापेन नाशमात्मनः ॥ १७५६ ॥
समालोक्य महाधीरः सत्यव्रतं समाचरेत् ।
एवं चतुर्विधं सत्यं कुर्वन् विपर्ययं त्यजन् ॥ १७६० ॥
राधाकृष्णाववाप्नोति धीरः सत्यव्रताग्रहात् ।
यावत्तु देहहृद्वाण्याऽहिंसनाचरणेऽक्षमः ॥ १७६१ ॥
तावन्नांग मनोवाग्भिर्हिंसनमात्रमाचरेत् ।
कायहृद्वचनाहिंसाव्रतं समाचरन् नरः ॥ १७६२ ॥
सर्वव्रतेषु चास्यैव विभूतित्वाद्विभो हरेः ।
तथा भागवते साक्षाद्व्रतानामविहिंसनम् ॥ १७६३ ॥
अहमिति हरेर्वाक्याद् व्रतत्वमुचितं ध्रुवम् ।
कायहृद्वागहिंसायाः श्रीनिवासानुगेरितम् ॥ १७६४ ॥

मृतक के समान है । पृथ्वी कहती है असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है । मैं सब का भार सहन कर सकती हूँ किन्तु झूठ बोलने वाले पापी का भार मुझ से सहा नहीं जाता । इस प्रकार सभी प्रकार के असत्य रूपी पाप से आत्मा का नाश समझकर धीर व्यक्ति सत्यव्रत का आचरण करते हैं । वह सत्य चार प्रकार का होता है । उनमें से किसी के भी विपरीत न बोलें ॥१७५८-१७६०

सत्यव्रत की निष्ठावाला धीर व्यक्ति श्रीराधाकृष्ण की प्राप्ति कर लेता है । जब तक मन वचन काय से अहिंसन आचरण में सामर्थ्य न हो जाय तब तक वह मन और वचन से हिंसनमात्र का आचरण न करे ॥ १७६१-१७६२ ॥

सम्पूर्ण व्रतों में इसको भगवद्विभूति माना है । भागवत में भगवान का वचन है—कि सम्पूर्ण व्रतों में अविहिंसन व्रत मैं ही हूँ । अतः हे श्रीनिवासानुग ! (ओदुम्बर !) यह ध्रुव समझना ॥ १७६४ ॥

एवं कायमनोवाण्यविहिंसनव्रतं चरेत् ।
कायहृद्वागहिंसनव्रतस्य महिमा तथा ।
वर्णितो हरिणा साक्षान्नारायणानुशासने ॥ १७६५ ॥
योऽगाद्यहिंसामयमुत्तमं व्रतं
सन्धारयन्देहिषु नित्यदा नरः ।
हृद्वाग्वपुर्जं दमनं त्यजेत्स्वयं
धर्मं परं साधयते स वैष्णवः ॥ १७६६ ॥

कुमारा :—

सद्धर्मं धारयेत् साक्षात्स वै भागवतोत्तमः ।
त्रिधा हिंसा त्यजेद्विष्वक् योऽहिंसनव्रताग्रहात् ॥ १७६७ ॥

भागवते नारद :—

नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ।। १७६८ ।।

इस प्रकार मन वचनशरीर से अविहिंसन व्रत को अपनावै, साक्षात् भगवान् ने उसकी महिमा का वर्णन नारायण अनुशासन में इस प्रकार से किया है :—

वही उत्तम वैष्णव है जो नित्य, प्राणियों की अहिंसा रूप उत्तम व्रत को धारण करके मन वाणी और शरीर से किसी की भी आत्मा को न दुःखानेवाला परम धर्म की साधना करता हो ।। १७६६ ।।

सनकादिकों ने कहा है—

जो मन वचन कर्म से होनेवाली तीनों प्रकार की हिंसा को त्यागकर सद्धर्म की साधना करै वही उत्तम भागवत है ।।१७६७।।

भागवत में नारदजी ने कहा है—

भूत प्राणियों को मन वचन कर्म से दण्ड न देने से बढ़कर सद्धर्म चाहनेवालों के लिये और कोई उत्तम धर्म नहीं है ।।१७६८

एवं विचारेण चरेत् सुवैष्णवः
सत्यांगहृद्वागविहिंसनव्रतम् ।
राधामुकुन्दौ समवाप्नुयाद्यतः
सत्सम्प्रदायानुविधानकोविदः ॥ १७६९ ॥
राधाकृष्णावहं वन्देऽविहिंसनव्रताहृतौ ।
ययोः कृपांशलेशेनाहिंसाव्रतं मयेरितम् ॥ १७७० ॥
इत्येवं श्रीनिवासानुग् वर्णितं व्रतपञ्चकम् ।
येन सन्धार्यमाणेन यथा कांक्षेत्तथा चरेत् ॥ १७७१ ॥
जयतो राधिकाकृष्णौ पंचव्रतफलात्मकौ ।
अस्मत्सेव्यौ सदारूपौ वृन्दावने निजालये ॥ १७७२ ॥
पूर्वं निरूपितप्रायं व्रतपञ्चकमंजसा ।
तत्र तत्रोरुधा विष्वक् पंचक त्रिक एव च ॥ १७७३ ॥

सत्सम्प्रदाय के विधान का विशेषज्ञ श्रेष्ठ वैष्णव इस प्रकार विचार करके मन वचन शरीर द्वारा अविहिंसन रूप सत्यव्रत का आचरण करै जिससे उसे श्रीराधाकृष्ण की प्राप्ति हो सकै, ॥ १७६९ ॥

जिनकी कृपालेश से मैंने यह अहिंसा व्रत बतलाया है, अविहिंसन व्रत से आहृत उन श्रीराधाकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १७७० ॥

हे श्रीनिवासानुग ! इस प्रकार से यह व्रत पंचक मैंने तुम्हें बतला दिया है। इसे जानकर अपनी इच्छानुसार इसका आचरण करो ॥ १७७१ ॥

अपने आलय श्रीवृन्दावन में सदा स्थित पञ्चव्रत फलात्मक हमारे सेव्य श्रीराधाकृष्ण की जय हो ॥ १७७२ ॥

जो पूर्व में व्रत पंचक निरूपित किया गया है वह कहीं पञ्चक कहीं त्रिक जहाँ तहाँ विस्तार से भी वर्णित है अतः यहाँ

अतो विस्तारितं नैव समासेन तु सूचितम् ।
अर्थानुवादमात्रेण समारम्भानुपूर्व्यतः । १७७४ ॥
व्रतपंचकमादेयं पारम्पर्यानुकम्पया ।
भवेदिदं महापुण्यं नान्यथा सम्प्रदायिनाम् ॥ १७७५ ॥
परम्परानिदानात्मा कृष्णो नारायणो ह्यतः ।
सदानुकम्पयतु नो व्रतपंचक लब्धये ॥ १७७६ ॥
आचार्यर्षिप्रभृतिभिः संज्ञाभिरपि विश्रुतः ।
यस्त्वैतिह्यनिदानत्वान्मुनिसंज्ञां प्रधानिकाम् ॥ १७७७ ॥
ऐतिह्यतूलभूतात्मा स्वयं विभर्त्ति सर्वदा ।
नारायणो मुनीनां चाहमित्येकादशेस्वयम् ॥ १७७८ ॥
विभूतित्वेन चोक्तत्वात्कृष्णेनानेकमूर्त्तिना ।
सनकं सनत्कुमारं सनन्दनं सनातनम् ॥ १७७९ ॥

अधिक विस्तार नहीं किया संक्षेप में ही समारम्भानुपूर्वक अर्थानुवादमात्र सूचित किया गया है ॥ १७७३-१७७४ ॥

परम्परागत आचार्य एवं गुरुदेव से लेने पर यह महा-पुण्यदायक है । असम्प्रदायक व्यक्ति से न लेवै ॥ १७७५ ॥

इस परम्परा के मूल निदान श्रीहंस नारायण श्रीकृष्ण ही हैं, व्रतपञ्चक की प्राप्ति में वे ही हमारे ऊपर सदा अनुकम्पा रक्खें ॥ १७७६ ॥

यद्यपि आचार्य ऋषि आदि उनके कई नाम हैं तथापि ऐतिह्य के मूल होने के कारण उनकी 'मुनि' संज्ञा प्रधान है ॥ १७७७ ॥

भागवत एकादश स्कन्ध में कहा है :—

मुनियों में नारायण मैं ही हूँ । वस्तुतः वे ही ऐतिह्य के मूल रूप हैं । वे इस पंचक को सदाधारण करते हैं ॥ १७७८ ॥

चतुर्मूर्त्तिं स्वयं सन्तं कृष्णं वन्दे चतुःसनम् ।
सदानुकम्पयतु स नैष्ठिकब्रह्मचर्यवान् ।। १७८० ।।
आचार्यर्षिमुनिमुख्यसंज्ञाभिरपि यः श्रुतः ।
ऐतिह्यांकुरभूतत्वाद्ब्रह्म चार्याह्वयं वरम् ।। १७८१ ।।
स्वैतिह्यतानकत्वेन स्वयं बिभर्त्ति सर्वदा ।
तथा भागवते साक्षात्कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ।। १७८२ ।।
अहमिति च कृष्णेन स्वविभूतितया तथा ।
उक्तत्वाद्धि कुमाराणां नैष्ठिकब्रह्मचारिणाम् ।। १७८३ ।।
नारदश्च महाधीरोऽनुकम्पयतु नः सदा ।
आचार्यमुनिमुख्याभिः संज्ञाभिरपि विश्रुतः ।। १७८४ ।।
ऐतिह्यव्यासहेतुत्वादृषिसंज्ञां प्रधानिकाम् ।
सम्प्रदायवितानाय बिभर्त्ति सर्वदा स्वयम् ।। १७८५ ।।
भागवते च गीतासु तथा भगवता स्वयम् ।
देवर्षीणां नारदोऽहं देवर्षीणां च नारदः ।। १७८६ ।।

भगवान् की अनन्त विभूतियाँ हैं, उनमें चारों सनकादिक साक्षात् कृष्णस्वरूप ही हैं, सदा नैष्टिक ब्रह्मचार्य व्रत में निरत रहते हैं, वे हम पर भी कृपा करें ।। १७७९-१७८० ।।

आचार्य ऋषि और मुनि इस संज्ञाओं की तरह उनकी ब्रह्मचारी संज्ञा भी मुख्य है । भगवान् श्री की भागवत में यह उक्ति है कि—ब्रह्मचारियों में सनकादिक मेरे ही स्वरूप हैं ।। १७८१-१७८३ ।।

इसी प्रकार आचार्य मुनि संज्ञावाले देवर्षि श्रीनारदजी इस ऐतिह्य के मूल हैं । भगवान् भागवत और गीता में स्पष्ट कहा है—देवर्षियों में नारद मैं ही हूँ । वे नारदजी हम पर कृपा करें ।। १७८४-१७८६ ।।

अहमिति च कृष्णेन देवर्षेर्नारदस्य हि।
विभूतित्वेन चोक्तत्वाद्धरिणा सर्ववेदिना॥ १७८७॥

एवं परम्पराचार्याः कृष्णकुमारनारदाः।
मुनिरिति तथा साक्षाद्ब्रह्मचारीतिसंज्ञया॥ १७८८॥

उच्चार्यमाणां पर्यायादृषिरिति च मुख्यया।
व्रतपंचकसामर्थ्यं शिक्षयन्तु स्वकिंकरान्॥ १७८९॥

नमो नारायणायादौ कुमाराय ततो नमः।
नारदाय नमस्तस्मैगुरवे परमात्मने॥ १७९०॥

हंसचतुःश्लोकी—

तुरितमकृतहंसाकारमाविर्मुकुन्दो
हरिरिह निज भक्ति तानयिष्यन् कुमारान्।
हृदयविषयसंत्यागं विधाप्यादिशद्यः
प्रथमगुरुमहं तं हंसरूपं प्रपद्ये॥ १७९१॥

इस प्रकार कृष्ण (हंस) कुमार नारद इन परम्परा प्रवर्तक आचार्यों की मुनि ब्रह्मचारी ऋषि ये संज्ञा मुख्य है। वे ही अपने किंकरों (उनकी परम्परा के अनुवर्तियों) को व्रतपंचक पालन का सामर्थ्य प्रदान करें॥ १७८७-१७८९॥

अतः सर्व प्रथम नारायण कुमार, और परमात्म रूप गुरुदेव श्रीनारदजी की वन्दना करता हूँ॥ १७९०॥

हरि मुकुन्द प्रभु ने शीघ्र ही हंसावतार धारण करके कुमारों के हृदय में अपनी भक्ति का विस्तृत अंकुर जमाया और विषयों से चित्त को हटाने का आदेश दिया उन्हीं आदि गुरु श्रीहंस भगवान् की मैं शरण मैं हूँ॥ १७९१॥

यदनुगमनशीला वैष्णवाः सम्प्रदाया-
दिह च परमहंसाः संज्ञया सूच्यमानाः ।
विशदहृदयतो राधामुकुन्दौ भजन्ते
निजभजननिदानं हंसरूपं भजे तम् ।। १७९२ ।।
शिवविधिकमलास्त्रैगुण्यरीत्यादिशद्यः
सकलगुरुतमं तं कृष्णदेवं सदाद्यं
परमपुरुषमीशं हंसरूपं प्रपद्ये ।। १७९३ ।।
अगुणविधित उच्चैर्भक्तियोगं स्वहाद्दं
सनकवरमुनीनां दिष्टवान् यो मुकुन्दः ।
भवभयहरणं तं वासुदेवं गरिष्ठं
सततमरणमद्धा हंसरूपं प्रपद्ये ।। १७९४ ।।
इमां हंसचतुःश्लोकीं पठतां पापनाशिनीम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेत् स स्यात्परमहंसवैष्णवः ।। १७९५ ।।

जिनके अनुयायी साम्प्रदायिक परमहंस कहलाते हैं और स्वच्छ अन्तःकरण से श्रीराधामाधव की भक्ति करते हैं उन्हीं हंस भगवान को मैं भजता हूँ ।। १७९२ ।।

जिन्होंने शंकर ब्रह्मा और कमला इनको तम रज सत्व इन तीनों गुणों के अनुसार प्रलय उत्पति और रक्षा कार्य द्वारा अर्थकारी किया, सम्पूर्ण गुरुओं में श्रेष्ठ उन्हीं हंसरूपी श्रीकृष्ण की मैं शरण मैं हूँ ।। १७९३ ।।

जिन्होंने नैर्गुण्य विधान से अपना हार्दिक सिद्धान्त "भक्तियोग" मुनिवर सनकादिकों को दिया, उन्हीं भव भयहारी निरन्तर प्रगतिशील गुरुओं के भी गुरुदेव वासुदेव श्रीकृष्ण की मैं शरण में हूँ ।। १७९४ ।।

पापों का नाश करनेवाली इस हंस चतुःश्लोकी को जो

एवं व्रतपंचकं स्वं श्रीनिवानुगाय यः ।
आदिष्टवान्नमस्तस्मै निम्बादित्याय धीमते ।। १७९६ ।।

।। इति श्रीपरमहंसवैष्णवाचार्य श्रीनिम्बार्कभगवत्पूज्यपाद-
शिष्येणौदुम्बरर्षिणा कृतः सत्यांगहृद्वाग-
विहिंसनव्रतनिर्णयः ।।

।। इति श्रीऔदुम्बरीसंहिता समाप्ता ।।

।। शुभम् ।।

तीनों (प्रातः मध्याह्न और सायं) समय पढ़ेगा वह परमहंस वैष्णव हो जायगा ।। १७९५ ।।

इस प्रकार का यह व्रत पंचक श्रीनिवास के अनुग एवं अपने अनुयायी श्रीनिवास को जिन गुरुदेव ने बतलाया उन श्रीनिम्बार्क के चरणों में बारम्बार मेरा नमस्कार है ।।१७९६ ।।

श्रीऔदुम्बराचार्य कृत व्रत पंचक का यह पाँचवां सत्यांग-हृद्वागविहिंसन व्रत पूर्ण हुआ । इसी के साथ औदुम्बर संहिता पूर्ण होती है ।

❀ श्री गोपाल मन्त्र-जप विधि ❀

विनियोग—

ॐ अस्य श्रीगोपालाष्टादशाक्षरमन्त्रस्य, श्री नारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णः-परमात्मा-देवता, क्लीं बीजम्, स्वाहा शक्तिः, ह्रींकीलकम् श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—

नारदऋषये नमः—(शिरसि)। गायत्री छन्द से नमः (मुखे) श्रीकृष्णदेवतायै नमः (हृदि) क्लीं बीजाय नमः (गुह्ये) स्वाहा शक्तये नमः (पादयो.) क्लीं कीलकाय नमः (सर्बाङ्गे)।

करन्यास—

ॐ क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः। कृष्णाय तर्जनीभ्यां नमः। गोविंदाय मध्यमाभ्यां नमः। गोपीजन अनामिकाभ्यां नमः। वल्लाभाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। स्वाहा करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः।

अङ्गन्यास—

ॐ क्लीं हृदयाय नमः। कृष्णाय शिरसे स्वाहा। गोविन्दाय शिखायै वषट्। गोपीजन कवचाय हुम्। वल्लभाय नेत्राभ्यां वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्।

पदन्यास—

क्लीं नमो मूर्ध्नि। कृष्णाय नमो वक्त्रे। गो[illegible]
नमो हृदि। गोपीजनवल्लभाय नमो नभौ। स्वाहा नमः पा[illegible]

वर्णन्यास—

ॐ क्लीं शिरसि। कृं ललाटे, ष्णां भ्रुवोः। यं ने[illegible]
गोंकर्णयोः। विं घ्राणयोः। दां मुखे। यं कण्ठे। गां स्क[illegible]
पीं हृदि। जं उदरे। नं नाभौ। वं गुह्ये। ल्ल [illegible]धारे
कट्याम्। यं उर्वौ। स्वां जानुनोः। हां पादयोः।

इस प्रकार उपर्युक्त पाँचों न्यास करके पद्मासन[1] ल[illegible]
मेरुदण्ड[2] को सीधा रखते हुए, दृष्टि को नासिका के अ[illegible]
पर जमाकर तुलसी की माला से, हाथ को हृदय के पास [illegible]
हुए तथा मन में युगल सरकार श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु का [illegible]
करते हुए यथाशक्ति जप करे।

जप के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र द्वारा अपने कि[illegible]
जप को भगवान श्रीराधासर्वेश्वर के अर्पण करे।

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्
सिद्धिर्भवतु मे देव ! त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थितिः

॥ श्रीराधा सर्वेश्वरार्पणमस्तु ॥

१—बायें पैर को दाहिने पैर की जङ्घा पर और दाहिने पै[illegible]
बायें पैर की जङ्घा पर लगाकर बैठने को पद्मासन कहते हैं।

२—पीठ की हड्डी।